स्त्री
[उपन्यास]

विमल मित्र



विमल मित्र



विमल मित्र



मुखबन्ध

इस ग्रन्थ मे चार नारी-चरित्रों के सम्बन्ध मे लिखित चार छोटे उपन्यास ग्रंथित हैं। प्रत्येक का केन्द्र-चरित्र विवाहिता नारी है।

पुराण और इतिहास की अन्तर्प्रकृति का विशेष सत्य होती है—नारी। उसमें पुरुष-ऋषि की ज्ञान-गम्भीर वाणी है। ज्वलन्त त्याग की तपश्चर्या है। कठोर ब्रह्मचर्य की दीप्ति है। और सर्वव्यापी अहिंसा की अभूतपूर्व कल्याण-कामना भी है। एक वाक्य में राम, विश्वामित्र, दधीचि, भीष्म, कर्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर इत्यादि विशिष्ट चरित्रों का वैचित्र्य है। प्रागैतिहासिक युग से आरम्भ कर इदानी काल तक युग-परम्परा की संस्कृति मे यह पुरुष-चरित्र-समारोह भारतवर्ष के ऐतिह्य के समान आज विद्यमान है।

किन्तु नारी !

उपनिषद् के समस्त पुरुष-ऋषियो की जीवन-वाणी में मात्र एक नारी-कण्ठ उसी भारतात्मा की सत्य मर्मवस्तु आज भी ध्वनित करता चला आ रहा है। वे हुईं मैत्रेयी— ऋषि याज्ञवल्क्य की द्वितीय पत्नी। मैत्रेयी-चरित्र में सिद्धि का प्राचुर्य नही है, तपस्या की कठोरता भी नही है। वे चहुँ ओर की इस पवित्रता के केन्द्र में केवल एक पुष्प के समान परिस्फुट हैं। याज्ञवल्क्य ने गृहत्याग के समय अपनी समस्त सम्पत्ति उभय पत्नियों को दान करने का प्रस्ताव किया, तब मैत्रेयी ने कहा था—'येनह नामृतास्यं किमहं तेन कुर्याम् ?' अर्थात् जिसे पाकर मैं अमृता नही होऊँगी, उसे लेकर मैं क्या करूँगी !

यह एक भारतीय नारी की ही मर्मकथा है। पुरुष धन उपार्जन करता है। स्त्री के निकट जाकर कहता है, यह लो।

दिन-दिन पुञ्जीभूत परिश्रम का समस्त फल आहरण करके स्त्री के चरण-प्रान्त में अर्पित करता है। कहता है—भली तरह देखभाल कर गृहस्थी चलाओ। यह लेकर तुम सुख से रहो।

किन्तु तब भी स्त्री का मन नहीं भरता। वह कहती है—इससे भी मैं खी नहीं हुई।

तो सुख क्या इतने सहज आता है? अमृत न पाने पर क्या भारत की नारी सुखी होती है?

तो कहाँ मिलेगा अमृत ?

मिलेगा प्रेम में। प्रेम में ही केवल हमें अमृत का आस्वाद मिलता है। इस गृहस्थी की विषय-वस्तु में मृत्यु से अतीत परम पदार्थ का जो परिचय हमें मिलता है, भारत की नारी उसी प्रेम का प्रतीक है।

और एक बात।

हिन्दू शास्त्रकारों ने स्वामी की व्याख्या स्त्री के देवता के रूप में की है। स्त्री को पुरुष के समान मानना मनुष्य का काम है। किन्तु स्त्री को देवी के रूप में देखना देवता का काम है। जिन्होंने सीता-चरित्र की सृष्टि की, वे वाल्मीकि हैं। जिन्होंने शकुन्तला की सृष्टि की, वे कालिदास हैं। जिन्होंने देस्दिमना की सृष्टि की, वे शेक्सपीयर हैं। अतएव नारी का देवी के रूप में सम्मान करना सीखने पर हम भी सम्भवतः कुछ देवत्व लाभ करेंगे।

इस ग्रन्थ में चार उपन्यासों के माध्यम से उसी देवीरूपिणी नारी के चरित्र के ही चार विभिन्न रूप अंकित करने की चेष्टा-मात्र मैंने की है। अलमिति।

विमल मित्र

उत्सर्ग

ज्योतिर्विद्या के प्रख्यात् पंडित, साहित्य-शास्त्रज्ञ,
जो पद्मभूषण और डी० लिट्० उपाधि से विभूषित,
आत्म-गरिमा एवं नि:स्व प्रकृति से समान रूप से समन्वित,
मौन समाज-सेवी,
विक्रम-विश्वविद्यालय के उद्गाता,
कालिदास-समारोह के स्थायी भगीरथ प्रवर्तक तथा उज्जयिनी के भास्कर हैं,
उन्हीं पंडित सूर्यनारायण व्यास के करकमलों में
यह ग्रन्थ
सश्रद्धा अर्पित हुआ।

—विमल मित्र

उपन्यास-क्रम

प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय उपन्यास का अनुवाद श्री दिनेश आचार्य ने किया है एवम् चतुर्थ का श्री गोपाल झा ने।

२

उस दिन शाम को विडन स्क्वायर के नजदीक से गुजर रहा था। अन्दर पार्क में शायद कोई सभा-वभा चल रही थी। सभा की एक खासियत थी। वह यह कि श्रोताओं में सिर्फ महिलाएं ही थीं और कि सब-की-सब घूंघट काढ़े थीं। वक्ता महोदय बड़े जोर-शोर से अपनी बात कह रहे थे। यह नजारा देखने के लिए पार्क के बाहर भी तमाशबीनों की भारी भीड़ जमा थी। वे लोग भाषण सुन रहे थे या नहीं, यह तो नहीं कह सकता, लेकिन इतना जरूर लग रहा था कि उन लोगों को इसमें काफी मजा आ रहा था।

मुझे भी कुतूहल होना स्वाभाविक था।

पास खड़े एक लड़के से पूछा, "किस बात की मीटिंग चल रही है ?"

बिना कोई जवाब दिये लड़का मुस्कराने लगा।

अजीब तो लगा लेकिन दुबारा पूछा, "ये लोग कौन हैं, मीटिंग किस बात की है ?"

लड़के ने इस बार मुस्कराते हुए मेरी ओर देखा, फिर जवाब दिया, "सन्नारियों की !"

मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। पूछा, "सन्नारियों की ?"

"हां, साहब, सन्नारियों की ! साक्षात् लक्ष्मियां हैं, रामबागान की लक्ष्मियां !"

फिर भी मेरे पल्ले कुछ भी नहीं पड़ रहा था। आगे बढ़ ही रहा था

कि पेड़ के नीचे खड़े एक बूढ़े आदमी को देखकर चौंक पड़ा।

बूढ़ा बड़े इत्मीनान से छाता लगाये खड़ा-खड़ा भाषण सुनने में मशगूल था।

हैं, मुखर्जी बाबू !

आहिस्ते-आहिस्ते पास जाकर खड़ा हो गया। बढ़ी हुई दाढ़ी, वही कोट, वही छाता !

"अरे मुखर्जी बाबू, आप यहां ?"

पहले तो जैसे पहचान ही न पाये। लेकिन यह सिर्फ मिनट भर के लिए ही। इसके बाद ही मुखर्जी बाबू जैसे मुझे देखकर चौंक उठे।

मैंने फिर से कहा, "मुखर्जी बाबू हैं न ?"

हां या न, कुछ बोले बगैर ही मुखर्जी बाबू खिसकने लगे, जैसे भागना चाहते थे। मैंने कोट की आस्तीन पकड़ ली।

"मुखर्जी बाबू, मुझे नहीं पहचाना ?'

मुखर्जी बाबू मेरी ओर इस तरह ताक रहे थे, जैसे चोरी करते हुए पकड़े गये हों। सिटपिटाते हुए किसी तरह उनके मुंह से निकला, "आपको तो···!"

"आप कटनी रेलवे कॉलोनी में रहते थे न ?"

"कटनी···!"

मुखर्जी बाबू जैसे फिर भी पहचान नहीं पा रहे थे।

बोले, "आप कौन हैं ? आपको···"

मैं बोला, "मुझे नहीं पहचानते ? मैं डॉक्टर बाबू का भाई हूं।"

"कौन से डॉक्टर बाबू ? मैं तो किसी डॉक्टर बाबू को···!"

सिटपिटाते-से मुखर्जी बाबू मेरा हाथ छुड़ाकर जाने की कोशिश कर रहे थे। मैं सामने रास्ता रोककर खड़ा हो गया। मुखर्जी बाबू इस पर दूसरी ओर से भाग निकलने की कोशिश करने लगे।

मैं बोला, "इतने दिन बाद मिले हैं, लेकिन मैं तो देखते ही पहचान गया।"

"लेकिन मैं तो पहचान नहीं पा रहा, भाई।"

"जो भी हो, आपको ऐसे ही नहीं छोड़ूंगा—मिस्टर जेनकिन्स ने

आपको कितना खोजा, मिस्टर प्रेमलानी ने आपको ढूढने के लिए बिलास-पुर आदमी भेजा। कटनी ट्रेन के वेण्डर को इत्तला की गयी। घर पर आप ताला लगा आये थे—सारी चीजो की लिस्ट बनाकर मिस्टर जेन-किन्स ने रेलवे स्टोर मे रखवा दिया···"

मेरी ओर देखकर जैसे मुखर्जी बाबू ने कुछ बोलने की कोशिश की। लेकिन कुछ कह नही पाये।

मैं बोला, "बनारसी को पहचानते है?"

मुखर्जी बाबू का चेहरा फक रह गया। यही मुखर्जी बाबू मुझे देखते ही जब से पान का बीड़ा निकालते थे। कहते थे, "क्यों भाई, पान खाओगे?"

मुखर्जी बाबू को पान खाने का बडा शौक था। केवल मुखर्जी बाबू ही को क्यों, मुखर्जी बीबी को भी। काफी बडा-सा एक पानदान था, जिसमे एक साथ करीब तीस कटोरिया थी। किसी मे लौंग, किसी मे इलायची तो किसी मे सुपारी, इसी तरह। मुखर्जी बीबी के मुह मे हर वक्त पान होता। काम करते वक्त भी पान, सोते-सोते भी पान। रविवार को छुट्टी होते ही मुखर्जी बाबू कटनी चले जाते। जिसे जो कुछ भी मगाना होता, मुखर्जी बाबू ले आते।

जाने से पहले एक बार वे हमारे घर भी आते थे।

बाहर से ही आवाज लगाते, "डॉक्टर साहब, ओ डॉक्टर साहब···!"

मेरे बाहर आते ही मुखर्जी बाबू कहते, "तुम लोगो के लिए क्या लाना होगा भई, कटनी जा रहा हूं—गुड मगाना है क्या? पूछने आया था? सुना है नया गुड आया है।"

सिर्फ गुड ही क्यों? किसी के लिए गुड, किसी को साडी, किसी के लिए तरकारी तो किसी के गेहू पिसाने होते। कटनी मे काफी काम रहता। अनूपपुर में सच पूछो तो कुछ भी नही मिलता था। सप्ताह मे सिर्फ एक दिन हाट लगता था। उस दिन ऑफिस बन्द रहता। अनूपपुर की कॉलोनी मे उस रोज सन्नाटा रहता। फोरमैन मि॰ प्रेमलानी का कारखाना भी बन्द होता। सात दिन के लिए आलू, प्याज वगैरह उसी बाजार से खरीदकर रखना होता। बिलासपुर से कटनी तक सीधी

रेलवे लाइन है। जबलपुर या बम्बई जाने के लिए यहीं से ट्रेन बदलनी होती है। अनूपपुर विलासपुर और कटनी के बीच में है। चारों ओर ब्लैक कॉटन स्वॉयल। काला रंग···गरमी के दिनों में दरारें पड़ जातीं। जून के महीने में जब मानसून आता तो बारिश होते-न-होते उन दरारों में से सांप निकलने लगते। गोखुरे सांप। काले-काले, पतले और लम्बे सांप। निकलकर सांप घरों में घुसना शुरू कर देते। आंगन में, बरामदे में रसोई और चारपाई तक आ पहुंचते। ऑफिस से हर घर को कार्बोलिक एसिड मिलती थी जिसे ऑफिस के मेहतर मकानों के चारों ओर छिड़क जाते। सांप फिर भी कहीं-न-कहीं से घुस ही आते।

मैंने फिर पूछा, "आप बनारसी को नहीं पहचानते?"

सी० पी० की गर्मी। दोपहर के वक्त लू और रात को गर्मी के मारे किसी को नींद नहीं आती थी। बिजली की रोशनी या पंखे अभी नहीं आये थे। ज्यादातर झोंपड़े नदी किनारे पर ही थे। सोन नदी देखने में कुछ ही फुट चौड़ी लगती थी। पता ही नहीं चलता था कि पानी है या नहीं। कॉन्ट्रैक्टर हुकुमसिंह के लोग घुटने तक धोती चढ़ाकर नदी पार करते। पथरीली जमीन। नदी की तलहटी में भी पत्थर भरे पड़े थे। कुल मिलाकर अनूपपुर कॉलोनी यही थी। कुछ बंगाली और कुछ उधर के ही लोग कॉन्स्ट्रक्शन के काम में आ जुटे थे। थोड़ी-थोड़ी दूर पर जरा ऊंची-सी जमीन, उसके ऊपर सीमेण्ट की दीवार, आंगन और खपरैल के मकान। फिर ऊबड़-खाबड़ जमीन और उसके बाद जंगल। जहां सांप-बिच्छू और दूसरे कीड़े-मकोड़े थे। फिर जरा ऊंचे पर कुछ मकान। दोपहर के वक्त जब लू के थपेड़े चल रहे होते, घर से बाहर निकलना मुश्किल हो जाता। सांय-सांय करती पश्चिमी हवा चलती। मकानों के ऊपर से फूस उड़-उड़कर इधर-उधर गिरती। अनूपपुर की सड़कों पर कोयले का चूरा बिछा हुआ था। तेज हवा चलने पर कोयले का चूरा उड़कर आस-पास के मकानों में भर जाता। आंगन, कमरे, तकिये और गद्दे सब धूल से भर जाते। मिस्टर प्रेमलानी के कारखाने में जो लोग काम करते हैं, सभी अपनी-अपनी नाकों पर कपड़ा बांध लेते।

मिस्टर जेनकिन्स का ऑफिस ठीक सुबह आठ बजे लगता था। बाबू लोग कोयले बिछे रास्ते से चलकर ऑफिस आते थे। बारह बजे सभी खाने के लिए अपने-अपने घर जाते थे। डेढ़ बजे से फिर ऑफिस शुरू हो जाता, अपने कैबिन में बैठे जेनकिन्स साहब फाइलें क्लियर करते। बाहर के बड़े-से हॉल में बाबू लोग बैठते। अपनी लम्बी-सी टेबिल पर स्केल और पेंसिल लिये मुखर्जी बाबू ड्राफ्ट्समैन का काम करते—और बीच-बीच में पॉकेट से पान का डिब्बा निकालकर पान खाते।

काम करते-करते नटू घोष कहता, 'मुखर्जी बाबू, पान किधर है ?"

मुखर्जी बाबू कहते, "पॉकेट से निकाल लो भाई, मेरे हाथ घिरे हैं।"

"आपकी बीबी के हाथों में जरूर ही शहद है, ऐसे पान और कहां मयस्सर है !" कहकर नटू घोष दो पान लेकर डिब्बा फिर से जेब में डाल देता।

खाते वक्त मिस्टर प्रेमलानी अपनी बीवी से पूछते, "यह बंगाली तरकारी कहां से आयी ?"

बीवी कहती, "अरे, अपने मुखर्जी बाबू हैं न, उन्हीं की बीवी ने भिजवायी है।"

आलू हो, प्याज, गोभी या मटर, जो कुछ भी हो, मुखर्जी बाबू की बीवी तरकारी बनाकर आज इसके, तो कल उसके घर भिजवा देती। मामूली तरकारी लेकिन सभी वाह-वाह करते। वैसा खाना किसी भी घर नहीं बन पाता था। बाल-बच्चा है नहीं। बाझ औरत। खुद और मुखर्जी बाबू, घर भर में दो ही आदमी थे।

मुखर्जी बीवी कहतीं, "सारा दिन करूं भी क्या। कोई काम तो रहता नहीं, इसी से बैठी-बैठी खाना ही पकाती हूं।"

आस-पास की बहुएं कहतीं, "तुम्हारे हाथ की बनी तरकारी खाकर उनकी तो जीभ ही बदल गयी है, भाई। घर का खाना पसन्द ही नहीं आता।"

मुखर्जी बीवी हंसती। कहती, "आदमियों को तो अब बदला नहीं जा सकता जीजी, नहीं तो एक बार कोशिश कर देखती।"

अम्बिका मजूमदार अनूपपुर के स्टेशन मास्टर थे। खुद कॉलोनी के

आदमी न होते हुए भी कॉलोनी के लोगों से मेलजोल रखते थे। अस्पताल से लगे टेनिस के मैदान में टेनिस खेलने आते थे। डॉक्टर, मिस्टर प्रेमलानी, नटू घोष और हुकुमसिंह सभी लोग खेलने आते थे। कॉलोनी के क्लब में ताश खेलकर रात के बारह-एक बजे करीब डेढ़ मील दूर अपने क्वार्टर वापस जाते। उनके लड़के के अन्नप्राशन के दिन सभी लोगों को न्योता मिला। मुखर्जी बाबू कटनी से फूलगोभी और मटर ले आये। एक तरह से बाजार का सारा काम मुखर्जी बाबू ने ही किया था। कम-से कम तीन सौ रुपये का सामान दो सौ रुपये में ले आये थे। मि० जेनकिन्स भी आये थे। चॉप, कटलेट, कलिया और आखिर में रसगुल्ले दही।

कटलेट खाकर मि० जेनकिन्स ने कहा, "वाह, वेरी गुड कटलेट, आठ साल में ऐसी कटलेट कभी नहीं खायी। किसने बनायी है?"

मजूमदार बाबू ने कहा, "मिसेज मुखर्जी ने।"

मिस्टर जेनकिन्स ने पूछा, "मिसेज मुखर्जी कौन?"

"अपने ड्राफ्ट्समैन मिस्टर मुखर्जी की वाइफ।"

मिस्टर जेनकिन्स, "आई सी, माई कॉन्ग्रेचुलेशन्स टू हर।"

मजूमदार बाबू ने अन्दर जाकर कहा। मुखर्जी बीबी फौरन बाहर चली आयीं, बिल्कुल सहज भाव से, बिना जरा भी संकोच या लज्जा के, उन्होंने मि० जेनकिन्स को नमस्कार किया। शान्तिपुरी डोरिया साड़ी पहने थीं। चेहरे पर हल्की-सी लाज भरी मुस्कान। माथे पर सिन्दूर की बिन्दी।

मिस्टर जेनकिन्स हंसते हुए उठकर खड़े हो गये, फिर बोले, "आप का कटलेट बहुत अच्छा बना।" कहकर फिर हंसने लगे। और लोग भी हंसने लगे। इससे पहले किसी ने साहब को हिन्दी बोलते नहीं सुना था।

खाने के बाद मुखर्जी बीबी एक पान ले आयीं। बोलीं, "यह खाइए, यह भी मेरा लगाया है।"

नटू घोष की बीबी ने कहा, "तुममें भाई, गजब की हिम्मत है, उस लालमुंहे के सामने गयीं कैसे? हम लोगों को तो देखते ही डर लगता है!"

इसके बाद बाबू लोग खाने बैठे। मिस्टर प्रेमलानी भी वाह-वाह करने लगे। कहने लगे, "मिसेज मुखर्जी बड़ी अच्छी कुक हैं।"

नटू घोष को कहना पड़ा, "नहीं मुखर्जी बाबू, मुखर्जी बीबी की तारीफ करनी होगी।"

मजूमदार बाबू ने कहा, "मैं तो चॉप-कटलेट का झमेला ही नहीं कर रहा था, अपने घरों में बना ही कौन पाता है, फिर कारीगर कहां मिलेंगे, लेकिन मुखर्जी बीबी ने कहा—वे गोश्त ला देंगे, मैं कटलेट बना दूंगी।"

इतने दिन जंगलों में रहते-रहते शहर की बात करीब-करीब भूल ही गया था। मिस्टर जेनकिन्स ठेट विलायत से इंजीनियरी पास कर यहां नौकरी करने आये। रेफ्रिजरेटर, आइस, फैन, लाइट, टेलीफोन और रेडियो की दुनिया से सी. पी. के जंगलों में। न यहां मटन मिलता है, न आइसक्रीम। शाम होते-न-होते मच्छर भन-भन करते आ धमकते हैं। इसके अलावा सांप, केंचुए, मकड़े, चींटे और दीमक तो हैं ही। गर्मी के मारे परेशान होकर मिस्टर जेनकिन्स कभी-कभी तो कपड़े तक उतार फेंकते। फिर दोनों हाथों से सारा बदन खुजलाते। कड़ी धूप में सिर की गंज जैसे तपने लगती थी।

मिस्टर प्रेमलानी भी शहरी आदमी थे। हैदराबाद, सिन्ध में घर था। कराची में कोई नौकरी करते थे। वह दफ्तर अचानक बन्द हो गया। उसके बाद ही अखबार में विज्ञापन देखकर यहां अर्जी भेजी थी।

नटू घोष बंगाल में नौकरी ढूंढ़ते-ढूंढ़ते परेशान हो गये थे। लेकिन नौकरी नहीं मिली। काफी दिन बैठे-बैठे गांठ से खाते रहे। अन्त में अखबार में विज्ञापन देखकर इस नौकरी के लिए आवेदन किया और नौकरी भी मिल गयी।

इसी तरह और लोगों ने भी किया।

अपनी मर्जी से यहां पर कोई भी नहीं आया था। स्टोर्स के बड़े बाबू पचपन साल नौकरी करके रिटायर हुए थे। मजे में बाकी जिन्दगी कट जाती। सीधे-सादे सात्विक आदमी थे। खुद रसोई बनाकर खाते।

किसी का छुआ नहीं खाते थे। ब्याह-शादी भी नहीं की थी। आराम से सूद के रुपये पर दिन कट रहे थे। अचानक बैंक फेल हो गया।

बेचारे कहते थे, "जिन्दगी में मैंने किसी को भी धोखा नहीं दिया, नटू बाबू, फिर भी मुझे धोखा खाना पड़ा।"

नटू घोष तसल्ली देते, "भगवान की मार कानून से बाहर है, भूधर बाबू।"

भूधर बाबू पान-तम्बाकू कुछ भी नहीं खाते। सिनेमा देखने का भी शौक नहीं है। शादी नहीं की, इसलिए वह आफत भी नहीं है। सिर्फ धरम-करम करने में जरा मुश्किल होती।

कहते, "अजीब जगह आया हूं भाई, न कोई मन्दिर है, न शिवाला।"

हमेशा से गंगा-स्नान की आदत थी। उनके घर के पास ही गंगा थी। नहाकर घाट पर ही संध्या करते। कुशासन वगैरह साथ ही ले जाते। सारे घाट को धोकर खुद साफ करते। अंग्रेज कम्पनी की नौकरी। धोती के अन्दर शर्ट घुसाकर ऊपर से कोट चढ़ाते। सभी उनका आदर करते थे।

छोटा-सा ऑफिस। भूधर बाबू ही सब कुछ थे। सोच रहे थे बाकी दिन इसी तरह गुजार देंगे। लेकिन तभी बैंक फेल हो गया। इच्छा थी किसी आश्रम को रुपये देकर वहीं पड़े रहेंगे। उनके लिए धर्म जैसे नशा था। कहते थे, "इन अंग्रेजों की नौकरी करता हूं, इसी से गुडमॉर्निंग करनी होती है, नहीं तो ये लोग भी क्या आदमी हैं!"

नटू घोष ने कहा, "आदमी नहीं हैं तो क्या हैं? सात समुद्र तेरह नदी पार आकर हम लोगों पर हुकूमत कर रहे हैं!"

भूधर बाबू बोले, "अरे, म्लेच्छ हैं, म्लेच्छ! न जात, न धर्म, इन्हें आदमी कहते हो। रोजाना ऑफिस से लौटकर सबसे पहले नहाता था, फिर कोई दूसरा काम।"

"कहते क्या हैं?"

भूधर बाबू बोले, "अब भी रोज नहाता हूं। शाम को यहां से जाते ही कपड़े उतार फेंकूंगा और गमछा पहन लूंगा, इसके बाद सारे कपड़े

धो डालूंगा।"

अम्बिका बाबू के यहां उनका भी न्यौता था।

भूधर बाबू ने कहा, "मुझे तो माफ ही कर दें अम्बिका बाबू ! आप तो जानते ही हैं, मैं बाहर कहीं खाता-पीना नहीं हूं।"

अम्बिका बाबू ने कहा, "मेरे यहां सारा खाना मुखर्जी बीबी बनाएगी। ब्राह्मण के सिवाय किसी को हाथ भी लगाने न दूंगा। परोसने का भी जिम्मा उन्हीं का है।"

तब भी भूधर बाबू खाने नहीं गये।

नटू घोष ने कहा, "आप कल गये नहीं, आह, क्या कटलेट बनी थी ! बड़े बाबू, क्या बतलाऊं ? मिस्टर जेनकिन्स भी खाकर..."

भूधर बाबू बोले, "यह सब तामसिक आहार है, सिर्फ मानसिक जड़ता बढ़ती है।"

नटू घोष बोले, "जड़ता बढ़े या घटे, काफी दिन बाद खाने को मिली, कलकत्ता में भी यह कटलेट नहीं खायी।"

इन्हीं भूधर बाबू ने भी एक दिन अर्जी भेजी थी। उस वक्त सोचा भी नहीं था कि जगह कैसी होगी। देखकर ताज्जुब से खड़े रह गये। नहाने के लिए नदी तक जाते जरूर हैं, लेकिन उसमें पानी ही कितना है। न कपड़े ही भीगते हैं, न बदन ही। उसी में किसी तरह एक पैर से खड़े होकर जरा 'नमो नमो' कर लेते हैं। लेकिन मन को तसल्ली नहीं होती। अनूपपुर में इतने दिन गुजर गये लेकिन एक दिन भी ठीक से मन-मुताबिक सन्ध्या नहीं कर पाये। हाट वाले दिन मुखर्जी बाबू आकर पूछते, "कुछ मंगवाना है, बड़े बाबू, कटनी जा रहा हूं।"

भूधर बाबू बोले, "आलू खतम हो गये हैं, अगर ला सकें .."

मुखर्जी बाबू ने कहा, "अरे, लाइए न, मैं तो जा रहा हूं, मिस्टर जेनकिन्स के लिए अण्डे भी लाने हैं।"

भूधर बाबू सिहर उठे।

"तब रहने दीजिए, मुखर्जी बाबू, मुर्गी के अण्डों से छुई चीज मुझे नहीं चाहिए। मैं भूखा रह लूंगा, फिर भी आपकी तरह जात नहीं गंवा पाऊंगा। नौकरी करने आया हूं, इसलिए क्या अपनी जात भी छोड़

दूंगा ?"

मुखर्जी बाबू को इन बातों पर गुस्सा नहीं आता था, हंसने लगते। थैला सम्हाले मिस्टर प्रेमलानी के यहां पहुंचते।

"कटनी से मंगवाना है कुछ ?"

"अरे मुखर्जी बाबू जा रहे हैं क्या, जरा आटा पिसवाना था, पिसा देंगे ?"

मुखर्जी बाबू बोले, "जरूर, लाइए न—मैं तो सभी का सामान ला रहा हूं। मिस्टर जेनकिन्स, घोष बाबू सभी का सामान लाना है—डॉक्टर बाबू के लिए बीस सेर आलू लाने हैं, आपका आटा नहीं पिसा पाऊंगा ?"

शुरू-शुरू में यहां कुछ भी नहीं था। डॉक्टर बाबू ही यहां के सबसे पुराने बाशिन्दे थे। उन दिनों ये मकान-वकान कुछ भी नहीं थे। तम्बू में रहना होता था। स्टेशन के पास ही लाइन की लाइन तम्बू लगे थे। उन दिनों न मिस्टर प्रेमलानी थे, न नटू घोष। डेढ़-सौ बाबुओं में से कोई भी नहीं आया था। मिस्टर जेनकिन्स और डॉक्टर बाबू को छोड़कर ऑफिस का एक भी आदमी अभी आया नहीं था। खड़गपुर से दवाओं के दो बक्से आये। दवा के नाम पर इसी का भरोसा था। हुकुमसिंह ठेकेदार जरूर पहले ही आया था। नदी के उस पार अपना बंगला बनवा रखा था। दो मंजिला लकड़ी का बंगला। कुली-मजदूर भी आ गये थे। जंगल साफ कर उन लोगों ने भी अपने झोंपड़े डाल लिये थे। सड़क बना ली थी। अस्पताल बना लिया था। और तभी ऑफिस की शुरुआत हुई। हुकुमसिंह ठेकेदार के तीन कुलियों को सांपों ने डस लिया था।

हुकुमसिंह कहता था, "कितना घना जंगल था उन दिनों, रात को शेर आता था।"

हुकुमसिंह ने दो शेर मारे थे। रात को पानी पीने आते थे। अपने मकान से ही निशाना लगाया। हम लोग तब तक नहीं आये थे। मिस्टर जेनकिन्स भी नहीं आये थे।

लेकिन कांस्ट्रक्शन की नौकरी में इन बातों से डरने पर कैसे काम

चल सकता है।

नयी लाइन बिछ रही थी। अनूपपुर से सीधे दूर्वामीन तक, उसके बाद बिजूरी और फिर होगा मनेन्द्रगढ। आखिरी स्टेशन चिनगारी होगा। बड़े-बड़े शाल के पेड़। तना इतना मोटा कि दोनों हाथों में भी न आये। शाल और महुआ, दो ही किस्में थी। कहीं-कहीं तो पेड़ इतने ऊंचे और घने थे कि ऊपर ताकने पर आसमान भी दिखलायी नहीं देता था। सारे दिन काम करने के बाद कुली लोग छावनी में आकर सोते। आधी रात के वक्त छावनी के आस-पास शेर-भालू घूमते। सुबह पंजों के निशान मिलते।

बिजूरी से 'तार' आते और आती 'डाक'। डिस्पैच बाबू डाक खोलते।

मधुसूदन हाजरा डिस्पैच बाबू थे। 'डाक' खोलते और कहते, "आज तीन आदमियों को शेर ने खा लिया।"

भूधर बाबू कहते, "किसी दिन हम लोगों को भी खा लेगा।"

नटू घोष कहता, "अनूपपुर में शेर नहीं आ सकता। इतनी बन्दूकें, रोशनी'''शेर को क्या डर नहीं होता?"

मुखर्जी बाबू इन बातों में सिर नहीं खपाते थे। अपनी लम्बी और ऊंची टेबिल पर झुके मेटम्बवायर और स्केल लिये कागज में निशान लगाते रहते और बीच-बीच में जेब से बीड़ा निकालकर पान खाते।

नटू घोष कहता, "लाओ, मुखर्जी बाबू, एक पान बढ़ाना इधर, हिसाब नहीं मिल रहा।"

आज भी याद है शुरू में मुखर्जी बाबू को नहीं जानता था। जो लोग टेनिस खेलने आते थे, उन्हें अच्छी तरह से ही जानता था। मुखर्जी बाबू उनमें नहीं थे। स्टेशन मास्टर अम्बिका बाबू धोती पहने ही खेलते। हुकुमसिंह चुस्त पाजामा पहनता था। फोरमैन मिस्टर प्रेमलानी पक्के साहबी लिबास में खेलते थे। मिस्टर जेनकिन्स हाफपैण्ट पहनते थे। इनके अलावा ओवरसियर नगेन सरकार को पहचानता था। नगेन सरकार की शादी नहीं हुई थी। वैसे तो ओवरसियर था। लेकिन घर पर हारमोनियम बजाकर गाता। शाम को जब अनाता

"अब नहीं, भाई। मुखर्जी बाबू को तकलीफ होगी।"

"ओह, तो यह कहिए कि आप ही नहीं छोड़ पायेंगी उन्हें!" कहकर नगेन सरकार ठहाका लगाकर हंसने लगता।

मुखर्जी बीबी भी हंसती।

मुखर्जी बाबू को पहले-पहल अपने घर पर ही देखा था। छुट्टियों में भैया के पास गया था। बाहर से आवाज सुनाई दी, "डॉक्टर बाबू, डॉक्टर बाबू हैं क्या?" आकर देखा, हाथ में थैले और टीन के खाली डिब्बे लिये कोई खड़ा था। पैरों में जूते, बाल तरतीब से सभाले हुए। मुंह पान की गिलौरियों से भरा था।

मुझे देखते ही वह आदमी जैसे सकपका गया। पूछने लगा, "तुम कौन हो?"

मैंने कहा, "मैं डॉक्टर बाबू का छोटा भाई हूं, छुट्टियों में घूमने आया हूं।"

"ओह, अच्छा! क्या करते हो? नाम क्या है?"

सब बतलाया। फिर से बोले, "बड़ी अच्छी बात है! जगह बड़ी अच्छी है। कुछ ही दिनों में मोटे हो जाओगे, मैं भी तुम्हारे जैसा ही पतला-दुबला था।"

फिर हाथ का छाता उठाकर दिखलाने लगे और हंस प॰ मैं भी हंस पड़ा। पूछा, "आप शायद यहां पर काम करते हैं?"

"हां, ड्राफ्ट्समैन हूं। सारा खर्चा निकालकर भी दो सौ में से सौ, सवा-सौ बच जाते हैं!"

मैं और क्या कहता।

मुखर्जी बाबू ही बतलाने लगे, "लेकिन कलकत्ता में? तीन सौ रुपये में भी बड़ी मुश्किल से काम चलता था, ठीक कह रहा हूं न?"

फिर सिर झुकाकर बोले, "वैसे यहां खर्चा ही क्या है?"

"क्यों? खर्चा नहीं है?"

मुखर्जी बाबू बोले, "अरे, खर्चा होगा कैसे? यहां मिलता ही क्या है? घर में सिर्फ दो प्राणी, मैं और मेरी पत्नी।"

फिर कहने लगे, "अब देखो कटनी जा रहा हूं। पूरे एक सप्ताह का

लू-बैंगन ले आऊंगा। बाकी जो खर्चा है मछली का, मागुर मछली गलाकर रख लेते हैं—खाओ, कितना खालोगे।"

तभी भैया आ गये।

"अरे डॉक्टर साहब, आपके लिए क्या लाना होगा?"

भैया ने कहा, "डबलरोटी ला पायेंगे, मुखर्जी बाबू?"

मुखर्जी बाबू बोले, "आप भी गजब करते हैं, मिस्टर जेनकिन्स के लिए अण्डे ला रहा हूं, मिस्टर प्रेमलानी का आटा पिसाना है, नटू बाबू की बीबी के लिए साड़ी ला रहा हूं, मजूमदार बाबू के बच्चों के जूते लाने हैं..."

भैया हंस पड़े। बोले, "बस-बस, मुखर्जी बाबू, और कहना नहीं होगा...!"

मुखर्जी बाबू ने खुद ही यह काम लिया था। बाजार से सामान वगैरह लाने के लिए कम्पनी से एक पास मिलता था। लेकिन जाये कौन? भरोसे का आदमी मिलना मुश्किल है। आखिर मुखर्जी बाबू ने खुद ही कहा था, "अगर आप लोगों को उज्र न हो, तो मैं जा सकता हूं।"

और तभी से शुरू हुआ!

मुखर्जी बीबी से पूछने पर उन्होंने बतलाया, "असल में बात यह है कि वे जरा खाने-पीने के शौकीन हैं!"

मैंने कहा, "आप जैसा खाना बनाती हैं, वैसा मिलने पर कौन खाने-पीने का शौकीन न होगा?"

मुखर्जी बीबी बोलीं, "खाना पकाना ऐसा कौन बड़ा काम है!"

नटू घोष की बीबी कहतीं, "भाई, तुमसे कुछ चीजें सीखनी होंगी।"

मुखर्जी बीबी कहतीं, "वाह, आपको और मैं सिखलाऊंगी खाना बनाना!"

"अरे, उस दिन तुम्हारे हाथ से बनी चीजों की बड़ी तारीफ हो रही थी।"

"ओ मां, कब?"

"उस दिन तुमने बिना मसाले की जो तरकारी भेजी थी न, तभी से रोज कहते हैं, वैसी ही तरकारी बनाओ न।'

मुखर्जी बीवी को घर का काम ही कितना होता था ! मुखर्जी बाबू के ऑफिस जाते ही छुट्टी। दोपहर को खाने आते थे।

मुखर्जी बाबू खाते-खाते कहते, "हां, आज नटू घोष कह रहा था, तुमने उसके यहां तरकारी भेजी है ?"

मुखर्जी बीवी कहती, "कुछ कह रहे थे क्या ? उस दिन जरा ज्यादा हो गयी थी, इसलिए भिजवा दी।"

मुखर्जी बाबू बोले, "उस रोज जैसी कटलेट बनाओ न, सभी बड़ी तारीफ कर रहे थे।"

सभी के घर छोटे-छोटे और एक-जैसे ही थे। अनूपपुर में जब बिलासपुर जाने वाली ट्रेन गुजरती, तो छोटे-छोटे मकान दिखलायी देते थे। छोटे होने पर भी घर बड़े कायदे से बने थे। हुकुमसिंह कॉन्ट्रैक्टर के आदमियों ने काफी मापजोख करके ये घर बनाए थे। नदी से पानी के आने का इन्तजाम किया था। दो पैसे घड़ा पानी। मिस्टर प्रेमलानी ने अपने घर के सामने बगीचा लगाया था। फोरमैन साहब के पास पैसा ज्यादा था, तरह-तरह के पेड़-पौधे लगा रखे थे। मिस्टर प्रेमलानी कभी-कभी अपने घर के सामने बगीचे से कुछ गुलाब मिस्टर जेनकिन्स के यहां भेज देते।

साहब उन फूलों को गुलदस्ते में सजाकर रखते। लेकिन उस दिन के बड़े-बड़े लाल फूल देखकर साहब ने पूछा, "किसने भेजा ?"

चपरासी कहता, "हुजूर, ड्राफ्ट्समैन साहब का बीवी भिजवाया है।"

मुखर्जी बीवी की हिम्मत भी कम नहीं थी। मिस्टर जेनकिन्स रोज शाम को घूमने निकलते। एक हाथ में बेंत होता और दूसरे में कुत्ते की चेन। कुत्ता बड़ा शैतान हो गया था।

मुखर्जी बीवी उस दिन घोष बीवी के साथ गपशप कर रही थी। लौटते समय ठीक सड़क पर आते ही साहब से आमना-सामना हो गया। साहब सीटी बजाते-बजाते चले ही जा रहे थे। मुखर्जी बीवी रुक गयी। सिर तक हाथ उठाकर बोलीं, "नमस्ते, साहब।"

मिस्टर जेनकिन्स हैरत से देखते रह गए। "कौन ?"

मुखर्जी बीवी मुस्कराने लगीं। फिर बोलीं, "मुझे नहीं पहचाना,

उस दिन कटलेट खिलायी थी न ?"

कटलेट की बात पर साहब को खयाल आया।

फिर कहा, "कल फूल तुमने ही भेजे थे ?"

"जी हां, फूल कैसे लगे ?"

"वेरी गुड, वेरी विग साइज, मुझे बहुत पसन्द आये।" कहकर जो साहब कभी भी मुस्कराते नहीं, जोर-जोर से हंसने लगे। साहब और भी नजदीक आये, शायद शेकहैण्ड करना चाहते थे। मुखर्जी बीवी दो कदम पीछे खिसक आयीं। फिर हंसते हुए बोलीं, "अच्छा साहब, नमस्ते।"

साहब ने भी दोनों हाथ उठाकर नमस्ते की।

उस दिन मिस्टर प्रेमलानी की बीवी को यही बात बतलाते-बतलाते मुखर्जी बीवी हंसते-हंसते लोट गयीं। फिर बोलीं, "मेरी तो समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या करूं, उधर साहब ने फिर से हाथ बढ़ाया—घर आकर सारे कपड़े धोये, तब जाकर किसी दूसरे काम में हाथ लगाया।"

"क्यों, कपड़े क्यों धोये, बहन ?'

"धोऊंगी नहीं ? उन लोगों की जात का क्या ठीक है कुछ ? गाय ये खायें, सूअर ये खायें।"

उस दिन भूधर बाबू को भी अजीब लगा। मुखर्जी बाबू ने आकर कहा, "सत्यनारायण की कथा होगी। आइएगा, बड़े बाबू।"

"सत्यनारायण की कथा ! कहते क्या हैं ? आपके यहां ?''

"हां, होती तो हर बार है, लेकिन हर बार बुला नहीं पाता।"

भूधर बाबू को और भी अजीब लगा।

"हर बार करते हैं ? पुरोहित कहां से लाते हैं ?"

मुखर्जी बाबू बोले, "कटनी से।"

"कटनी से पुरोहित लाकर कथा कहलाते हैं ?"

मुखर्जी बाबू ने कहा, "और चारा ही क्या है। यहां तो पुरोहित मिलेगा नहीं।"

"तब तो खरच भी काफी पड़ जाता होगा ? कितना बैठता है सब

मिलाकर ?"

मुखर्जी बाबू ने कहा, "सवा पांच रुपये पुरोहित की दक्षिणा···"

"सवा पांच रुपये ?"

मुखर्जी बाबू ने कहा, "सवा पांच न देने पर कटनी से आयेगा कौन? यहा आने पर दो दिन बेकार जाते हैं। इसके अलावा रहने, खाने और प्रसाद का खर्च।"

कटनी से पुरोहित लाकर सत्यनारायण की कथा कहलवाते हैं, सुनकर भूधर बाबू भी हैरान रह गये।

"तब तो आपकी पत्नी लगता है, बड़ी धार्मिक होंगी ?"

"आप तो जानते ही हैं, आखिर हिन्दू हैं न, वह सब नही छूटता। मेरी पत्नी कहती है, परदेश मे पड़े हैं, तो क्या अपना धर्म-कर्म छोड़ देंगे !"

भूधर बाबू ने कहा, "जरूर आऊँगा मुखर्जी बाबू, इन सब कामों के लिए मैं हमेशा साथ हूं। मैं भी तो यही कहता हू—परदेश मे म्लेच्छों के साथ काम करना पड़ रहा है, तो क्या अपनी जात भूल जाऊँ ! सच, बड़ी अच्छी बात है। इस जमाने मे भी ऐसी औरतें मौजूद हैं, यह काफी बड़ी बात है।"

हां तो, उस दिन प्रसाद की 'पंजीरी' बड़ी अच्छी बनी थी।

उस दिन मुखर्जी बीबी ने व्रत रखा। सुबह जब सारा अनूपपुर सो रहा था, वे नदी जाकर नहा आयी। करीब चार बजे होंगे।

नटू घोष की बीबी ने सुनकर पूछा, "इतनी सुबह अकेले जाते डर नहीं लगा ?"

उसके बाद शाम को पूजा हो जाने के बाद प्रसाद लिया।

नटू घोष कहने लगे, "तुम्हारी बीबी तो खूब है।"

भूधर बाबू बोले, "सारी औरतें अगर मुखर्जी बीबी जैसी हो जाती, तब बात ही क्या थी।"

ओवरसियर नगेन सरकार भी आया था। कहने लगा, "हारमो-

नियम होता, तो एक भजन गाता।"

मुखर्जी बीवी ने कहा, "मेरा हारमोनियम तो है ही, मँगवाऊँ?"

"आपका हारमोनियम! आप गाना भी जानती हैं?"

मुखर्जी बीवी ने कहा, "ऐसे ही जरा गा लेती हूं, लेकिन तुम लोगों के सुनने लायक नहीं है।"

लेकिन नगेन सरकार भला छोड़नेवाला आदमी था। कहने लगा, "जो भी हो, एक भजन तो गाना ही होगा।"

भूधरबाबू चुप थे। नटू घोष ने पूछा, "मुखर्जी बीवी गाना-बाना भी जानती हैं?"

सभी हैरान थे। इतनी धर्मशील, निष्ठावान, क्या बढ़िया खाना बनाती हैं, वही मुखर्जी बीवी गा भी सकती हैं!

मुखर्जी बीवी बोलीं, "पहले तुम शुरू तो करो, फिर देखा जायेगा?"

मिसेज प्रेमलानी, नटू घोष की बीवी, सभी हैरान थे, "हैं! गाना भी जानती हैं।"

नटू घोष की बीवी ने कहा, "तुम भई, असंख्य गुण वाली हो।"

मुखर्जी बीवी बोलीं, "नहीं जीजी, सुन-सुनाकर थोड़ा सीख लिया है।"

हारमोनियम आ गया। काफी दिनों से इस्तेमाल में नहीं आया था। बक्से पर धूल जम गयी थी। ओवरसियर नगेन सरकार आश्चर्य से बोला, "वाह! अरे, यह तो डबलरीड, स्केल चेन्ज हारमोनियम है, काफी कीमती चीज है।'

नटू घोष की बीवी ने पूछा, "मुखर्जी बाबू को शायद गाने-बजाने का शौक है?"

मुखर्जी बीवी हंसने लगीं, "नहीं जीजी, वह और गाना! उन्हें तो सिर्फ खाना खाता है, और बाजार का सामान लाना आता है।"

"फिर तुमने हारमोनियम क्यों खरीदा?"

"यह क्या आज का खरीदा हुआ है? अरसा हो गया। शादी से पहले मां ने खरीद दिया था।"

नगेन सरकार ने क्या जाने क्या गाया, किसी ने ध्यान नहीं दिया। नटू घोष को तो जम्हाई आने लगी। मिस्टर प्रेमलानी घर पर बच्चों को छोड़कर आए थे, उन्हें भी जाने की जल्दी थी। भूधर बाबू भी 'उठूं-उठूं' कर रहे थे।

काफी देर बाद नगेन सरकार का गाना पूरा हुआ। हारमोनियम मुखर्जी बीवी की ओर ठेलकर बोला, "अब आपकी बारी है!"

मुखर्जी बीवी बोली, "मैं क्या गाऊँगी, घर-गृहस्थी के झंझटों में वह सब कहां हो पाता है, याद भी नहीं है," कहकर थोड़ी देर हारमोनियम छेड़ती रहीं। फिर एक भजन शुरू किया—

"श्यामा मा आमार की कालो।"

भूधर बाबू सीधे होकर बैठ गये। नटू घोष को नींद आ रही थी, वह भी सजग हो गया।

मिस्टर प्रेमलानी दोनों आंखें बन्द कर वहीं झुक गये। सब कुछ जैसे रुक गया था। भजन के स्वर से जैसे भावों का ज्वार फूट रहा था। मैं मुखर्जी बीवी के सामने बैठा था। माथे पर सिन्दूर की बड़ी-सी बिंदी। गीले बाल पीठ पर लहरा रहे थे। सारे दिन निराहार रहीं। अजीब-सा करुणा-मिश्रित तेज उनके चेहरे पर झलक आया था। चौड़े लाल किनारे की साड़ी और हल्का-सा घूंघट। मुखर्जी बीवी गा रही थीं, और हम सभी मुग्ध भाव से सुन रहे थे।

वाह, क्या भजन था!

भूधर बाबू तो भावविभोर होकर एकदम रोने ही लगे। मिस्टर प्रेमलानी उसी तरह आंखें बन्द किये आगे की ओर झुके हुए बैठे थे। नटू घोष सोचते-सोचते हैरान थे, लेकिन कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था, आश्चर्य से मुखर्जी बीवी की ओर देख रहे थे। मिस्टर प्रेमलानी और नटू घोष दोनों बीबियों के चेहरे से घूंघट खिसक गया था। आज भी याद है अनूपपुर के उस मकान में बैठे हम सभी लोग जैसे कुछ देर के लिए मन्त्रमुग्ध-से हो गये थे।

भजन कब पूरा हो गया, किसी को पता ही नहीं लगा। नटू घोष ने कहा, "वाह, क्या बात है !"

मिस्टर प्रेमलानी कह उठे, "वण्डरफूल ! मार्वेलस !"

नगेन सरकार ने कहा, "आप इतना अच्छा गाती हैं और हम लोग को इससे वंचित रखा, आपको यह न करना चाहिए था।"

भूधर बाबू अभी तक चुप थे।

उनकी भी जैसे नींद टूटी। "मां-मां," करने लगे। फिर बोले, "खुद भगवान की कृपा के बिना ऐसा गला किसी को नहीं मिलता। नगेन बाबू, यह हम लोगों की मां हैं, साक्षात् देवी।"

मुखर्जी बीबी जैसे शर्म से दबी जा रही थीं। कहने लगीं, "आप भी कैसी बातें करते हैं, बड़े बाबू, यह सब कहकर मुझे लज्जित न करें !"

नटू घोष की बीबी ने आगे बढ़कर मुखर्जी बीबी का हाथ पकड़ लिया।

कहने लगीं, "तुम्हारे पाँवों की धूल लेने की इच्छा हो रही है।"

मुखर्जी बीबी ने रोकते हुए कहा, "छी-छी, यह सब कहकर क्यों नरक में ढकेलना चाहती हैं," और झुककर खुद ही घोष बीबी के पाँव छू लिये।

भूधर बाबू ने कहा, "मुखर्जी बाबू, तुम्हारी कुण्डली है ?"

मुखर्जी बाबू अभी तक चुपचाप बैठे थे, जैसे कोई भी बात उनके कान में न जा रही हो। बोले, "कुण्डली तो मेरी है नहीं, बड़े बाबू..."

नटू घोष ने चौंककर कहा, "क्यों ? आप क्या कुण्डली देखना जानते हैं, बड़े बाबू ?"

भूधर बाबू बोले, "अरे, नहीं, सिर्फ इतना ही देखता कि मुखर्जी बाबू के जाया स्थान में कौन-सा ग्रह है, वृहस्पति स्वक्षेत्र में हुए बिना नसीब में ऐसी बहू नहीं जुटती।"

सचमुच मुखर्जी बाबू को स्त्री-सुख मिला था। खाना अच्छा बना लेतीं या गाना-बजाना जानती हैं, इसलिए नहीं, मुखर्जी बीबी के अन्दर और भी कितनी ही विशेषताएं थीं। उनके गुणों का जैसे अन्त नहीं था। घर जाकर देखता, मुखर्जी बाबू के आफिस जाने के बाद मुखर्जी

बीवी घर संभालती होती। मुखर्जी के कपड़े अलगनी पर लटकाकर झाड़ू लगाती होती, जब कि सुबह ही नौकरानी सफाई कर गयी है।

मैं कहता, "यह क्या, झाड़ू लगा रही हैं?"

"नौकरानी के भरोसे छोड़ दूं, तो शायद घर गन्दा ही पड़ा रहे। मैं गन्दगी नहीं देख पाती।" सिर्फ घर का काम ही नहीं। खा-पीकर मुखर्जी बाबू जब आफिस चले जाते, मुखर्जी बीवी निकल पड़ती। चिलचिलाती धूप में ही मुखर्जी बीवी साड़ी के पल्लू से सिर ढके प्रेमलानी साहब के घर पहुंचकर कहती, "अरे, मेम साहब कहां गयी?"

मिसेज प्रेमलानी दोपहर के खाने के बाद उस समय कमर सीधी कर रही होती। गोल-मटोल देह। मुखर्जी बीबी की आवाज सुनकर उठ बैठती।

मुखर्जी बीवी कहती, "मेम साहब को उठाने चली आयी।"

"आओ, बहन, आओ।"

मुखर्जी बीबी कहती, "इतना सोती है, इसी वजह से इतनी मोटी हो रही हैं। चार दिन बाद ही मिस्टर प्रेमलानी को दोनों बाहों में भी नहीं समा पाओगी।"

मिसेज प्रेमलानी खिलखिला पड़तीं। मुखर्जी बीबी भी हँसने लगतीं।

मिसेज प्रेमलानी कहती, "अब तो बुढ़ापा आ गया।"

"बुढ़ापे में ही तो 'रस' [illegible] होता है। [illegible] है। इसी उम्र में पिरीत की [illegible] बनती है।"

मिसेज प्रेमलानी के पल्ले कुछ भी न पड़ता। मुश्किल से [illegible] शब्द बंगला जानती थीं। पूछतीं, "पिरीत क्या होती है?"

"पिरीत के माने [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] पिरीत धरम, पिरीत ही [illegible]?"

"न भई, कुछ पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा। [illegible]
सिखला दो।"

मुखर्जी बीबी [illegible]
सिखलाऊंगी, [illegible]

ठीक हैं न ?"

"उन्हें क्या हुआ है?" मिसेज प्रेमलानी की समझ में नहीं आ रहा था।

"देखती हूं, अपने भरतार की कोई खबर ही नहीं रखतीं। सुनो..." कहकर आंचल की गांठ खोलकर कोई बूटी निकाली, फिर बोलीं, "अच्छी तरह धुली सिल पर घिसकर सुबह-शाम साहब को खिला देना—उस रोज रास्ते में दीख गए। बेचारे शर्मीले हैं न, देखकर भी दूसरी ओर जाने लगे। पूछा, 'प्रेमलानी साहब, क्या हाल है?' कहने लगे, 'कमर में दर्द रहता है, कई दिनों से सो नहीं पाता।' यह बूटी खाने पर नींद भी पूरी होगी, कमर का दर्द भी ठीक हो जायेगा।"

फिर मिसेज प्रेमलानी के कान के पास मुंह ले जाकर कहा, "लेकिन मेम साहब, एक बात का खयाल रखना, जब तक इस बूटी का सेवन करें, दोनों एक साथ नहीं सो पाओगे—क्यों, याद रहेगा न ? खराब तो नहीं लगेगा ?"

सुनकर मिसेज प्रेमलानी खिलखिला उठीं। मुखर्जी बीबी भी हंसते-हंसते बोलीं, "चलूं भई, उधर देर हो रही है। नटू घोष की बीबी के फिर बच्चा होने वाला है। एक बार उसके यहां भी जाना होगा।"

नटू घोष के यहां नौकरानी आ चुकी थी। दरवाजा खुला ही था। मुखर्जी बीबी ने पूछा, "जीजी कहां हैं ?"

अन्दर से आवाज आयी, "इधर हूं, बहन, चली आओ।"

नटू घोष के कई बच्चे हैं। बड़ी लड़की की उम्र ही सोलह होगी। इसके बाद तेरह, बारह, ग्यारह। अब तक सारे बच्चे कलकत्ता में ही हुए। कोई तकलीफ नहीं हुई। लेकिन यहां जंगल में कहां दाई है, कहां डॉक्टर मिलेगा और दवा का तो नाम लेना ही बेकार है। जरा भी कोई खास दवा हो, हेड ऑफिस लिखो। उत्तर आने में तीन महीने, फिर दवा आने में और भी एक महीना। तब तक रोगी का श्राद्ध हो चुका होता। शुरू-शुरू में तो हाल और भी खराब था। हेड ऑफिस लिखने से भी कोई

सुनवायी नहीं होती थी। अस्पताल के सामने सारे दिन भीड़ रहती। सिर्फ कम्पनी या कॉलोनी के लोग ही नहीं, बाहर से भी कितने ही लोग आते। तीस-तीस मील दूर से मरीज आते। और रोग भी एक! एक घाव होने पर ठीक होने का नाम ही नहीं लेता।

मिस्टर जेनकिन्स विलायती आदमी ठहरे। बहू है या नहीं, कोई नहीं जानता। होगी भी तो सात समुद्र और तेरह नदी पार पड़ी होगी। यहां भी अकेले पड़े-पड़े तारे गिनने नहीं आये थे। रात को चपरासी गाव चला जाता। एक-न-एक चाहिए ही। वैसे मिस्टर जेनकिन्स आदमी भले थे। हर एक को पाच-पांच रुपया देते। ज्यादा खुश करने पर पन्द्रह भी दे डालते। इसके बाद रोग जब जोर पकड़ता, तो डॉक्टर को बुलाते। कहते, "डॉक्टर, बड़ा दर्द हो रहा है, दवा दो।"

दवा से हालत सुधरती, लेकिन दो दिन बाद ही फिर वही हाल।

भूधर बाबू कहते, "म्लेच्छ, म्लेच्छ, रोज दो बार नहाता हूं, बेकार में!"

नटू घोष पूछता, "और तनखाह?"

भूधर बाबू कहते, "जा रहा हू न लेकर, तालाब में फेंक दूंगा।"

फिर पूछने लगे, "घर मे कैसे चल रहा है सब?"

नटू घोष कहता, "उसकी कोई फिक्र नहीं है, मुखर्जी बीबी सब सभाल लेंगी।"

सचमुच नटू घोष को जरा भी फिक्र नहीं करनी पडी। नटू घोष की बडी-बडी लड़कियों को भी नहीं करना पड़ा। बड़ी लड़की शेफाली कहती, "चाची, अब घर जाइए, मुखर्जी बाबू अकेले होंगे।"

मुखर्जी बीबी कहती, "मुखर्जी बाबू की फिक्र तुझे नहीं करनी होगी, एक काम करो, बुलू-टुलू को नहलाकर खाना खिला दो।"

· उन दिनों मुखर्जी बाबू खुद ही खाना पकाते। खाना क्या, चावल के साथ ही आलू उबाल लेते। घर की एक चाबी मुखर्जी बाबू के पास थी और एक मुखर्जी बीबी के पास। उस दिन भोर चार बजे उठकर जो

थीं, तो गयी हीं। आते वक्त कह आयी थीं, "दरवाजा खुला छोड़कर त चल देना, मैं जा रही हूं।"

इसके बाद से नटू घोष के यहां ही थीं। सात बच्चों की मां होने से या हुआ, नयी जगह, कब क्या हो जाये। डॉक्टर है जरूर, लेकिन उसका भी क्या ठीक है! इसी डर से शायद सूखकर आधी रह गयी थीं। मुखर्जी बीबी से कहतीं, "क्या होगा, भई? कौन देखेगा?"

मुखर्जी बीबी ने कह रखा था, नौकर को कह रखना कि डॉक्टर को खबर देकर मुझे एक आवाज दे आये, मैं खिड़की के पास ही सोती हूं; कितनी भी रात हो, एक बार आवाज देते ही चली आऊंगी, डरने की कोई बात नहीं है।"

कॉलोनी के घर! एक यहां, तो दूसरा वहां। इस घर से उस घर को आवाज सुनायी नहीं देती। रात को पूरी कॉलोनी सांय-सांय करती। सांप, बिच्छू, चीते, भालू सभी हैं। दोपहर अच्छी रहती है। नदी के इस पार से दूसरी ओर तक दिखलायी देता है। काली-काली सूखी मिट्टी। उधर पहाड़ी के पास हुकुमसिंह का दोमंजिला बंगला है। इसके बाद सिर्फ जंगल। उत्तर की ओर नदी किनारे एक पहाड़ है, जहां रोज सुबह पत्थर तोड़ने का काम शुरू होता है। गढ़ा खोदकर कुली उसमें डायनामाइट लगा देते और दौड़ जाते। थोड़ी देर बाद धड़ाम की आवाज होती। चट्टान टुकड़े-टुकड़े होकर फैल जाती। नटू घोष के बच्चे कॉलोनी से देखते। लेकिन रात को ही डर ज्यादा लगता था। बिलासपुर से एक पैसेन्जर ट्रेन छुक-छुक करती आती। ट्रेन जब पुल से गुजरती तो अजीब-सी भयानक आवाज होती, जिसे सुनकर नटू घोष की बीबी डर के मारे अधमरी हो जाती।

खबर पाते ही मुखर्जी बीबी आ पहुंचीं।

नटू घोष चहलकदमी कर रहे थे। मुखर्जी बीबी कहतीं, "भण्डार की चाबी किधर है, लाइए! डॉक्टर को बुलाने कोई गया है न?"

नटू घोष ने कहा, "हां।"

फिर तो मुखर्जी बीबी जो घुसीं, तो पूरे तीन दिन बाद बाहर

निकली। रात-दिन जच्चा के पास बैठी रहती। मेरे भाई जितनी बार गए, मुखर्जी बीबी की सेवा देखकर हैरान रह गए। इस बार लड़का हुआ था, लेकिन मरा हुआ। नटू घोष की बीबी शायद मर ही जाती। सेरों खून निकल गया। जच्चा का सारा काम और उधर बच्चों को देखना।

नटू घोष तक हैरान रह गया था। कहता था, "मुखर्जी बीबी ने खूब निभाया।"

मुखर्जी बीबी ने कहा था, "अरे, क्या किया लडके को ही नही बचा पायी।"

नटू घोष ने कहा, "आदमी बच गया, यही क्या कम है।"

मुखर्जी बीबी ने कहा, "आप आज आफिस जाइए।"

"मैं आफिस जाऊंगा, तो देखेगा कौन?"

"मैं तो हू, सब ठीक हो जाएगा।"

नटू घोष बोला, "मुखर्जी बाबू को काफी तकलीफ हो रही होगी, खुद खाना बनाते होंगे।"

"जो भी हो, कह दीजिएगा दो दिन और नही आ सकूगी, जरा काट लें किसी तरह।"

प्रेमलानी साहब की मेमसाहब भी देख गयीं। नटू घोष की बीबी की हालत सुधर रही थी। कहती, "मुखर्जी बीबी की वजह से ही बच गयी, नहीं तो इस बार जो हालत हुई थी..."

रास्ते में ओवरसियर नगेन सरकार मिल गया। कहने लगा, "बलिहारी आपकी!"

मुखर्जी बीबी ने मुसकराते हुए कहा, "क्यों लाला, मैंने ऐसा क्या कर दिया?"

"सच, आप मनुष्य नही हैं!"

"कहते क्या हो, मनुष्य नहीं हूं, तो क्या राक्षसी हू?"

"हमारे कारखाने में आपको लेकर बातें हो रही थी।"

"तब तो आप लोगो के कारखाने मे खूब काम होता होगा?"

"मजाक नही कर रहा, डॉक्टर बाबू कह रहे थे कि इतनी अच्छी

देखभाल नर्स भी नहीं कर पाती।"

भूधर वावू कहा करते थे, "अरे, करेक्टर ही सब कुछ है। जानते हो, कटलेट खाओ या चॉप। अगर करेक्टर अच्छा है, तो आदमी के लिए कोई भी काम मुश्किल नहीं है।"

नगेन सरकार अगले दिन सीधा घर आ पहुंचा। वाहर से ही पुकारता आया, "मुखर्जी वीवी, ए मुखर्जी वीवी !"

अन्दर से मुखर्जी वीवी की आवाज आयी, "कौन ? लाला ? अरे, आओ भाई, आओ।" और खुद भी वाहर चली आयीं, "क्या वात है ? अचानक कैसे ? कारखाना वन्द है ?"

नगेन सरकार अन्दर आकर वैठा। वोला, "आज छुट्टी ले रखी है।"

मुखर्जी वीवी ने पूछा, "तुम्हारे हाथों में यह क्या है ?"

"हनुमानजी को भोग चढ़ाने गया था। प्रसाद है।" हनुमानजी का मन्दिर अनूपपुर से चालीस मील है, वैलगाड़ी से जाना पड़ता था।

मुखर्जी वीवी वोलीं, "अरे, वाह, लाला ? देखती हूं आजकल भक्ति-वक्ति भी हो रही है।"

"अरे, नहीं, तनखाह में कुछ रुपये वढ़े हैं न, इसी से।"

"कितने वढ़े ?"

नगेन सरकार वोला, "पचास रुपये। सोचा, सवसे पहले प्रसाद मुखर्जी वीवी को ही दे आऊं, आपको पहले देने से पुण्य होगा, पुण्यात्मा ठहरीं न !"

मुखर्जी वीवी वोलीं, "एक मिनट ठहरो, जरा वासी कपड़े वदल आऊं।" कहकर मुखर्जी वीवी अन्दर जाकर टसर की साड़ी पहन आयीं। दोनों हाथों में प्रसाद लेकर माथे से लगाया, फिर वोलीं, "लाला, अव तो शादी कर डालो, तनखाह भी वढ़ गयी है।"

"लड़की कहां है, खोज दीजिए न, अभी शादी करता हूं।"

"तुम भी अजीव वातें करते हो, लाला ! वंगाल में लड़कियों का

अभाव है?"

"तो खोज दीजिए न एक अपनी जैसी लड़की।"

मुखर्जी बीबी खिलखिलाने लगी। नगेन सरकार भी हँसने लगा। "लगता है, लाला को मैं काफी पसन्द आ गयी हूं?"

"आप-जैसी लड़की किसे पसन्द न आयेगी?"

"लेकिन तुम्हारे मुखर्जी बाबू को तो कोई खास पसन्द नहीं हूं।"

नगेन सरकार कहने लगा, "अरे, छोड़िए भी! यह बात मुखर्जी बाबू खुद कहें, तो भी यकीन नहीं करूंगा।"

मुखर्जी बीबी बोली, "तभी तो एक दिन पूछा था, यहां के सभी लोग मेरी बड़ाई करते है, लेकिन तुम्हारे मुंह से तो एक बार भी सुना नहीं।"

"उन्होंने क्या कहा?"

मुखर्जी बीबी ने बताया, "उनकी बात छोड़ दो, किसी के तीन-पांच में नहीं रहते, बाजार और खाना ठीक से हो जाए, तो उन्हें और किसी चीज से मतलब नहीं है। इतने दिन मैं नटू घोष के यहां रह आयी, उन्हें इस बात पर भी गुस्सा नहीं है।"

नगेन सरकार बोला, "तभी तो हम लोग कहते हैं…"

"क्या?"

"स्टोर्स के बड़े बाबू को पहचानती हैं, वही अपने भूधर बाबू?"

"वही, जिनके सिर पर चोटी है?"

"हां, बड़े सात्विक किस्म के आदमी हैं, रोज नदी जाते हैं, उसके बाद सन्ध्या-वन्दन करके तब कोई दूसरा काम करते हैं! और सिर्फ भूधर बाबू ही क्यों, मिस्टर बेनकिन्स भी तो आपकी बड़ाई करते हैं।"

"वह तो मेरे हाथ की कटलेट खाकर।"

"नहीं, मुखर्जी बीबी, नटू घोष की बीबी को आपने जो पैसा भी वह भी साहब के कान में पड़ी है। अस्पताल में नर्स लगायेगी, हेड चिट्ठी चली गयी है।"

"जो भी हो लाला, तुम्हारे साहब अच्छे अ

"क्यों? साहब ने क्या किया?"

मुखर्जी बीबी ने कहा, "यह जो रोज गांव की लड़कियों वाला किस्सा खड़ा करते हैं, यह क्या अच्छी बात है? तुम लोग आपत्ति नहीं करते?"

नगेन सरकार ने कहा, "साहब बेचारे क्या करें, अकेले आदमी, मेम-साहब भी नहीं है, बेचारे क्या करें?"

"लेकिन इसके बिना क्या चलता नहीं? अपने भूधर बाबू हैं, तुम हो, तुम लोग क्या करते हो रात काटने के लिए, तुम लोग जिन्दा नहीं हो?"

नगेन सरकार ने कहा, "हम लोगों की बात और है, हम लोग ठहरे गरीब ओवरसियर या क्लर्क, हम लोग वह सब करने लायक भी नहीं हैं।"

मुखर्जी बीबी ने कहा, "अच्छा लाला, यह जो प्रसाद चढ़ाने गये इतनी दूर, तुम लोग एक मन्दिर नहीं बनवा सकते?"

"मन्दिर? लेकिन इतने रुपये कहां से आयेंगे?"

"तुम लोग भी खूब हो, एक अच्छे काम का नाम लेते ही रुपयों की कमी—हर एक से पांच-पांच रुपये भी इकट्ठे नहीं कर सकते?"

"पांच रुपये से क्या होगा?"

"हर आदमी पांच-पांच रुपये दे, तो बड़ी आसानी से मन्दिर बन सकता है।" मुखर्जी बीबी ने झट हिसाब लगा दिया, "पांच रुपये होने से तीन सौ तो वैसे ही होते हैं। इसके अलावा कॉन्ट्रैक्टर हुकुमसिंह है, फोरमैन मिस्टर प्रेमलानी हैं, डॉक्टर बाबू हैं, मिस्टर जेनकिन्स हैं।"

हिसाब लगाने पर पाया गया, बड़ी आसानी से तीन हजार रुपये हो सकते हैं।

अनूपपुर में मन्दिर-प्रतिष्ठा होने वाले दिन की बात आज इतने अरसे बाद भी याद है। सभी हिन्दू। अजीब-सा जोश छाया था। ज्यादातर लोगों की गृहस्थी बीबी-बच्चों को लेकर ही थी। घर, पानी, डॉक्टर, अस्पताल—हर चीज का इन्तजाम कम्पनी की ओर से था। लेकिन हिंदुओं के लिए मन्दिर का होना भी जरूरी है। सभी का फायदा है। नटू घोष

बाबू ने इस बात का समर्थन किया, बोले, "मुखर्जी बीबी ने बात ठीक ही उठायी है। उसी दिन मेरी बीबी ने उपवास किया था, लेकिन शिव ही नहीं हैं, जल किस पर चढाती !"

मिस्टर प्रेमलानी ने कहा, "वॅरी गुड आइडिया, मैं पचास रुपये दूंगा, कारखाने में पत्थर और सीमेंट फ्री।"

मिस्टर जेनकिन्स की सिफारिश से हेडआफिस को चिट्ठी लिखी गयी।

नटू घोष की बीवी ने कहा, "बडी भाग्यवान माँ थी, जिसने तुम्हें पैदा किया। वे धन्य-धन्य कर रहे थे तुम्हारे लिए।"

मिसेज प्रेमलानी बोली, "तुम्हारी कोशिशों से ही सब हुआ, बहन।"

मुखर्जी बीबी ने कहा, "पहले बन तो जाये, फिर कहना।"

कुछ कुंवारे क्लर्क जो मेस में रहते थे, वे तक कहते थे, "मुखर्जी बीबी वाकई दिलेर औरत है।"

स्टोर्स के बडे बाबू भूधर बाबू कहते, "समझे भैया, मैंने कहा था न, दुनिया में अगर कोई असली चीज है, तो वह है करेक्टर। अगर करेक्टर सच्चा है, तो रुपया-पैसा कुछ नहीं। मुखर्जी बीबी का करेक्टर सोने जैसा है।"

शुरू-शुरू में नये क्लर्कों को उनके बारे में सन्देह हुआ था। मुखर्जी बाबू जिस दिन बीबी को लेकर अनूपपुर स्टेशन पर उतरे, स्टेशन मास्टर अम्बिका बाबू ने देखा था।

ए० एस० एम० ने काजीलाल बाबू से पूछा था, "कौन है? क्या पूछ रहा था?"

कांजीलाल बाबू ने कहा, "कॉन्ट्रक्शन का आदमी है, नौकरी पर आया है—साथ में शायद बीबी है?"

हां, तो शुरू-शुरू में सभी को शक हुआ था। मुखर्जी बीबी को मुखर्जी बाबू के साथ देखकर लडके हँसते। मुखर्जी बीबी मुखर्जी बाबू से ठीक उल्टी थीं। मुखर्जी बीबी का ताकना, चलना, पान खाना, बात करना—

हर बात में जैसे जरा अल्हड़पन, जरा मस्ती थी; जबकि मुखर्जी बाबू सीधे-सादे आदमी थे। कपड़े वगैरह भी साधारण। उधर मुखर्जी बीबी एकदम टिपटॉप किस्म की थीं।

नटू घोष की बीबी को भी तब अजीब लगा था। मजूमदार की बीबी से पूछा था, "जीजी, यह तेरह नम्बर में कौन आया है?"

मजूमदार की बीबी ने कहा, "मैंने तो देखा नहीं, क्यों? क्या बात है?"

नटू घोष की बीबी ने कहा, "चलोगी एक दिन?"

लेकिन मजूमदार की बीबी का जाना नहीं हो पाया। स्टेशन से इतनी दूर आना कोई आसान बात थोड़े ही है। नटू घोष की बीबी अकेली एक दिन लड़की को लेकर आ पहुंची। मुखर्जी बीबी ने पहले दिन ही बहनापा जोड़ लिया।

कहने लगीं, "नयी जगह है, वे भी जरा डरपोक किस्म के हैं, जरा खयाल रखियेगा।"

"हम लोग तो भाई नये ही हैं, यहां पुराना कौन है?" वहीं से शुरुआत हुई, फिर तो सभी के साथ उठना-बैठना हो गया। जो लड़के अब तक फब्तियां कसते थे, अब, 'मुखर्जी बीबी-मुखर्जी बीबी' करते नहीं अघाते थे। नेपाल जब-तब आता था। कहता, "भाभी, चाय तो पिलाओ जरा।"

मुखर्जी बीबी कहतीं, "तू तो आजकल दिखलायी ही नहीं देता?"

"हेड ऑफिस गया था, बृहस्पतिवार को ही वापस आया हूं।"

"बृहस्पतिवार का आया है और आज शनिवार हो गया, इस बीच ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा कि शक्ल भी नहीं दिखलायी? भाभी को एकदम भूल गया!"

सिर्फ नेपाल ही क्यों! अरुण और विमल का भी यही हाल है। अचानक किसी दिन अरुण आ धमकता, "भाभी, जरा तरकारी तो दो!"

"खाली तरकारी! खाली तरकारी का क्या करेगा?"

अरुण कहता, "आज नेपाल ने खाना बनाया था, नमक डालकर जहर बना दिया है—लाओ, किस चीज़ की तरकारी बनी है, नहीं तो आज खाना ही गोल होगा।"

मुखर्जी बीबी हंसती-हंसती कहती, "तुम लोग भी अजीब हो। मैं नहीं होती, तो आज भूखे ही सो जाते।"

काफी सारी दाल और आलू-मछली की तरकारी मिली देखकर अरुण हैरान रह गया। कहने लगा, "अरे बाबा, इतनी सारी तरकारी कौन खायेगा ? हम लोग तो दो ही हैं।"

"ठीक है, तुम लोग खाओ।"

"यह क्या, सब कुछ ही हम लोगों को दे डाला, तुम लोग क्या खाओगे ? मुखर्जी बाबू भी तो खायेंगे ?"

"वह सब देखा जायेगा, तुम ले जाओ।"

किसी-किसी दिन ताश की बाजी जमती। जोड़ी बनती। मुखर्जी बीबी और नेपाल एक ओर, दूसरी ओर अरुण और विमल। खेलते-खेलते झगड़ा भी होता, फिर ठीक भी हो जाता। मुखर्जी बीबी कहती "ना बाबा, नेपाल को लेकर अब नहीं खेलना है। अरुण, कल से मेरे साथ तुम खेलना।"

नेपाल कहता, "वाह, मुझे क्या पता था कि तुम्हारे पास ईंट का इक्का है ?"

मुखर्जी बीबी कहती, "तू भी बुद्धू ही रहा, देख रहा है कि मैं नहला चलकर चुप रही, तुझे समझ लेना चाहिए था।"

खेल के बीच में ही अचानक मुखर्जी बाबू आ जाते। कहते, "तुम लोग खेलो !"

फिर मुखर्जी बीबी की ओर देखकर कहते, "जरा तीन रुपये तो देना !"

मुखर्जी बीबी कहती, "फिर रुपया, आखिर क्या होगा ?"

"ऑफिस में मिठाई खाना चाहते हैं।"

"क्यों ? मिठाई किस बात की ?"

"पांच रुपये बढ़े हैं न तनखाह में।"

मुखर्जी बीबी उस समय खेल में लगी थीं। बादशाह बचाना था। सिर उठाने की फुरसत नहीं थी। बोलीं, "ताला खोलकर बक्से में से निकाल लो।"

इस बार ये नेपाल वगैरह ही आगे आये। कहने लगे, "तुम्हारे मन्दिर के लिए हम लोग चन्दा इकट्ठा कर लेंगे, कितना रुपया लगेगा ?"

चन्दे को लेकर शुरू में जरा हल्ला मचा। सभी पांच रुपये नहीं दे पायेंगे। खासकर जिन लोगों की तनखाह कम है, पर ऐसे दो-एक लोग ही थे।

उन लोगों ने कहा, "मन्दिर बनवाने से फायदा ? उससे तो ड्रामा हो जाये! 'शाहजहां' या 'मेवाड़ पतन' खेला जाये। इन्हीं रुपयों में कलकत्ता से ड्रेस, पेण्टर लाकर दो रात ड्रामा खेला जा सकता है। फिर भी रुपया बच जाये, तो पार्टी कर दी जायेगी।"

नटू घोष ने कहा, "ड्रामे-वामे के लिए मैं एक पैसा नहीं दूंगा।"

मिस्टर प्रेमलानी ने कहा, "क्यों ? टेम्पल क्यों नहीं बनेगा ?"

"कुछ लोगों का खयाल है कि मन्दिर न बनवाकर ड्रामा खेला जाये।'

मिस्टर प्रेमलानी बोले, "ड्रामा ! ड्रामा भी खराब चीज नहीं है, ड्रामा ही हो !"

लेकिन स्टोर्स के बड़े बाबू भूधर बाबू ने कहा, "मुझे पहले ही मालूम था नहीं होगा, बंगालियों में एकता हो ही नहीं सकती। मैंने तभी कहा था—करेक्टर के बिना यह एकता-वेकता सब हवा हो जाती है। जो करना है करो, मेरे पांच रुपये लौटा दो।"

बात करीब-करीब बिगड़ ही चुकी थी। अचानक किसी से सुनकर मुखर्जी बीबी आ पहुंचीं। छुट्टी का दिन था। नगेन सरकार घर पर बैठे हारमोनियम पर गला साध रहे थे। खिड़की खुली थी। घर के सामने पहुंचकर उन्होंने पुकारा, "लाला...!"

मुखर्जी बीबी को देखते ही नगेन सरकार ने गाना बन्द कर दिया।

बोला, "आप?"

मुखर्जी बीवी ने कहा, "कौन कहता है, मन्दिर नहीं बनेगा?"

मुखर्जी बीवी की सूरत देखकर नगेन सरकार डर गया। बोला, "कुछ लोग कह रहे हैं...!"

"कौन-कौन हैं?"

नगेन सरकार ने कहा, "नाम...!"

मुखर्जी बीवी ने कहा, "मैं कहती हूं मन्दिर बनेगा—कम्पनी रुपया दे या न दे, और कोई भी दे या न दे, पर मन्दिर बनेगा!"

नगेन सरकार को जवाब नहीं सूझ रहा था। मुखर्जी बीवी ने कहा, "तुम हो कि नहीं मेरे साथ?"

नगेन ने कहा, "मैं तो आपके साथ हूं।"

"तब ये लो," कहकर मुखर्जी बीवी ने अपनी कलाइयों में पहनी चूड़ियां उतार डाली, बोली, "कोई नहीं देता तो न दे, ये रखो। जरूरत पड़ने पर चन्दे में दे देना।"

इसके बाद नगेन सरकार और मुखर्जी बीवी घर-घर गये। सभी को समझाया। उन लोगों की भी बातें सुनी। नेपाल, अरुण और विमल भी आ जुटे।

नेपाल ने कहा, "तुम जरा भी फिक्र न करो, हम लोग रुपयों का इन्तजाम कर देंगे।"

उसी दिन से कॉलोनी में चन्दे की उगाही पूरे जोर से शुरू हो गयी। नेपाल वगैरह स्टेशन जाकर चन्दा मांगते। कोई देता, कोई न देता। एक पैसा, दो पैसे से शुरू कर कोई-कोई एक रुपया, दो रुपया भी देता। पहले दिन ही बीस रुपये बारह आने इकट्ठे हुए, अगले दिन तेईस रुपये दो पैसे।

मुखर्जी बीवी की बात सुनकर मिसेज प्रेमलानी ने भी अपनी चूड़ियां उतार दी। नटू घोष की बीवी चूड़ियां नहीं दे पायी। कई लड़कियां हैं। सब की शादी करनी होगी। फिर भी बीस रुपये चन्दा दिया।

मिस्टर जेनकिन्स ने अपनी पॉकिट में से पांच सौ रुपये दिये। हेड-ऑफिस से परमिशन आ गयी थी। जमीन देने के लिए कम्पनी राज़ी थी। मुखर्जी बीबी खुद आकर हमारे यहां कह गयीं, "डॉक्टर बाबू, अगले शनिवार की शाम को आपको आना होगा, नींव उसी दिन खुदेगी।"

आज इतने दिन बाद बिडन स्क्वायर के नजदीक मुखर्जी बाबू के सामने खड़े-खड़े सारी बातें याद आ रही थीं। कॉलोनी के मैदान के सहारे अस्पताल के ठीक पीछे। क्या भीड़ थी उस दिन! कोई बाकी नहीं रहा। उधर बिजुरी, मनेन्द्रगढ़, चिरागिरी से भी लोग आये थे। कॉन्ट्रैक्टर हुकुमसिंह खुद खड़े-खड़े सारा इन्तजाम देख रहे थे।

मुखर्जी बीबी हरेक के पास जाकर कह रही थीं, "आप लोगों के आने से हमारा उत्साह बढ़ा है।"

नटू घोष ने सभी के साथ परिचय करा दिया। कहते, "आप ही मुखर्जी बीबी हैं, मिसेज मुखर्जी, यह मन्दिर एक तरह से आप ही की कोशिशों का फल है।"

मुखर्जी बीबी उस दिन पानी तक नहीं पी पायी थीं। कामकाज निबटाकर जब लौटीं, रात हो चुकी थी।

नेपाल वगैरह भी आये थे। मुखर्जी बीबी ने कहा, "तुम लोग कल सुबह आना, आज का हिसाब करना होगा।"

हिसाब बड़ा पक्का था। एक-एक पैसे का हिसाब मिलाने के लिए मुखर्जी बीबी घंटों सिर खपातीं।

कहतीं, "मन्दिर का पैसा है, जरा भी गड़बड़ हो गयी, तो कौन जिम्मेदार होगा?"

हर रोज रात को फर्श पर दरी बिछाकर, रुपये-पैसे फैलाकर हिसाब होता। नगेन सरकार आता। नेपाल आता। अरुण और बिमल भी आते।

मुखर्जी बीबी कहतीं, "कल जो आटा आया था, उसका हिसाब नहीं मिला? तुम्हें पांच रुपये का नोट दिया था, उसमें से तीन रुपया साढ़े तेरह आना है। बाकी एक रुपये ढाई आने का क्या लाये?"

नगेन सरकार कहता, "पुरोहित को तीन पैसे बीड़ी के लिए दिये, वह लिखे ?"

इसी तरह पाई-पाई का हिसाब मिलता। हिसाब न मिलने पर मुखर्जी बीबी का सिर चकराने लगता।

पूरा हिसाब मिलाकर मुखर्जी बीबी जिस समय सोने जाती, अनपपुर कॉलोनी में सन्नाटा छा जाता। मुखर्जी बाबू की नींद पूरी हो चुकी होती, लेकिन मुखर्जी बाबू सुबह उठकर देखते मुखर्जी बीबी नहा-धोकर रसोई चढ़ा चुकी हैं।

"मैं कहता हूं, अभी तो सुबह भी नहीं हुई? अभी से रसोई चढ़ा दी?"

मुखर्जी बीबी कहती, "अभी खाना नहीं बना लूंगी, तो फिर फुरसत कहां मिलेगी, मिस्त्रियों का हिसाब लेकर हुकुमसिंह के पास जाना है।"

कुली-मजदूरों का पैसा हुकुमसिंह ही देने वाला था। पूरे जोर से काम चल रहा था। सिर्फ मन्दिर ही नहीं, उसके सामने ही बैठने की जगह भी बन रही थी। जरूरत होने पर वहां गीतापाठ, चण्डीपाठ या कीर्तन हो सकता है।

रेलवे कन्स्ट्रक्शन का काम। कम-से-कम आठ-दस साल चलेगा। अनूपपुर जंक्शन बन जायेगा। कोयले की खानों के आसपास जैसे कारखाने और शहर बस जाते हैं, उसी तरह सब बस जायेगा। कलकत्ता से लोग आयेंगे, दिल्ली से आयेंगे, मद्रास और बम्बई के लोग आयेंगे। मन्दिर देखकर सभी पूछेंगे, "यह मन्दिर किसने बनवाया?"

तब कॉलोनी के इन्हीं लोगों का नाम होगा। इन मुट्ठी भर हिन्दुओं ने अपनी कमाई में से पैसा बचाकर यह मन्दिर बनवाया था।

मिस्टर प्रेमलानी ने कहा, "मन्दिर की प्रतिष्ठा मुखर्जी बीबी की वजह से ही सम्भव हो पायी है, उनके नाम का पत्थर लगना चाहिए। मिस्टर घोष, आपका क्या खयाल है?"

नटू घोष ने कहा, "अरे साहब, मेरी बीबी तो मर ही रही थी, इन्हीं मुखर्जी बीबी ने बचाया। इस परायी-अनजान जगह में रंडुआ हो जाता—

लड़कियां मुखर्जी वीवी को चाची कहती हैं !"

नगेन सरकार ने कहा, "मन्दिर की वात पहले-पहले मुखर्जी वीवी ने ही उठायी—सारी क्रेडिट उन्हीं की है।"

वात आखिर मुखर्जी वीवी के कान में पहुंची। वोलीं, "अगर मेरा नाम लिया गया, तो आज से मेरा और मन्दिर का रिश्ता खत्म।"

नगेन सरकार वोला, "लेकिन आप ही ने तो किया है सव !"

'तुम...कहते क्या हो लाला, तुम लोग न होते, तो मैं अकेली क्या कर लेती ?"

नेपाल ने कहा, "ठीक है, तव मन्दिर की सेक्रेटरी वन जाओ।"

"मैं कुछ भी नहीं वनूंगी, वनना चाहती भी नहीं, मैं सिर्फ मन्दिर दर्शन करने जाऊंगी। और मेरे नाम से क्या होगा ! मैं ठहरी औरत जात—तुम्हीं में से कोई सेक्रेटरी या प्रेसिडेण्ट वन जाओ न !"

आखिर एक दिन मन्दिर तैयार हो गया। सभी ने कहा कि उद्घाटन के दिन उत्सव हो।

वात मामूली आयोजन की ही थी, लेकिन काफी वड़ा आयोजन हो गया। हुकुमसिंह ने विना एक पैसा लिये, लम्वा-चौड़ा शामियाना लगवा दिया। मुखर्जी वावू खरीदारी करने कटनी चले गए। रवेड़ के ठाकुर साहव प्रेसिडेण्ट वनने को राजी हो गये। सारी तैयारियां हो चुकी थीं। मुखर्जी वावू कटनी से निमन्त्रण-पत्र छपवा लाए। वेचारों को मन्दिर के लिए कटनी के कई चक्कर लगाने पड़े। आते ही फिर चले जाना होता।

नगेन सरकार ने कहा, "आपको काफी परेशान कर रहे हैं।"

मुखर्जी वीवी ने कहा, "अरे नहीं लाला, खरीदारी करने में उन्हें कोई तकलीफ नहीं होती।" फिर मुखर्जी वावू से वोलीं, "सव तो लाये, लेकिन पन्द्रह कांच के गिलास अगर होते, तो अच्छा रहता।"

मुखर्जी वावू ने कहा, "कांच के गिलास ? अच्छा, देखता हूं !"

मुखर्जी वीवी ने पूछा, "कहां से लाओगे ?"

"इसके घर से दो, उसके घर से चार, इसी तरह हो जायेंगे।"

मुखर्जी बीबी बोली, "इसके अलावा और चारा भी क्या है ? और रखो, अगर किसी तरह दो-चार ट्रे का इन्तजाम हो जाता, तो अच्छा रहता, हुकुमसिंह से पूछ देखो न, कहना मुखर्जी बीबी ने कहा है।"

इसी तरह सारे दिन कोई-न-कोई काम लगा ही रहा। मुखर्जी बीबी की भी हर ओर नजर रखनी थी। सुबह जल्दी-जल्दी खाना बनाकर ही निकल पड़ीं। सिर्फ वे ही क्यों, नेपाल, विमल, अरुण—सभी किसी-न-किसी काम में जुटे थे।

अचानक नेपाल ने आकर कहा, "भाभी, माला लाना तो भूल ही गया!"

अरुण बोला, "कुछ प्लेटें और काँच के गिलास भी मँगा लीजिए।"

मुखर्जी बीबी ने कहा, "इस सबकी फिक्र तुम्हें नहीं करनी होगी, मुखर्जी बाबू से कहकर सब मँगा रखा है।"

शाम के वक्त उत्सव शुरू हुआ। हम लोग जाने के लिए तैयार हो रहे थे। भैया आज अस्पताल से जल्दी वापस आ गए थे। मुखर्जी बीबी खुद आकर कह गयी थी, "आपको आना ही होगा, डॉक्टर बाबू!"

भैया ने कहा, "मुझे अस्पताल जाना है।"

"आपका अस्पताल पास ही तो है, मरीजों को जरा जल्दी देख लीजिएगा।"

दादा ने आने का वादा किया था।

अचानक सुबह ही ट्रेन से प्रशान्त आ पहुँचा। प्रशान्त! भैया का दोस्त। इन्स्योरेंस में काम करता था। आज दिल्ली, कल बम्बई और परसों कलकत्ता। बीच-बीच में एकाध दिन के लिए भैया से मिलने चला आता। भैया ने कहा, "अच्छा ही हुआ, आज हमारे यहाँ उत्सव होने वाला है।"

"किस बात का ?"

भैया ने कहा, "चल, तू भी चल, हमारी कॉलोनी में एक मन्दिर बना है, उसी की प्रतिष्ठा होगी—जाना जरूरी है—जरा देर

आयेंगे।"

वाकई जमघट जोर का ही हुआ था। नेपाल पता नहीं कहाँ से कमल के फूल ले आया था। सबसे आगे की लाइन में हुकुमसिंह बैठा था। उसके पास मिस्टर जेनकिन्स, फिर मिस्टर प्रेमलानी। जरा ऊँची जगह पर फूलों से सजाकर स्टेज बनाया गया था। सभापति की कुर्सी पर रवेड़ के ठाकुर साहब बैठे थे, पास ही औरतों के बैठने का इन्तजाम था।

प्रशान्त को शायद यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। कहने लगा, "अरे, चल, कहाँ ले आया बोर करने!"

भैया ने कहा, "जरा देर बैठ न, परदेश में पड़े हैं। इन सब कामों से अलग रहने पर बदनामी होगी।"

प्रशान्त जरा नयी रोशनी का था। बोला, "इन मन्दिर-वन्दिर में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है। तुझे बैठना है तो बैठ, मैं जा रहा हूँ।"

नगेन सरकार ने भाषण दिया। ओवरसियर ठहरे। भाषण लिखकर लाए थे।

नगेन सरकार ने कहा, "इस मन्दिर की स्थापना के पीछे जिसने कड़ी मेहनत, निष्ठा और निःस्वार्थ भाव से काम किया है, सबसे पहले मैं उन्हीं का अभिनन्दन करता हूँ, जिनके बिना इस मन्दिर का अस्तित्व ही मुश्किल होता, उनका नाम श्रीमती मुखर्जी हैं। आप सभी लोग उन्हें पहचानते हैं। आप हमारे कन्स्ट्रक्शन के ड्राफ्ट्समैन मिस्टर मुखर्जी की पत्नी हैं।"

मिस्टर जेनकिन्स ने भी लेक्चर दिया। उन्होंने कहा, 'क्रिश्चियन लोगों के लिए जिस तरह चर्च, उसी तरह हिन्दुओं के टेम्पल उनके धर्म का अंग हैं। मिसेज मुखर्जी जिस दिन इस मन्दिर का प्रस्ताव लेकर मेरे पास आयीं, मैंने पूरी तरह से इसका समर्थन किया। हेड आफिस से जो-जो सुविधाएँ मिल सकती थीं, मैंने उसकी भी व्यवस्था की···"

मुखर्जी बीबी ने लिस्ट देखकर कहा, "लाला, अब तुम्हारी बारी है, तुम्हें गाना है।"

नगेन सरकार बोला, "मैं गाऊँगा ! कह क्या रही हैं ?"

"हाँ, तुम्हारे बाद शेफाली गायेगी, फिर दीपाली।" दाहिने हाथ में एक कागज लिये कब क्या होगा, नोट कर रखा था।

नेपाल ने कहा, "चाय का पानी चढाने को कह दूँ ?"

मुखर्जी बीवी ने कहा, "अभी नही, जरा देर रुककर···और हाँ, हर प्लेट मे दो-दो समोसे, दो-दो रसगुल्ले रखवाना, प्रेसिडेण्ट के लिए दो राजभोग।"

अरुण ने कहा, "प्रेसिडेण्ट को क्या तब अलग से खिलाना होगा···?"

तभी नगेन सरकार ने जल्दी में आकर पूछा, "मुखर्जी बीवी, ठाकुर साहब एक गिलास पानी माँग रहे है, सोडा दे दूँ ?"

अरुण ने कहा, "अब कौन गाएगा ? दीपाली गा चुकी है। भूधर बाबू ने कहा है—आप एक भजन सुना दें !"

मुखर्जी बीवी ने कहा, "मुझे भजन गाने का वक्त कहाँ है ? शेफाली से कह दूँ, एक और गा देगी।"

मुखर्जी बीवी ने चौडी लाल कन्नी की रेशमी साडी पहन रखी थी। बालों को जूडा बनाकर बांधा था। माथे पर बडी-सी लाल बिन्दी में मुखर्जी बीवी बड़ी अच्छी लग रही थी। हर ओर नजर रख रही थी। जरा-सी गड़बड़ होते ही जा पहुँचती। एक जने को रोशनी का काम सौंपा गया, दूसरे को नाश्ते का, तीसरे को स्वागत का। अब जरा-सी अव्यवस्था नही थी। बड़े मजे में सब कुछ हो रहा था।

भूधर बाबू अन्दर आये। आज उन्होंने भी सिल्क की धोती और दुपट्टा पहन रखा था। चोटी को जरा और भी फुलाकर बांधा था। आते ही बोले, "माँ किधर हैं, अपनी माँ कहाँ हैं ?"

एक जन ने जल्दी से मुखर्जी बीवी को खबर दी कि बडे बाबू अभी भी माँ-माँ की रट लगाये थे !

मुखर्जी बीवी ने झुककर भूधर बाबू के पैर छुए। फिर कहा, "मुझे अपराधी न बनायें, बडे बाबू !"

भूधर बाबू बोले, "नही माँ, तुम क्या साधारण हो ! तुम साक्षात् महाशक्ति हो, और लोग जो भी कहें, मेरी नजरें धोखा नही खा सकतीं।"

मुखर्जी बीबी शर्म से जमीन में गड़ी जा रही थीं। कहने लगीं, "छिः-छिः! पता नहीं मैंने कितने अपराध किये हैं—आप मुझे और शर्मिन्दा न करें।"

भूधर बाबू बोले, "नहीं-नहीं, मैं तुम्हारा सेवक हूँ, सेवक का एक अनुरोध नहीं रखोगी?"

"कौन-सा, आज्ञा करिए न?"

"एक भजन सुनने की इच्छा है। न मत करना, गाओगी न?"

"लेकिन इधर कितना काम पड़ा है, कौन देखेगा?"

"जो सँभालने वाला है वही सँभाल लेगा, तुम और हम तो निमित्त मात्र हैं···इसके अलावा इन लोगों ने जो गाने गाये, एक में भी भगवान् का नाम नहीं था। मन्दिर की प्रतिष्ठा और भगवान का ही नाम नहीं!"

मुखर्जी बीबी ने कहा, "लेकिन इन लोगों को भजन-वजन क्या अच्छा लगेगा!"

भूधर बाबू बोले, "भगवान् का नाम अच्छा नहीं लगेगा? माँ होकर यह तुम क्या कह रही हो?"

मुखर्जी बीबी ने पूछा, "कौन-सा भजन गाऊँ?"

"वही, 'श्यामा माँ कि आभार कालो' एक बार सुना दो न।"

"अच्छा, आप बैठिए, मैं गाऊँगी।"

भूधर बाबू चले गये। मुखर्जी बीबी ने कहा, "तुम लोग जरा देखना, पीछे पड़ गये हैं, गाना ही होगा।"

सब लोग खुशी से उछल पड़े। पूछने लगे, "आप सचमुच गायेंगी?"

"बिना गाये चारा जो नहीं है, बुजुर्ग आदमी ठहरे, उनकी बात रखनी ही होगी!"

नगेन सरकार ने जब घोषणा की, पूरा पण्डाल तालियों की गड़-गड़ाहट से भर गया। नगेन सरकार ने कहा, "अब हमारे इस मन्दिर की प्राण श्रीमती मुखर्जी आप लोगों को एक भजन गाकर सुनायेंगी।"

प्रशान्त ने पूछा, "कौन है, रे?"

भैया ने कहा, "अपने यहाँ के एक ड्राफ्टसमैन की बीबी है, सुना है

बड़ा अच्छा गाती हैं।"

"यह मन्दिर शायद उसी ने बनवाया है?"

"हाँ, सिर्फ मन्दिर ही नहीं, हर काम में हाथ बँटाती हैं, किसी की विपत्ति में सब कुछ वही देखती हैं। बड़ी मिलनसार औरत हैं, सभी उन्हें चाहते हैं।" धीरे-धीरे परदा उठ गया। मुखर्जी बीबी ने झुककर सबको नमस्कार किया। पास तबला लेकर नेपाल बैठा था। उस ओर ध्यान दिये बिना मुखर्जी बीबी आँखें बन्द किये गा रही थी।

"श्यामा···!"

पूरे पण्डाल में सन्नाटा छा गया था। आलपिन गिरने की आवाज भी सुनी जा सकती थी। प्रशान्त बाबू अचानक कह उठे, "अरे, यह तो बनारसी है···!"

भूधर बाबू ने भाव-विभोर होकर पुकार लगायी, "माँ-माँ!"

और लोग भी भाव-विभोर हो गये। आवाज, स्वर और भक्ति की जैसे त्रिवेणी बह रही थी। भूधर बाबू कहने लगे, "अहा, इसे कहते हैं गाना!"

पास से नटू घोष कहने लगे, "सच्ची भक्ति के बिना ऐसा स्वर मुश्किल है, बड़े बाबू!"

प्रशान्त बाबू फिर से कह उठे, "बनारसी को छोड़कर कोई हो ही नहीं सकती!"

भैया ने कहा, "अच्छा, जरा देर चुप भी रह, भजन बड़ा अच्छा लग रहा है।"

"आज बनारसी भजन गा रही है, इससे न जाने कितनी ठुमरियाँ सुनी हैं! बड़ी अच्छी ठुमरी गाती थी।"

"बनारसी कौन?"

प्रशान्त बाबू बोले, "एक ही बनारसी को तो जानता हूँ, सारी 'बनारसियों' को कैसे पहचान सकता हूँ!"

"अरे, ये हमारे ड्राफ्ट्समैन मुखर्जी बाबू की बीबी हैं, हम मुखर्जी बीबी कहकर पुकारते हैं।"

"छोड़ भी यार, मैं शर्त लगा सकता हूँ, यह बनारसी है, दुर्गाचरण

मित्र स्ट्रीट के तेरह नम्बर फ्लैट की वेश्या।"

"दिमाग तो खराब नहीं हो गया ?"

तभी भूधर वाबू ने कहा, "कृपया चुप रहिए।" आगे से भी किसी ा कहा, "चुप रहिए ! बड़ा शोरगुल हो रहा है।"

प्रशान्त वाबू चुप हो गये।

भजन पूरा होते ही प्रशान्त वाबू ने आवाज लगायी, "एक ठुमरी ़ो जाये।"

अचानक देखा, मुखर्जी वीवी जैसे सिटपिटा गयीं। चेहरा लाल हो उठा। जल्दी से उठकर अन्दर जाते ही पर्दा गिर गया।

बाहर हल्ला मचने लगा। भूधर वाबू कह रहे थे, "वाह, क्या भजन ुनाया, अहा···!"

नटू घोष वोला, "सच्ची भक्ति है न, इसीलिए इतना अच्छा लगा, ़क भजन और सुनने की तवीयत हो रही है। एक और भजन गाने को ़हो न।"

एक लड़का खवर देने अन्दर गया। लेकिन अन्दर भी काफी सरगर्मी ी। नेपाल, अरुण, विमल सभी मुखर्जी वीवी को घेरकर वैठे थे। पूछ ़हे थे, "एक भजन और क्यों नहीं गा देतीं, सव लोग कितना कह रहे ़ ?"

मुखर्जी वीवी ने कहा, "मेरा सिर चकरा रहा है, मुझसे वैठा नहीं ़ा रहा।"

अचानक किसी ने कहा, "वनारसी !"

सभी ने मुड़कर देखा। प्रशान्त वावू खड़े-खड़े हँस रहे थे। फिर ोले, "वाह, यहाँ कव से, वनारसी ! कृपलानी साहव कव से तुम्हारे ़हाँ जाने की जिद पकड़े वैठे हैं। वाड़ी वाले ने कहा था, "वनारसी ़हाँ नहीं रहती। तो यहाँ कव से हो ? विना वतलाये चली आयीं।" ुखर्जी वीवी जैसे कुछ भी नहीं सुन रही थीं। कुछ भी जैसे सह नहीं पा ़ही थीं।

नेपाल ने पूछा, "आप कौन हैं ? कहाँ से आ रहे हैं ?"

प्रशान्त वावू वोले, "वनारसी से जरा वात कर रहा था, पुरानी

जान-पहचान है न !"

अरुण ने कहा, "मुखर्जी बीबी की तबीयत ठीक नहीं है, आप बाद में मिल लीजिएगा।"

मुखर्जी बीबी ने कहा, "एक गिलास पानी तो ले आ।"

प्रशान्त बाबू बिना कुछ कहे हँसते-हँसते बाहर चले गये। नेपाल ने पूछा, "यह आदमी कौन है ? तुम जानती हो क्या ?"

मुखर्जी बीबी ने उत्तर दिया, "जरा मुखर्जी बाबू को तो बुला ला, घर जाऊँगी, चाबी उन्हीं के पास है—माथा फटा जा रहा है।"

मुखर्जी बीबी चली जायेंगी, सुनकर डरने की बात थी ही। मुखर्जी बीबी के चले जाने से सब चौपट हो जाता। मुखर्जी बीबी के बगैर इतना काम करेगा कौन ? ठाकुर साहब का भाषण अभी बाकी है। सभी को खिलाना-पिलाना है, मुखर्जी बीबी के न रहने पर जाने अब कौन-सी गड़बड़ हो जायेगी। बाहर भी काफी शोरगुल हो रहा था। नेपाल ने पूछा, "अब किसका भाषण होगा ?"

मुखर्जी बीबी बोलीं, "मैं जा रही हूँ। तुम लोगों से जो हो सके, करना।"

मुखर्जी बाबू अन्दर आये। मुखर्जी बीबी ने कहा, "चलो···"

मुखर्जी बाबू ने भी निर्विकार भाव से कहा, "चलो···"

काफी देर राह देखने के बाद भूधर बाबू ने कहा, "अरे, मुखर्जी बीबी से एक और भजन गाने के लिए कहो न !"

नटू घोष ने कहा, "सुना है वह चली गयी ?"

"क्यों ? चली क्यों गयी है।"

तभी किसी ने कहा, "वे मुखर्जी बीबी नहीं हैं, बनारसी हैं, बनारसी !"

एक ने पूछा, "बनारसी माने ?"

"बनारसी माने बनारसी देवी !"

"कहते क्या है ?"

"जी, ठीक ही कह रहा हूँ।"

प्रशान्त बाबू कह रहे थे, "अरे साहब,

जाते तो वनारसी को पहचानते ! एक वार उसके घर गये होते, तो उसकी ठुमरी भूल नहीं पाते। वही यहाँ कोयले की दुनिया में मुखर्जी वीवी वन गयी है, यह मैं कैसे जान सकता हूँ ?"

भैया ने पूछा, "लेकिन तू वनारसी को किस तरह जानता है ?"

प्रशान्त वावू ने एक सिगरेट सुलगायी, फिर कहा, "मुझसे चालाकी ? इन्श्योरेंस की दलाली करके खाता हूँ। अच्छे-अच्छों को देख लिया, रेशमी साड़ी पहने या माथे पर विन्दी लगाये, मेरी नजरों से वचना मुश्किल है।"

भैया ने पूछा, "तू क्या उसके फ्लैट में जा चुका है ?"

प्रशान्त वावू ने कहा, "अरे, मुझे तो हर जगह जाना होता है। कोई मुवक्किल होटल में खाना चाहता है, किसी को पार्टी देनी होती है, शराव पिलानी पड़ती है, किसी को वेश्या के घर भी ले जाना पड़ता है, जो जैसा मुवक्किल, वैसा ही वनना पड़ता है।"

भूधर वावू ने कहा, "चुप रहिए, एक सती-साध्वी के वारे में चाहे जो कुछ न कहें।"

नटू घोष ने पूछा, "डॉक्टर वावू, यह क्या आपके दोस्त हैं ?"

भूधर वावू वोले, "उनको क्या आप हमसे ज्यादा जानते हैं ? पता है, मैं चेहरा देखकर आदमी का करेक्टर वतला सकता हूँ ?"

"तो चलिए न, सवके सामने ही सावित किये देता हूँ, वे मुखर्जी वीवी हैं या वनारसी !"

"चलिए, उनके सामने आपकी जवान से कैसे यह वात निकलती है, चलिए।"

"हाँ, चलिए, आमने-सामने हो जाये।"

भूधर वावू और प्रशान्त वावू दोनों ही उठ खड़े हुए।

नटू घोष ने कहा, "चलिए डॉक्टर वावू, हम लोग भी देख आयें। कुछ समझ में नहीं आता, मैंने उसके हाथ का वना खाया है, मैं ही क्यों, मेरी वीवी, वाल-वच्चे—सभी उसके हाथ का खा चुके हैं। क्या होगा ?"

भूधर वावू वोले, "अरे साहव, मैंने भी तो खाया है उसके हाथों वना सत्यनारायण का भोग, उसी के घर वैठकर। लेकिन मैं क्या आदमी

नहीं यह जानता ? जानते हैं, मुखर्जी बीबी को छोड़ और किसी का छुआ मैंने आज तक नहीं खाया ?"

प्रशान्त बाबू ने कहा, "हाथ कंगन को आरसी क्या ! [illegible] न।"

बात औरतों के बीच भी फैल गयी।

नटू घोष की बीबी ने कहा, "गजब हो गया बहन, [illegible] हाथ-पांव ठंडे पड़ गये।"

प्रेमलानी की मेम साहब ने कहा, "कैसी बात करती है [illegible] नहीं हो सकता !"

स्टेशन मास्टर अम्बिका मजूमदार की बीबी ने कहा, "[illegible] चुड़ैल हम लोगों की जात खा गयी !"

सभी अन्दर आये। मैं साथ आया। लेकिन मुखर्जी [illegible] मुखर्जी बाबू के साथ चली गयी थी। सिरदर्द की वजह से [illegible]

प्रशान्त बाबू ने कहा, "तब चलिए, घर ही [illegible]।'

भूधर बाबू ने कहा, "चलिए।"

नटू घोष बाबू ने कहा, "छोड़िए भी, रात के [illegible] है, सुबह देखा जायेगा। आप-हम सभी मौजूद हैं।"

मिस्टर प्रेमलानी ने भी साथ दिया, "यही ठीक [illegible]।'

रात-भर के लिए बात खत्म हो गयी। जो कुछ [illegible] देखा जायेगा। सब लोग अपने-अपने घर चले [illegible]। [illegible] यहीं उजड़ गयी।

सुबह सबसे पहले भूधर बाबू ही आये। [illegible] कहकर पुकारता था, उसकी ये करतूत ! [illegible] लिए भी सो नहीं पाया, चलिए।"

नटू घोष भी आ पहुंचे। बोले, "[illegible] रहो, कितने दिन तक हमारे यहाँ थी, [illegible] हो गयी है।"

कॉलोनी की दाहिनी ओर जरा ऊँचे पर [illegible]
सामने छोटा-सा बगीचा। मुखर्जी बीबी के

लेकिन दरवाजे पर पहुँचने पर पता लगा, दरवाजे पर ताला झूल रहा है। कहीं कोई भी नहीं था। मुखर्जी वीवी की नौकरानी इसी ओर आ रही थी। नेपाल ने पूछा, "लक्ष्मी, तेरी मालकिन कहाँ है ?"

नगेन सरकार ने पूछा, "हाँ री, मुखर्जी वीवी कहाँ है ?"

लक्ष्मी वोली, "मालकिन तो रात की गाड़ी से चली गयीं।"

"चली गयीं ! कहाँ ?" सभी ने एक साथ पूछा।

"यह तो मुझे नहीं पता, वावू !"

"सामान ले गयी हैं ?"

लक्ष्मी ने कहा, "नहीं, माल-असवाव कुछ भी नहीं ले गयीं। खाली हाथ ही गयी हैं।"

उसके वाद किसी ने मुखर्जी वावू या मुखर्जी वीवी को नहीं देखा। वे लोग लौटे भी नहीं। कॉलोनी इसके वाद भी कुछ साल वहाँ थी। चिरीमिरी तक लाइन विछते-विछते चार-पाँच साल लगे थे। लाइन पूरी होने के वाद कॉलोनी भी खत्म हो गयी। ऑफिस भी खत्म हो गया। सव लोगों की नौकरी भी खत्म हो गयी। ताला तोड़कर मुखर्जी वीवी का सामान ऑफिस में जमा कर दिया गया। वाद में उस सामान का क्या हुआ, मालूम नहीं !

आज इतने दिनों के वाद मुखर्जी वावू से मुलाकात हो जायेगी, कभी सोच भी नहीं पाया था। पूछा, "मुखर्जी वीवी कहाँ है ?" सुनकर मुखर्जी वावू के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

मैं वोला, "अनूपपुर के सारे लोगों की जात खुवाई आपने, मुखर्जी वावू ?"

मुखर्जी वावू की आँखों से टपाटप आँसू टपकने लगे। मैं वोला, "शादी करने को और लड़की नहीं मिली ? भले आदमी होकर···"

मुख़र्जी वावू ने अपना हाथ छुड़ाकर चले जाने की कोशिश की, लेकिन मैंने नहीं छोड़ा। कहा, "आज आपको वतलाना ही होगा, क्यों एक वाज़ारू औरत से ही शादी की ? उससे आपका परिचय कहाँ हुआ ?"

मुख़र्जी वावू ने असहाय होकर मेरी ओर देखा। फिर वोले, "यकीन मानो भैया, वनारसी से मेरी पहचान वचपन की थी। हम

लोग एक ही गाँव के रहने वाले हैं।" इतना कहते ही मुखर्जी बाबू जैसे हाँफने लगे। फिर वे कहने लगे, "जानता हूँ, मेरी बात का यकीन नहीं मानोगे, लेकिन बारह साल की उम्र तक मुझे यही मालूम था कि उसी के साथ मेरी शादी होगी। बनारसी मुझे प्यार करती थी न, और सच कहने में क्या हर्ज है, मैं भी उसे बहुत चाहता था!"

मैं बोला, "फिर क्या हुआ?"

"उसके बाद पता नहीं क्यों एक बार मामा के साथ गंगा नहाने कलकत्ता आयी, तो यहीं रह गयी। गरीब विधवा माँ, टूटा-फूटा घर..."

"फिर?"

मुखर्जी बाबू ने कहा, "तुमसे कहने में काहे की शर्म, करीब बीस साल बाद अचानक फिर मुलाकात हो गयी..."

"कहाँ?"

"उसी के घर, दुर्गाचरण मित्र स्ट्रीट के एक मकान में रहती थी, एक दिन गाना सुनने गया था।" कहकर मुखर्जी बाबू कोट की बाँह से आँख पोंछने लगे। फिर बोले, "उसी दिन ब्राह्मण बुलाकर मुझसे शादी कर ली..."

"फिर?"

"पार्क की इस मीटिंग को देखकर यही सोच रहा था, कानून पास ही हुआ, तो कुछ साल पहले क्यों नहीं हुआ!"

इतनी देर बाद जैसे मुझे भी अनूपपुर की मुखर्जी बीवी की याद आयी। पूछा, "मुखर्जी बीवी आजकल कहाँ है?"

मुखर्जी बाबू उसी तरह कहते रहे, "उसके बाद से भैया नौकरी करने जहाँ भी गया, एक-न-एक दिन पोल खुल गयी, कहीं चैन नहीं मिला।"

मैंने फिर पूछा, "मुखर्जी बीवी अब कहाँ हैं?"

"मर गयी!"

मैं चुपचाप सुनता रहा। मुखर्जी बाबू कहे जा रहे थे, "आखिरी दिन भैया, बड़ी तकलीफ में कटे, अन्दर-ही-अन्दर जल रही थी, फिर भी छिपाती रही, आखिर में कुछ दिन तो बात तक नहीं ... ..."

२

खबर न जाने कैसे फैल गयी। शायद ये सब खबरें दबी रहती भी नहीं हैं। हो सकता है मधुसूदन सुनार ने ही सबको कह दिया हो, या शायद बलराम बाबू ने ही बात फैला दी हो। क्योंकि, माधवदत्त जिस समय बागबाजार गये थे, वहाँ बलराम बाबू ही मौजूद थे। एक तरह से इस मामले के वही एकमात्र गवाह थे।

खैर, कहानी शुरू से ही कहता हूँ।

फड़ियापुकुर के माधवदत्त आज के आदमी नहीं हैं। एक समय उनका ऐश्वर्य था, दबदबा था। बाहर से लाल रंग की हवेली देखने पर भीतर का ऐश्वर्य भले ही पता न लगे, लेकिन अन्दर पाँव रखते ही आँखें ठहर नहीं पाती थीं। सदर दरवाजा पार करने पर ईंट बिछा रास्ता उत्तर की ओर घुड़साल के पास जाकर खत्म हुआ है। वहाँ सईस, कोचवान और नौकर-चाकर रहते हैं। उसके पश्चिम की ओर है असली हवेली। वहाँ उत्तरमुखी बैठक में फर्श के ऊपर सफेद झक चादर बिछी रहती, जिस पर मोटे-मोटे गावतकिये रहते। हुक्का, गंगा-जमनी, पान-तम्बाकू का इन्तजाम रहता है। और सामने गाड़ी खड़ी होने की जगह के पास ही था एक लम्बा बरामदा। वहाँ करीब चारेक बेंचें पड़ी रहतीं। लकड़ी की बेंचें। वहीं माधवदत्त बैठते, बैठकबाजी करते, तम्बाकू पीते तथा और भी काफी कुछ खाते-पीते। वह भी उतरते दिनों में! उस समय माधवदत्त की उम्र काफी हो चुकी थी। खून की गर्मी कम हो गयी है। जब-तब आना-जाना भी बन्द हो गया है। पहले की तरह जब जी चाहा रात को नहीं जाग पाते। यार-दोस्तों के साथ रात-रात-भर ऐश करना अब प्रायः बन्द ही हो गया था। खुराक से जरा-सी भी ज्यादा पी लेने पर पेट में बायीं ओर दर्द शुरू हो जाता। कभी-कभी तो कमर भी सीधी नहीं कर पाते। तब गर्म पानी की बोतलें

आती, घंटों मालिश होती, डॉक्टर-वैद्य आते। वे माधवदत्त के ढलती के दिन थे।

असल में पैतृक सम्पत्ति होने पर भी चाचा-ताऊ वगैरह बहुत पहले ही अलग हो गये थे। किसी ने हाटखोला में मकान बनवाया, तो किसी ने हाथीबागान में। मतलब यह कि माधवदत्त जवानी में पाँव रखते ही विशाल सम्पत्ति के मालिक हो गये। माधवदत्त अपने पिता शशिदत्त की इकलौती सन्तान थे। इसी से उनके हिस्से में भाग बँटाने वाला कोई न था। पिता की मृत्यु से वह रातोंरात रईस बन गये। प्रायः साथ ही मुसाहिब लोग भी आ जुटे। वैसे तो पिता के सामने भी उनके कुछ मुसाहिब थे, लेकिन अब उनकी संख्या और भी बढ़ गयी, खुशामद की मात्रा भी बढ़ी और विनय से जैसे वे लोग और भी सराबोर हो गये। उस समय रात को घर पर मन नहीं रमता था। इन सब मामलों में जैसा होता है, वही हुआ। माधवदत्त सारी रात बाहर काटकर सुबह घर आते। आकर सो जाते। करीब बारह-एक बजे जरा खुस-फुस करते, दायें-बायें करवट बदलते। इसी समय उनके पेट में कुछ अन्न पहुँचता। एक कप चाय या दो बिस्कुट या वैसा ही कुछ। इसके बाद फिर नींद। यह नींद टूटती शाम को चार बजे। सुबह से जो लोग मिलने के लिए बैठे होते, सबसे पहले मिलने की कोशिश करने लगते। एटर्नी, वकील, देनदार, लेनदार, प्रार्थी सभी के लिए यही एक मौका था। सारे दिन में माधवदत्त के साथ मिलने का यही एक मौका था। इसमें भी एक गड़बड़ थी। चार बजे नींद टूटने पर उनका पूजा का समय होता। पूजा में आधा घण्टा लगता। यानी चार से साढ़े चार। माधवदत्त शिवपूजा करते थे। नौकर-चाकर चौकस खड़े रहते। बाघाम्बर, कुशासन, बिल्वपत्र, गंगाजल सब कुछ एकदम ठीक रहना चाहिए। नहीं तो माधवदत्त के हाथ सभी का निश्चिन मरण होता।

पूजा से उठते न उठते बैठक, खजाना-घर और कचहरी-घर में भीड़ जम गयी होती।

माधवदत्त बैठक में आते और प्रतीक्षारत भीड़ उनसे बात करने को उत्सुक हो जाती। हर आदमी सबसे पहले अपनी बात

था। पेशकार हिसाब-किताब पेश करता। नौकर-चाकर पान-तम्बाकू, हुक्का, गंगा-जमुनी लिये हाजिर रहते और मुसाहिब दोस्त आगे खिसक आते। और भी पास। एकदम माधवदत्त के मुँह के पास। लेकिन माधवदत्त ज्यादा देर काम देखने वाले आदमी नहीं थे। दो-चार कागजों पर दस्तखत करते न करते ऊब उठते। एटर्नी वकील हजार कोशिश के बावजूद भी उनसे और काम नहीं करा पाते। इसी बीच कोई मुसाहिब किस्सा शुरू कर देता, बाकी सब उसकी तारीफ करते। माधवदत्त भी किस्सा सुनने में व्यस्त हो जाते। बही-खाते, कागज-पत्र छोड़ वे किस्से में रम जाते! कहते—"फिर? फिर क्या हुआ है, चाटुज्जे?"

संसार बाबू सुनाते—"फिर वो लड़की एक दिन घर से भाग निकली!"

माधवदत्त और भी उत्सुक हो उठते। कहते—ब्राह्मण की कुमारी लड़की घर से लापता? कहते क्या हो?"

"और क्या कह रहा हूँ, हुजूर, सर्वनाश का भूत जो चढ़ा था सिर पर।"

माधवदत्त कहते—"लेकिन लड़की आखिर गयी कहाँ? किसी ने पता नहीं लगाया? क्या बेअक्ल हैं, सबके सब?"

"पता लगाये कौन? किसको पड़ी है?"

"तब क्या मोहल्ले में कोई भला आदमी नहीं था? ब्राह्मण की लड़की जीती-जागती घर से भाग गयी?"

संसार बाबू कहते—"लेकिन आप जैसे परोपकारी सभी तो नहीं हैं, हजूर। अगर ऐसा होता, तो पृथ्वी स्वर्ग बन गयी होती।"

माधवदत्त कहते—"इस समय बात यह नहीं है। वह लड़की कहाँ गयी? हम लोगों को यही देखना होगा। जीती-जागती ब्राह्मण की लड़की भाग गयी और सब चुपचाप बैठे हैं? आखिर तुम लोग हो किस-लिए?"

संसार बाबू कहते—"जी, हम लोग गरीब आदमी ठहरे; हम लोग कर ही क्या सकते हैं?"

माधवदत्त कहते—"माना कि तुम गरीब आदमी हो, लेकिन मैं तो हूँ। मुझे तो बतला सकते थे, मैं तो नहीं मर गया था।"

सभी एक साथ च्-च् कर उठते—"क्या कह रहे हैं आप, ऐसी बात मुंह से न निकालिए।"

सभी को कष्ट होता। निताई बाबू, गौरहरी बाबू, प्रानकेष्टो बाबू, सभी को अपार दुःख होता। कहते—"छिः, छिः, आपके मुंह में कुछ भी नहीं रुकता हुजूर, आज मंगलवार के दिन आप ऐसी अमंगलकारी बात चट से बोल उठे।"

माधव बाबू नाराज हो उठते। कहते—"तुम लोग यही गाते बैठे रहो, और उधर एक ब्राह्मण की कुमारी लड़की घर से चम्पत हो गयी। वह कोई सोच ही नहीं रहा है। तुम जैसे दोस्तों के रहने से मेरा क्या और न रहने से ही क्या।"

माधवदत्त का चेहरा गम्भीर हो गया। सभी को जैसे सांप सूंघ गया। नरहरी बाबू एटर्नी थे, काफी देर से मौके की घात में बैठे थे। यह हाल देखा तो बची-खुची हिम्मत भी जाती रही। धीरे-धीरे कागज-पत्र सम्हालकर उठने लगे। अगले दिन बारह बजे के पहले ही हाई कोर्ट से प्रोबेट लेना होगा। बहुत ही जरूरी काम था। कुछ भी नहीं हुआ। साढ़े तीन लाख रुपये पानी में जा रहे थे। क्या करें, कुछ भी ठीक नहीं कर पाते। जूते पांव में डालकर निकल गये। हेमदा बाबू भी उठ गये। उनका केस लोअर कोर्ट में है। एक साथ बालीम मकानों की सेल डीड के लिए कई दिन से चक्कर लगा रहे हैं, लेकिन माधवदत्त किसी भी तरह फुरसत नहीं पाते। आज भी काम नहीं बना। किस्सा शुरू हो चुका है, अब तो भगवान् ही मालिक है। कल फिर कोशिश करनी होगी। हेमदा बाबू भी चले गये। धीरे-धीरे बैठकखाना खाली हो गया। लेनदार भी एक-एक कर खिसक गये। रह गया, सिर्फ ससार बाबू का दल। इस बीच सध्या हो ही आयी थी।

काफी देर तम्बाकू लगाने के बाद माधवदत्त के मुंह से बात निकली —"हाँ रे, लड़की की उम्र कितनी होगी?"

"जी, सोलह!"

"सोलह ?"

माधवदत्त जैसे चौंक गये। सिर्फ चौंके ही नहीं। गुस्से में आग-हो गये। बोले—"सोलह साल की ब्राह्मण की कुमारी लड़की घर से भाग गयी और तुम सबके सब बुद्धू की तरह मुंह पर ताला लगाये बैठे रहे।"

इस बार संसार बाबू ने बड़े ही विनम्र स्वर में निवेदन किया—"एकदम छिपकर नहीं बैठा रहा हुजूर, काफी खोज-खबर ली है।"

"लेकिन तुम्हारे खोज-खबर लेने से फायदा क्या हुआ ? अगर लड़की का पता ही नहीं मिला तो ऐसी खोज-खबर का फायदा।"

"जी, पता मिला है।"

माधवदत्त गंगा-जमनी की नली सरकाकर सीधे हुए। पूछा—"पता मिला ? कहाँ है वह ?"

"जी हाटखोला में। हाटखोला में एक टीन के बस्तीघर में।"

माधवदत्त बेचैन हो उठे—"तब, पता जब लग गया है तो और चुपचाप नहीं बैठा जा सकता—सोलह साल की ब्राह्मण कुमारी···"

हुजूर के साथ सभी बेचैन हो उठे। और देरी ठीक न होगी। सोलह साल की अनाथ कुमारी अभिभावक के बिना हाटखोला में पड़ी रहे, यह नहीं हो सकता। संसार बाबू का दल भी अपनी धोती की चुन्नटें सम्हालते हुए उठ पड़ता। गाड़ी जुतती, चीज-वस्तु रखी जातीं। माधवदत्त कहते—"चलो, चलो, देर हो रही है—तुम सब ऐसे-ऐसे बेअकल के काम करते हो कि···"

संसार बाबू, निताई बाबू, गौरहरी बाबू, प्रानकेष्टो बाबू, सभी गाड़ी पर चढ़ते। दरवान उठ आया, निजी खिदमतगार अदालत अली भी उठ गया। सदल-बल रुक्मिणी-उद्धार का अभियान शुरू होता।

गाड़ी में चढ़ने से पहले माधवदत्त एक बार चारों ओर देखते, फिर पूछते—"ए अदालत, सब आ गये हैं न ?"

"हुजूर, सीतापति बाबू नहीं आये।"

"क्या बात है सीतापति, तुम क्यों नहीं आ रहे ? ऐसा क्या काम है ?"

सीतापति बाबू मुसाहिबों में से एक हैं।

चुनी हुई धोती-कुर्त्ता और चद्दर। भरा हुआ चेहरा। उन्होंने ने भी एक दिन मंसार बाबू के साथ यह काम शुरू किया था। अब महफिल के स्थायी सदस्य हो गये।

सीतापति बाबू ने कहा—"मुझे एक मुजरे में जाना है।"

"मुजरा ?"

"जी हाँ हुजूर, एक फोटो लेना है।"

माधवदत्त को जरा आश्चर्य तो हुआ। सीतापति बाबू फोटोग्राफी का धन्धा करते जरूर थे, लेकिन वह तो पुरानी बात हो चुकी है। यों वह काफी अच्छी तसवीर लेते थे। यहाँ सभी के फोटो ले चुके थे। मुसाहिबों के साथ माधवदत्त का फोटो भी लिया है। माधवदत्त के बगीचे के तरह-तरह के फोटो, उनकी रखैलों के फोटो, उनकी रंगीन रातों के फोटो। सभी फोटो अदालत अली की हिफाजत में है। साधारणतः किसी को दिखाने लायक ये फोटो नहीं हैं। लेकिन यह धन्धा तो सीतापति बाबू ने कभी का छोड़ दिया है। श्यामबाजार की दुकान भी उठा दी है। इस समय सीतापति बाबू एक तरह से बेकार ही हैं। तो उस बेकार आदमी के काम की बात सुनकर माधवदत्त को आश्चर्य हुआ। मूँछों के पीछे से जरा मुसकराये।

बोले—"तुम तो सीतापति, देखता हूँ काफी काम के आदमी हुए जा रहे हो।"

सीतापति बाबू कहते—"जी, अगर काम का आदमी ही हो पाता—"

"अच्छा, अच्छा, अब तुम गेरुआ पहन लो और दण्ड-कमण्डल लेकर संन्यासी हो जाओ।"

वैसे सन्यासी होने लायक ही हाल था उनका। बात सुनकर सभी हँस पड़ते। माधवदत्त के मजाक करने पर हँसने का ही नियम था। सभी हमेशा उस नियम का बाकायदा पालन करते आये हैं। मसार बाबू हँसे, निताई बाबू हँसे, गौरहरी बाबू हँसे, प्रानकेष्टो बाबू भी हँसे, यहाँ तक कि खुद सीतापति बाबू को भी जरा हँसकर नियम का पालन करना पड़ा।

लेकिन गाड़ी में बैठकर माधवदत्त ने कहा—"चाटुज्जे, देखा न, सीतापति दिनों-दिन कैसा बेरसिक हुआ जा रहा है।"

संसार बाबू कहते—"जी, कुछ न पूछिए, हद कर रहा है।"

माधवदत्त इसपर कहते—"जानते हो, सीतापति के लिए मुझे दुःख होता है।

गौरहरी बाबू इस बार चान्स लेते—"दुःख होने की तो बात है ही हुजूर, बीबी नहीं, बच्चे नहीं, एक धन्धा था, वह भी चौपट हो गया।"

उस दिन हाटखोला की टीन की बस्ती से रुक्मिणी-उद्धार हुआ या नहीं, यह तो भगवान् ही जाने या फिर संसार बाबू, निताई बाबू, गौरहरी बाबू और प्रानकेष्टो बाबू जानते हैं। हाँ, अदालत अली भी जानता है। दूसरे दिन माधवदत्त जिस समय घर लौटे, सुबह अभी होने को थी। अदालत अली ने लपककर दोनों हाथों से माधवदत्त को उतारा। उस समय उन्हें होश कभी नहीं रहता। पॉकेट की चेक-बुक अदालत को सम्हालकर रखनी होती। उस समय जो सोयेंगे तो फिर दिन ढलने पर ही उठेंगे। ठीक चार बजे। और फिर आयेंगे संसार बाबू, निताई बाबू, गौरहरी बाबू, प्रानकेष्टो बाबू और आयेंगे एटर्नी नरहरी बाबू और हेमदाकान्त बाबू। और सुबह से जो लोग माधवदत्त से मुलाकात करने को बैठे हैं, वे खैर बैठे ही हैं। सबसे बाद में आयेंगे सीतापति बाबू। इसके बाद रोज की तरह पूजा खत्म कर जब माधवदत्त आकर बैठेंगे, तो सबसे पहले कागज-पत्र लेकर नरहरी बाबू नमस्कार करेंगे। जरा आप बैठेंगे। हाई कोर्ट में चल रहा प्रोबेट केस किसी तरह रोक रखा है। हेमदाकान्त बाबू एक साथ चालीस मकानों की ट्रांसफर डीड आगे बढ़ायेंगे। अदालत अली गंगा-जमनी आगे बढ़ायेंगे। तभी संसार बाबू कोई किस्सा छेड़ देंगे। कागज-पत्र नाम के लिए छूकर हठात् माधवदत्त पूछेंगे—"फिर ? फिर क्या हुआ ए चाटुज्जे ?"

संसार बाबू कहेंगे—"होगा क्या, फिर लड़की विधवा हो गयी।"

माधवदत्त कागजों पर नजर रखे ही पूछेंगे—"विधवा हो गयी, माने ?"

"जी, विधवा हो गयी, माने अनाथ हो गयी।"

माधवदत्त फिर पूछेंगे —"तव कौन है उस अनाथ का ?"

"जी, होगा कौन, कोई भी नही है।"

"तव, उसकी देखभाल कौन कर रहा है ?"

संसार बाबू कहेंगे—"जी और कौन देखता है, सिर्फ भगवान् ही तो। जिसका कोई नही है, उसके भगवान् हैं।"

माधवदत्त नाराज हो जायेंगे, बोलेंगे—"भगवान् माने ? तुम लोगों मे यही तो खराबी है, सब काम भगवान् के भरोसे छोड़कर तुम लोग निश्चिन्त हो जाते हो। उधर एक अनाथ विधवा असहाय पड़ी है और तुम लोग भगवान्-भगवान् कर रहे हो।"

फिर जरा ठहरकर पूछेंगे—"हाँ, तो लड़की की उम्र कितनी है ?"

"जी, उम्र और कितनी, यही कोई अठारह-उन्नीस होगी, बच्चा-कच्चा कुछ भी नही हुआ है।"

माधवदत्त यह सुनकर फर्शी की नली फेंक देंगे—"सर्वनाश कर दिया ! अठारह-उन्नीस वर्ष की निःसन्तान विधवा लड़की, क्या अभी तक वैसे ही होगी ? जो होना था, वह तो हो गया होगा !"

संसार बाबू कहेंगे—"जी, हम लोग ठहरे गरीब, हम लोग कर ही क्या सकते हैं ?"

माधवदत्त कहेंगे—"लेकिन मैं तो नही मर गया, मुझसे एक बार तो कहा होता ? हाँ, तो कितना रुपया लगेगा ?"

संसार बाबू बोलेंगे—"जी, रुपया तो इधर-उधर के लोग उठा देंगे, इसमें तो आप खुद ही एक बार चलिए, उसका हाल देखकर आप भी अपने आँसू नही रोक पायेंगे।"

"यही ठीक होगा। चलो, एक-न-एक झंझट, काम-काज हो ही नहीं पाता।"

कहकर माधवदत्त उठ खड़े होंगे। एटर्नी नरहरी बाबू हालत देखकर अपने कागज समेट लेंगे। हाई कोर्ट मे चल रहे प्रोबेट केस की तारीख और भी बढ़वानी होगी, हेमदाकान्त बाबू भी काम होने की कोई आशा न देख खिसक पड़ेंगे। एक साथ चालीस मकानों की ट्रान्सफर डीड का मामला है। एक महीने से यही झमेला च[illegible]

को फ़ुरसत होगी, कोई लक्षण ही दिखलाई नहीं पड़ता। अव अदालत अली का काम शुरू होता है। माधवदत्त पोशाक वदलकर गाड़ी में चढ़ेंगे। उठते आते एक वार पूछेंगे—"ऐ अदालत, सव चढ़ चुके हैं न ?"

तभी जैसे खयाल होगा। पूछेंगे—सीतापति ? सीतापति को नहीं देख रहा हूँ।"

"जी, आज सीतापति वावू की तवीयत ठीक नहीं है।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

इसपर संसार वावू ने कहा—"जी, सीतापति आजकल दिनोदिन वेरसिक होता जा रहा है।"

माधवदत्त कहते—"खैर, सीतापति को वुलाओ तो एक वार।"

सीतापति सामने आयेंगे। कहेंगे—"मैं आज नहीं जा पाऊंगा हुजूर, काफी थक गया हूँ ?"

"फिर क्या फ़ोटोग्राफ़ी करने जाना है ?"

सीतापति कहते—"जी, फोटोग्राफी का काम क्या रोज-रोज मिल पाता है ? ऐसा होता तो वात ही क्या थी। दुकान ही उठ गयी, चाचा लोगों ने मुकदमा कर एकदम रास्ते का भिखारी वना दिया है।"

"तो, आजकल कर क्या रहे हो ? हो कहाँ ?"

"जी, रास्ते पर !"

इसके वाद माधवदत्त अपना दल-वल लिये गाड़ी में चले जाते। आज रुक्मिणी-उद्धार, कल अनाथ विधवा का उपकार, कुछ-न-कुछ लगा ही रहता। फड़ेपुकुर मोहल्ले के लोग देखते, माधवदत्त की गाड़ी शाम होते ही निकल जाती और अगले दिन सुवह लौटती। एक दिन देखते, दल का एक आदमी कम हो गया है। सिर पर घुंघराले वाल, और झकाझक कपड़े पहने सिर्फ सीतापति वावू साथ नहीं हैं।

माधवदत्त ने कहा था—"तुम फिर यहीं रहो, दायीं ओर घुड़साल के नीचे वाली कोठरी में रहो।"

वात थी कि जव तक कुछ इन्तजाम न हो, सीतापति वावू वहीं रहेंगे। लेकिन मामले पर मामला, झमेले पर झमेलों के कारण वह और नहीं हो पाया। घुड़साल के नीचे की कोठरी में सीतापति वावू तभी से

रहने लगे। यह कोई चालीस साल पहले की बात है। काल-क्रम से अब सीतापति बाबू एकदम घर के आदमी हो गये थे। एकदम कुटुम्बी। सुबह उठकर सीतापति बाबू भिश्तीखाने पहुँच जाते, साबुन लगाकर कपड़े धोते। अँगोछा लपेटकर नहाते, फिर गीले धोती-कुर्ता बनियान लेकर बगीचे के तार पर सुखाते। माधवदत्त की उस समय आधी रात होती। नहा-धोकर अपनी कोठरी में जा बैठते। सामने से अगर कोई जाता हुआ दीखता तो आवाज देते—"भूपन, ओ भूपन!"

भूपन अन्दर का आदमी था, पास आकर पूछता—क्या कह रहे हैं?"

सीतापति बाबू कहते—"बारह बज गये, अभी तक खाने को नहीं बुलाया, जरा देखोगे, बात क्या है?"

भूपन चला जाता। काफी देर तक राह देखने पर भी कोई खबर देने नहीं आता। सीतापति बाबू कोठरी के बाहर आकर चहलकदमी करते रहते। कोचवान-सईसों की रसोई बन रही होगी। सीतापति बाबू जाकर पास में खड़े हो जाते, वे लोग मसाला पीस रहे होते या मछली काट रहे होते। सीतापति बाबू के पेट में भूख से चूहे कूद रहे होते। पुकारते—"कासिम, ओ कासिम!"

कासिम पूछता—"क्या बात है, बाबू?"

सीतापति बाबू कहते—"तुम लोग तो मजे में अब खाने बैठोगे, लेकिन मुझे तो अभी तक खाने को नहीं बुलाया।"

कासिम बेचारा क्या करे। उसके करने का कुछ है भी नहीं। रसोई-घर अन्दर है। वहाँ मुसलमान का जाना मना है। यों भी मर्दाने लोग वहाँ नहीं घुस सकते। रसोईघर के बाहर के बरामदे में बैठकर खाना होगा, महाराज अलग से सबको खाने को थाली दे जायेगा।

कासिम कहता—"लेकिन आज तो आपको बड़ी जल्दी भूख लग आयी, बाबूजी!"

"सुबह? सुबह क्या अब रखा है? सुबह तो अब फिर कल ही होगी। पता है कितना बजा है?"

—कहकर सीतापति बाबू चहलकदमी करने लगते। थोड़ी देर में

फिर पास आते, कहते—"कासिम, एक काम कर पाओगे ? कर दो न, बड़ी मेहरबानी होगी।"

"क्या काम बाबूजी ?"

"जरा अदालत अली को बुला दोगे ?"

अदालत की गति हर कहीं है। सभी उसका अदब करते हैं। माधव-दत्त का निजी खिदमतदार। उसके कहने पर किसी को ना कहने की हिम्मत नहीं होती। उसको देखने से ही काम हो जाता।

कासिम कहता—"वह तो सो रहा होगा इस समय, वह कहाँ मिलेगा ? मालिक के साथ सारी रात हाटखोला में रहा।"

माधवदत्त का निजी खिदमतदार अदालत अली। हुजूर सो रहे हैं। वह भी इस समय सो लेता।

सीतापति बाबू एकटक रसोईघर की ओर देखते रहते। कोई भी तो नहीं आ रहा बुलाने। और दिन तो बनमाली ही आ जाता था। चलते-चलते रसोईघर की ओर बढ़ जाते सीतापति बाबू। घुड़साल से निकलकर है भिश्तीखाना। इसके बाद एक छोटा-सा दरवाजा। दरवाजे के पास पहुँचकर सीतापति बाबू आवाज लगाते—"बनमाली, ओ बनमाली !"

काफी देर बाद बनमाली हाजिर होता। पूछता—"क्या है ?"

सीतापति बाबू—"यही तो भाई, आज खाने में इतनी देरी क्यों हो रही है ?"

बनमाली कहता—"अभी खाना तैयार नहीं हुआ, होते ही बुलाऊँगा।"

सीतापति बाबू—"क्या कहा ? अभी तक खाना तैयार ही नहीं हुआ ? मुझे जो भूख लगी है ! देख, मेरा पेट देख।"—कहकर सीतापति बाबू हाथ से अपना पेट दिखलाते।

कहते—"इधर देख, एकदम सूखे कुएँ की तरह हो रहा है, देखा—कितनी भूख लगी है।"

बनमाली देखता, लेकिन जरा भी परवाह नहीं करता। कहता—"क्या करूँ बाबू, खाना तैयार ही नहीं है, तो कैसे दे दूँ ?"

"तो क्या, भात भी नहीं हुआ है ? सिर्फ भात और दाल होने से ही काम चल जायेगा। दाल-भात ही दे न, अब रहा नहीं जाता।"

वनमाली नाराज हो जाता। कहता—"बाबा आपसे मगज खपाने को मेरे पास समय नहीं है।"

सचमुच वनमाली को कितने ही काम थे। सीतापति बाबू के साथ बकझक करने से कैसे चलेगा। दरवाजा बन्द कर वह अपने काम पर चला जाता।

सीतापति बाबू कातर स्वर से चिल्लाते —"ओ वनमाली, जा मत भाई, सुन, बात सुन, बड़ी भूख लगी है।"

लेकिन कहाँ वनमाली, कहाँ कौन। इतने कातर स्वर में श्री मधुसूदन वनमाली को पुकारने पर शायद वह भी भक्त की पुकार का उत्तर देते, लेकिन दत्त हवेली के वनमाली का हाथ बड़ा कठोर है। उसका मन खींचना बड़ा कठिन काम है। वह इतनी जल्दी द्रुत नहीं होता। सीतापति बाबू हारकर अपनी कोठरी में आकर लेट गये। पहले चित्त पड़े रहे, फिर उलटे, पेट के बल, फिर जैसे पेट पकड़कर छटपटाने लगे।

चालीस साल पहले शुरू-शुरू में ऐसा नहीं था। उस समय सीतापति बाबू इस घर में आये ही थे। उनका अपना सगा कोई भी नहीं था। चाचा-ताऊ ने मुकदमा कर बँटवारा कर लिया था। खानदानी घर भी छोड़ना पड़ा। एक फोटोग्राफी की दुकान थी। अच्छे फोटोग्राफर के रूप में उनका नाम भी था। उसी समय कभी-कभी माधवदत्त के यहाँ फोटो लेने आना हुआ। और उसी समय से न जाने कैसे सीतापति बाबू इसी दल में घुस आये, इन्हीं समार बाबू, गौरहरी बाबू, निताई बाबू और प्रानकेष्टो बाबू के दल में। उसी समय से ही नित्य नियमपूर्वक शाम को माधवदत्त की महफिल में आकर, बन-ठनकर बैठना होता, माधवदत्त की हाँ में हाँ मिलानी होती, उनके हँसने पर हँसना होता, उफ करने पर उफ करनी होती, माधवदत्त के खाँसने पर खाँसना होता। इसके अलावा जो भी नियम-कानून थे, सबके साथ उनका पालन करना होता। सभी की तरह चुनी धोती और कलफ किया कुर्ता पहनना

होता। तह कर दुपट्टे को गले में डालना होता। चेहरा तो भले आदमी का-सा था ही। गोरा पके आम-सा चेहरा। पतली-पतली बिच्छू के डंक-सी मूँछें। माधवदत्त के पास वह फबते भी खूब थे। लेकिन शायद नसीब अच्छा नहीं था। इसी से एक दिन मामले-मुकदमे में चौपट हो गये। घर गया, जगह गया, धन्धा गया। अन्त में माधवदत्त को घुड़साल के नीचे की कोठरी में गुजारा करना पड़ा।

खाने बैठने पर सीतापति बाबू कहते—"ओ बनमाली, जरा चावल देना भाई।"

महाराज आकर चावल दे जाता।

सीतापति बाबू कहते—"थोड़ी दाल और देनी होगी।"

फिर दाल आती, फिर चावल। चावल जरा ज्यादा हो जाते, तो दाल कम पड़ जाती। चावल कम हो जाते, तो तरकारी ज्यादा हो जाती। तरकारी खत्म करने के लिये चावल और चाहिये। इसी तरह भात, दाल, तरकारी खत्म करते-करते जब खाना पूरा होता, तो सीतापति बाबू जरा देर बैठे रहते।"

कहते—"जरा बैठूं बनमाली, समझा, जरा देर बैठ रहा हूँ यहाँ।"

बनमाली गुस्सा हो जाता, कहता—"आपके उठने पर ही तो जगह खाली होगी, अब आप उठिये।"

सीतापति बाब कहते—"रुक न बाबा, जब देखो तब चण्डी चढ़ी रहती है तुझे, देख तो रहा है, खाना जरा ज्यादा हो गया है, हिल भी नहीं पा रहा हूँ।"

"तो इतना खाते क्यों हो? खाते समय तो खाली जरा-सा दाल दो, जरा चावल और देना महाराज, करते हैं।"

"तब क्या भूख लगने पर खाऊंगा नहीं? बिना खाये आदमी उठ सकता है? तू क्या कह रहा है, पता है? देखता हूँ, तू आदमी का खून कर सकता है, किसी दिन मुझे भूखा ही मार डालेगा।"

हाँ, तो यह बनमाली भी उस समय ऐसा नहीं था। चालीस साल पहले यही बनमाली अदब से बात करता था। समय से खाने को बुलाता। बारह बजते-बजते ही बनमाली आकर पुकारता—"सीतापति बाबू, ओ

सीतापति बाबू !"

सीतापति बाबू का अभी नहाना ही नहीं हुआ होता। बैठे-बैठे अपनी कोठरी में तम्बाकू खा रहे होते।

"यह क्या, आज खाना नही खायेंगे ?"

"इतनी जल्दी खाना ? अभी तो तम्बाकू खा रहा हूँ ?"

"तम्बाकू बाद मे खाइयेगा, पहले खाना खा लीजिए, देर करने से पित्त खराब होगा।"

यही वनमाली कितनी खातिर करता था उस समय। भोजन के लिए बैठने पर कितनी मिन्नतें—"थोड़े चावल और लीजिये बाबू, इतना-सा खाने पर शरीर कैसे चलेगा।"

उस समय जबर्दस्ती खिलाता था वनमाली। फिर अन्दर से पान आता। मुखवास आता। माधवदत्त के खास बाबू, नौकर-चाकरो की फोटो ले देते। अपने ही खरचे से तसवीर खींचकर बाँटते। इसमे नौकर-चाकर भी खुश रहते थे। महाराज ज्यादा मछली देता, दाल देता, कभी-कभी दही, मिठाई वगैरह भी देता। इसके अलावा उस समय दत्त हवेली की हालत भी अच्छी थी। माधवदत्त के दोनों हाथों मे पैसा आता। वे दिन अच्छे थे। मनों मछली और घी आता। पूजा होती और दुर्गोत्सव पर सबको धोती और दुपट्टा बाँटे जाते। उस समय की बात ही और थी। माधवदत्त तो घर रहते ही नही थे। आज हाटखोला, कल वड़ानगर, परसों श्रीरामपुर, कुछ-न-कुछ लगा ही रहना। संसार बाबू का दम श्रीरामपुर के रथ के मेले मे मजा कर गगाचार तक एकदम खड़दा पहुँचता और वहीं रात काटकर सुबह लौटता। अगले दिन या तो वैद्यबाटी जाते थे या फरासभाँगा। जिस दिन दूर जाते, उस दिन घोड़ा-गाड़ी नही जाती थी। घोड़ा-गाडी से बाबूघाट तक। बाबूघाट से नौका यात्रा होती। गैस की लालटेन जलाकर माधवदत्त की नाव इस पार से उस पार जाती—गंगा को आलोकित करती हुई। संसार बाबू, गौरहरी बाबू, निताई बाबू, प्रानकेष्टो बाबू सभी माधवदत्त को घेरकर बैठे होते। अदालत अली तम्बाकू भरता, ग्लास ठीक करता। ग्लास मे एक बार होठ लगाकर तम्बाकू पीते-पीते कहते—"फिर क्या हुआ, चाटुज्जे ?"

संसार बाबू कहते—"फिर इसपर पूंटी ने कहा, उनका एकादशी व्रत है।"

माधवदत्त को बात अच्छी-लग गयी। बोले—"वाह ! पूंटी ने भी खूब कहा। पूंटी की भी एकादशी ? लेकिन एकादशी व्रत में हो तो मछली-माँस नहीं खाना चाहिये, मान लिया कि चावल, तरकारी वगैरह भी नहीं खाना चाहिए, लेकिन 'माल' चढ़ाने में क्या हानि है ?"

"जी, यह कौन समझता है ? इसपर भी मैंने कहा, 'माल' के बिना मजा नहीं आता। हम सब खायेंगे-पियेंगे और तुम बैठी-बैठी व्रत-पालन करोगी, तो महफिल कैसे जमेगी ?"

गौरहरी बाबू ने कहा—"इसके अलावा पैसा खरच करके मजा करने आये हैं, इसपर लड़की का मिजाज सुनने क्यों जायेंगे ?"

प्रानकेष्टो बाबू ही क्यों पीछे रहते—"जी, नीची जात की लड़की है। अभी महफिल का नियम-कायदा ही नहीं सीखा, फिर भी इस लाइन में आ गई है।"

माधवदत्त ने फर्सी की नली मुँह से हटाकर कहा—"अरे, यह तो वही पत्रा देखकर लहर करने वाली बात हो गयी।"

माधवदत्त की बात पर सभी हँस पड़े। हँसते-हँसते बेहाल हो गए।

माधवदत्त ने हठात् कहा—"एक बात आयी है दिमाग में—"

"क्या ?" सभी उत्सुक हो उठे।

माधवदत्त ने कहा—"मैं कह रहा था कि आज खड़दा जाने की जरूरत नहीं है, इससे तो···"

"इससे तो ?"

"इससे तो आज पूंटी के यहाँ जाकर ही एकादशी की रात काटी जाए—क्या कहते हो ?"

फिर सब लोग ही-ही करके हँस पड़े। हँसी की आवाज पर इस पार, उस पार तक के लोग चौंक गए। उस समय नाव का मुँह घूम रहा था। नैहाटी जाना नहीं हो पाया। फरासडाँगा पूंटी के मकान पर पहुँचना तय हुआ। वहीं एकादशी-निशिपालन किया जायेगा।

उधर सीतापति बाबू अपनी कोठरी में चुपचाप सोते होते।

फड़ेपुकुर माधवदत्त की हवेली में इस समय आधी रात होती। कामनी फूल के एक झाड़ी की खुशबू से बगीचा जैसे भर गया था। वनमाली ने खुद बुलाकर अच्छी तरह से खिलाया है। उस दिन का खाना खाकर तृप्ति भी खूब हुई। पेट भर चुका है। फिर भी वनमाली दही दे गया।

सीतापति बाबू खुद ही चौंक उठे—"यह क्या वनमाली, दही क्यों?"

वनमाली ने कहा—"जी, हम लोग तो 'हुकुम' बजाने वाले हैं, दही देने का 'हुकुम' हुआ—"

एक बार तो ताज्जुब हुआ सीतापति बाबू को। आखिर किसका हुकुम हुआ दही देने का। घर का स्नेह-प्यार तो भूल ही चुके हैं। काफी दिनों पहले माँ-बाप के जीवित रहने पर भी बचपन में सीतापति बाबू स्कूल पढ़ने जाते थे। श्यामबाजार के मोड़ तक गाड़ीवान गाड़ी से पहुँचा देता। इन माधवदत्त जैसी न होने पर भी सीतापति बाबू के घर की हालत अच्छी ही थी। दुमंजिला घर था, गाड़ी थी। काम-काज होने पर कलकत्ते के सभी परिवारों के लोग उनके यहाँ आते-जाते। नाम लेते ही लोग पहचान जाते। लेकिन बड़े होने के साथ-साथ रंग फीका पड़ता गया। गाड़ी-घोड़ा गया। घर था और थी दुकान, फोटोग्राफी की दुकान। बड़े-बड़े घर के लोग सीतापति बाबू के यहाँ फोटो खिंचवाने, पर्दानशीन घरों की औरतें भी सीतापति बाबू को घर के अन्दर बुलाकर फोटो उतरवातीं। ये जो घर हैं दोनों ओर, इन पक्के दो तल्ले, तीन तल्ले घरों में भी सीतापति बाबू जाते। चेहरा-मोहरा अच्छा था ही, रंग भी साफ, उसपर लम्बे-लम्बे घुंघराले बाल और मलमल का कुर्ता। एक दिन फोटो लेने आने पर ही फड़ियापुकुर की माधवदत्त की हवेली में ससार बाबू के दल से भिड़ गए थे।

माधवदत्त ने कहा था—"वाह, क्या फोटो ली है!"

उस दिन सभी ने सीतापति बाबू की फोटोग्राफी की तारीफ की थी।

माधवदत्त ने कहा था—"आज नैहाटी जा पाओगे, हम लोगों के साथ?"

"नैहाटी ?"

"तुम्हें जरा भी तकलीफ नहीं होगी। हम सभी लोग जाएँगे। ये संसार वावू, निताई वावू, गौरहरी वावू, प्रानकेष्टो वावू, सभी जाएँगे। खाने-पीने, सोने-बैठने सभी वात का इन्तजाम है। जो खाना चाहोगे, खाने को मिलेगा, और अगर पीने-वीने में कोई आपत्ति न हो तो।"

नैहाटी में उस समय माधवदत्त की आठवीं प्रिया ने अभी घर वसाया ही था। उसी की फोटो लेनी होगी। इस दल के साथ सीतापति वावू की वही पहली रात थी। नैहाटी के वाद खड़दा, खड़दा के वाद वड़ानगर, वड़ानगर के वाद श्रीरामपुर, श्रीरामपुर के वाद वैद्यवाड़ी, वैद्यवाड़ी के वाद फरासगंगा। तव उनका कारोवार कौन देखता, दुकान देखने का समय ही नहीं मिलता था। और तो और, समय पर खाना खाने भी घर नहीं जा पाते। घड़घड़ करती गाड़ी छूटती, नाव चलती और महफिल जमती। तभी अचानक चाचा-ताऊ लोगों के साथ मुकदमा शुरू हो गया। वँटवारे का मामला। सीतापति वावू एकदम निराश्रय हो गये। उसी समय से वह अपना पैतृक घर छोड़कर यहाँ चले आए। इस फड़ियापुकुर के माधवदत्त की हवेली की घुड़साल के नीचे की कोठरी में।

शुरू-शुरू में माधवदत्त कहते—"तुम इस उम्र में ही वेरसिक हो रहे हो, सीतापति ?"

सीतापति वावू कहते—"मैं आदिम-समाज के वाहर हो गया हूँ, सर।"

"तव, क्या तुम एकदम शुक्राचार्य हो गये हो ?"

"जी, ऐसा होता तो आफत ही क्या थी !"

इसके वाद जव सभी लोग गाड़ी में चले जाते, सीतापति वावू अकेले अपनी कोठरी में आ वैठते। या अपने तख्तपोश पर सीधे पड़े रहते। जव तक वनमाली खाने के लिए वुलाने नहीं आता, सीतापति वावू पड़े-पड़े नाना भावनाओं की गुत्थी उलझाते और फिर सुलझाते रहते। खाने-पीने के वाद फिर वही हाल। सारी हवेली उस समय निस्तब्ध होती। वनमाली ने अच्छी तरह से खिलाया है, वाद में दही भी

दिया है। नींद से आँखें भारी हो रही थी।

हठात् एक दिन एक काण्ड हो गया। बाहर से न जाने किसने दरवाजे पर ठक्-ठक् की।

सीतापति बाबू ने लेटे-लेटे ही पूछा—"कौन ?"

थोड़ी देर चुप रहकर फिर पूछा—"कौन ?"

कोई भी नहीं। किसी ने भी जवाब नहीं दिया। सीतापति बाबू ने स्पष्ट सुना था कि किसी ने दरवाजे पर दस्तक की। धीरे-धीरे सीतापति बाबू उठे। उठकर दरवाजे की कुण्डी खोली। कोई भी नहीं था। कासिम वगैरह माधवदत्त के साथ गाड़ी लेकर बाहर गए थे। सिर्फ कुछ घोड़े थे, रस्सी से बँधे। बगीचे में कामिनी फूल का झाड़ भूत की तरह खड़ा-खड़ा जैसे ऊँघ रहा था। इस ओर माधवदत्त की बैठक और रसोईघर, और उस ओर जनानखाना, हर ओर अंधेरा। वनमाली, टनमाली सब सो गए थे। सिर्फ बाहर सदर में एक बत्ती जल रही थी। वह सारी रात इसी तरह जलती रहेगी।

सीतापति बाबू फिर से कोठरी में आए। दरवाजे की कुण्डी चढा कर तख्तपोश पर चित लेट गए। उस समय माधवदत्त शायद बड़ा-नगर या खड़दा या श्रीरामपुर या हाटखोला की बस्ती में या पूँटी के घर एकादशी निशिपालन कर रहे होते। सब होंगे ससार बाबू, गौरहरी बाबू, निताई बाबू और प्रानकेष्टो बाबू। शराब, गोश्त, तबला और हारमोनियम के साथ घूँघरू की मीठी आवाज वातावरण को मादक और रंगीन बना रही होगी।

सुबह नहाने जाने पर सरला से मुलाकात हुई।

"अरे, क्या सरला है !"

सरला घूँघट खींचकर एक ओर हो जाती।

सीतापति बाबू उस समय गमछा लपेटे शरीर में तेल मल रहे थे। पूछते—"कल रात को तुमने पुकारा था क्या ?"

"मैं ? नहीं तो, मैंने तो नहीं बुलाया बाबू।"

सरला घूँघट को जरा और खींच लेती। अच्छे, जवान चेहरे की लड़की थी सरला। पान खाती, नाक के ऊपर टीका लगाती, बालों में

तेल डालकर माँग निकालती। दत्त हवेली की काफी पुरानी थी। अन्दर महल की खास थी।

सीतापति वावू ने कहा—"खाकर अभी तख्तपोश पर लेटा ही था, तभी लगा, जैसे कोई दरवाजा खटखटा रहा है।"

सरला ने जीभ काट ली। बोली—"कहते क्या हैं वावू, मैं क्यों भले आदमी को रात के समय पुकारने जाऊँगी, मेरी आदत ऐसी नहीं है।"

"वही तो मैं भी सोच रहा था"—सीतापति वावू ने कहा—"सरला को तो मैं जानता हूँ, वह ऐसी नहीं है ? खैर, कोई होगा। और शायद मेरे मन की भूल ही हो !"

सरला ने कहा—"शायद और किसी की आवाज सुनी हो—शायद सौरभी का काम हो।"

"सौरभी ? सौरभी कौन ?"

"जी, सौरभी को नहीं पहचानते ? वही जो उनावी रंग की साड़ी पहने, पल्ला झुलाती घूमती है, नाक में नथ पहनती है, वह औरत देखने में ही सीधी है। भीतर से वह पूरी छिनाल है।"

सीतापति वावू ने और सिर नहीं खपाया। दत्त हवेली की एक-एक स्त्री जैसे वाघन थी। रसोईघर में झगड़ा होने पर जब चिल्लाना शुरू करतीं तो चील-कौए तक वहाँ ठहरने की हिम्मत नहीं कर पाते। सीतापति वावू जब खाने बैठते, तो कभी-कभी तो उसी समय शुरू हो जाता। चें-चें में कुछ भी सुनाई नहीं देता। जल्दी से खाना खत्म कर भागते। जवान-जवान लड़कियाँ हाथ-पैर पकड़कर, गला फाड़-फाड़कर चिल्लातीं। माधव बाहर बैठक में सोये होते। वहाँ तक उन लोगों के गले की आवाज नहीं पहुँच पाती। लेकिन अन्दर के लोगों को पता चल जाता। सब नौकर और नौकरानियाँ उठान पर जमा हो जाते। अलग-अलग दलों में बँट जाते। यहाँ तक कि हाथापाई की नौवत आ जाती। गुस्सा आने पर जवान-जवान लड़कियों का चेहरा कैसा हो जाता है, सीतापति वावू ने इससे पहले कभी नहीं देखा था। क्या-क्या सूरतें थीं। हाथी की सूँड़ जैसे हाथ और हाथी जैसी छाती। वही छाती हिलाती

और हाथ नचाती एक-दूसरे पर प्रहार करती, एक-दूसरे के बाल पकड़कर खींचती। वह दृश्य बिना आँखों से देखे ठीक-ठीक नहीं बतलाया जा सकता। कभी-कभी उठान पर कलामुण्डी खाने लगती या एक-दूसरे से चिपट जाती। उस समय न किसी का जूड़ा ठीक रह पाता, न शरीर पर के कपड़े ही ठीक रह पाते। तब वनमाली लाठी ऊँची कर कहता—"निकलो, हरामजादियो, निकलो यहां से।"

तब सब ठीक हो जाता। सभी अपने-अपने काम पर चले जाते। फिर शान्ति छा जाती।

सीतापति बाबू पूछते—"हाँ रे वनमाली, तुम लोगों की बहूरानी कुछ कहती नहीं है, इतनी चें-चें होती रहती है।"

सच ही तो। अन्दर जनाने में इतनी सारी नौकरानियों को नियन्त्रण करना भी तो आफत से कम नहीं है।

वनमाली कहता—"जी, बहूरानी की शह पाकर ही तो ये लोग इतना सिर चढ़ गयी हैं, इन लोगों के तो आगे-पीछे बेंत लेकर घूमे, तब ठीक हो पायें!"

लेकिन बेंत मारे कौन? जो मार पाता, उसकी तो आधी रात है, उस समय। बारह बजे एक बार करवट ली थी, उसी समय अदालत अली ने शायद एक कप चाय मुँह से लगा दी होगी, बस, शाम तक की छुट्टी। चार बजे के बाद उठेंगे। उठकर एकाग्र मन से पूजा करेंगे। तब तक बैठकखाना लोगों से ठसाठस भर चुका होगा। एटर्नी हरिहर बाबू प्रोबेट वाला मामला लेकर आयेंगे। वकील हेमदाकान्त बाबू एक साथ चालीस मकानों का ट्रान्सफर डीड आगे बढ़ायेंगे। तभी एक-एक कर ससार बाबू, गौरहरी बाबू, निताई बाबू और प्रानकेष्टो बाबू आयेंगे, और तभी सीतापति बाबू भी सज धजकर धीरे-धीरे सबसे पीछे आकर बैठेंगे।

चालीस साल पहले यही 'रूटीन' था। इसी 'रूटीन' के अनुसार फड़ियापुकुर की दत्त हवेली का रोजमर्रे का काम-काज चलता। लेकिन सीतापति बाबू तो उस समय जानते नहीं थे कि इस रूटीन में कुछ गड़बड़ होगी। एक दिन इसी 'रूटीन' से बाहर, बड़ानगर में बलराम

वाबू के घर उन्हें इस 'रूटीन' का गर्त भरना होगा।

उस दिन सौरभी एकदम कोठरी में चली आयी।

माधवदत्त उस समय सदल-बल नियमानुसार बाहर गये थे। कासिम वगैरह कोई भी नहीं था। कोठरी में अकेले। तम्बाकू की खुमारी चढ़ी थी कि अचानक सौरभी कोठरी में आयी। सीतापति बाबू उस दिन भीतर से कुण्डी लगाना भूल गये थे।

सीतापति बाबू का सारा खुमार रफूचक्कर हो गया। झट से उठकर बैठे, पूछा—"कौन?"

"मैं हूँ, सौरभी, कहती हूँ, मैंने तुम्हारा ऐसा कौन-सा नुकसान किया है, कौन-सी तुम्हारी फसल चुरा ली!"

सीतापति बाबू ने कहा—"छीः, छीः, तुम मेरा नुकसान क्यों करने लगीं, तुम मेरा पका-पकाया खेत क्यों उजाड़ने लगीं?"

सौरभी ने तब भी गले की आवाज कम नहीं की। बोली—"मैंने तुम्हारे शरीर में गुलगुली मचायी?"

सीतापति बाबू—"क्या कहती हो। यह भी कोई करता है?"

सौरभी कहती गयी—"सर्वनाश हो हरामजादी का! मुझे बदनाम करती है। मैं पोतखली के नस्करों के यहाँ की लड़की हूँ, निहात पेट के लिए नौकरी करने आयी हूँ, मुझे कहती है कि मैं मर्दों के साथ इशारेबाजी करती हूँ?"

इसके बाद झट से सीतापति बाबू का हाथ पकड़ लिया। कहा—"जरा आओ तो बाबू एक बार, हरामजादी के मुँह पर थूककर छोड़ूंगी।"

सचमुच सौरभी सीतापति बाबू का हाथ पकड़कर बाहर ले गयी।

सीतापति बाबू जितनी आपत्ति करते, सौरभी उतना ही खींचती। खींचते-खींचते एकदम अन्दर ले गयी। रसोईघर की खिड़की। जवान शरीर और अच्छा स्वास्थ्य। शरीर में काफी ताकत भी थी।

सीतापति बाबू ने कहा—"देख, यह भी कोई बात हुई? कहाँ खींचे ले जा रही है!"

फिर तो कहाँ से, किस-किस सीढ़ी को पार कर महल के किस

कमरे में ले गयी, सीतापति बाबू समझ ही नहीं पाये।

सौरभी चीख रही थी—"यह ले हरामजादी ! जरा इधर आ, आज तेरा सरला नाम बदल दूंगी, मैं पोतखली के नस्करों की लड़की हूँ, मुझे छिनाल कहती है !"

सीतापति बाबू का दिल धुक्-धुक् करने लगा। खींचते-खींचते एकदम जनानखाने में ले आयी। आँगन में लोग जमा होने लगे, सौरभी का काण्ड देखने। लेकिन सौरभी के सामने एक शब्द भी बोलने का साहस किसी में न था। सौरभी की आवाज सुन, जिसको जहाँ मिला, छिपने की कोशिश करने लगी। किसके धड़ में कितने सिर हैं, जो सौरभी के सामने आये।

सौरभी अभी तक चिल्ला रही थी—"आ हरामजादी, आ !"

सीतापति बाबू धीरे-धीरे कहने लगे—"छोड़, हाथ छोड़ सौरभी ?" उनके हाथ में दर्द होने लगा था।

"क्या हुआ री सौरभी ?"

अचानक जैसे कोई अनहोनी बात हो गयी हो। सौरभी ने भी एकाएक हाथ छोड़ दिया। सीतापति बाबू ने देखा, पास के कमरे में इधर कोई महिला आयी, और सीतापति बाबू पर नजर पड़ते ही घूँघट खींच जल्दी में कमरे में वापस चली गयी। करीब एक सेकण्ड की बात, लेकिन इतने ही समय में सीतापति बाबू ने पूरा चेहरा देख लिया। असाधारण रूप, सिर पर पीछे की ओर बड़ा-सा जूड़ा, गले में मोतियों का हार, माँग में अच्छी तरह से सिन्दूर लगा हुआ। सीतापति बाबू आँखें फाड़े देखते ही रह गये। इतनी सुन्दरता मानव जाति में होती है ? मनुष्य शरीर में इतना सौन्दर्य भरा हो सकता है ? भगवान् भी जिसको देते हैं···

सीतापति बाबू एका एक भागने लगे।

लेकिन गोरखधन्धे में जैसे रास्ता भूल गये। किस ओर से कहाँ होकर लौटना होगा, कुछ पता ही नहीं चला। एक कमरे के बाद दूसरा कमरा, फिर सीढ़ी। सीढ़ी पार कर कमरा, फिर सीढ़ी, इसके बाद चबूतरा। चबूतरा पार कर फिर रसोईघर। इसके बाद खिड़की, खिड़की पार कर

घुड़साल। घुड़साल के नीचे अपनी कोठरी में आकर सीतापति बाबू ने साँस ली। पूरी की पूरी हवेली जैसे आँखों के सामने घूम रही थी। कौन थी वह? कौन आ गया था अचानक? इतनी मीठी आवाज किसके गले की थी? भगवान् ने किसे इतना रूपवान बनाया है? यह रूप क्या आदमी में होता है?

उस दिन भी बनमाली ने खाने के लिए बुलाया। सीतापति बाबू खिड़की पार कर रसोईघर के दालान में खाने बैठे। सीतापति बाबू ने क्या खाया, यह तो नहीं जाने। बनमाली ने क्या कहा, वह भी कान में नहीं गया। क्या खा रहे थे, यह भी पता नहीं। खाना खाकर अपने तख्त पर पड़े-पड़े आकाश-पाताल के कुलावे मिला रहे थे, तभी सौरभी फिर आयी।

सीतापति बाबू तड़ाक से उठ बैठे।

पूछा—"क्या सौरभी? क्या बात है?"

सौरभी ने अच्छी तरह से अपनी साड़ी को ठीक किया। घूंघट खींचा।

सीतापति बाबू ने कहा—"क्या सर्वनाश कर दिया तुमने? अगर मालिक के पास रिपोर्ट हो जाये, तब क्या होगा?"

सौरभी सिर्फ जरा मुसकरा दी। कुछ बोली नहीं। फिर हाथ बढ़ाकर बोली—"लो बाबू, पान खाओ।"

"पान!" सीतापति बाबू अवाक् रह गये। उनके नसीब में पान खाना, यह तो कुछ अजीब-सी बात है।

पूछा—"पान! पान का क्या होगा?"

"तुम खाओगे बाबू, तुम्हारे लिये लायी हूँ।"

पान लेकर सीतापति बाबू ने पूछा—"किसने दिया?"

"मैंने।"

पान मुँह में रखकर सीतापति बाबू सौरभी की ओर देखकर मुसकराये। लेकिन सौरभी और नहीं रुकी, सीधी बाहर चली गयी।

सीतापति बाबू ने सोचा था, पान देकर सौरभी जरा देर रुकेगी, जरा हँसेगी, बोलेगी। लेकिन उसे ऐसा कुछ न करते देख, उन्हें जरा

आश्चर्य हुआ। अचानक उठे और पुकारने लगे—"सौरभी ! सौरभी !"

सौरभी जाते-जाते रुक गयी। पूछा—"क्या बात है, बाबू ?"

सीतापति बाबू उठकर पास आये। उस समय उम्र कम थी, नयी-नयी जवानी चढ़ी थी। सौरभी ने एक बार सीतापति बाबू की ओर देखा। पूछा—"कुछ कहेंगे मुझसे ?"

सीतापति बाबू ने फुसफुसाकर पूछा—"वह कौन थी, उस दिन सौरभी ?"

"किसकी बात कर रहे हो ?"

"वही, जो उस समय मुझे देखते ही भाग गयी। वह कौन है ?"

सौरभी ने कहा—"ओह, तो यह कहो—वही तो बहूरानी हैं।"

"बहूरानी ? मालिक की पत्नी ?"

चालीस साल पहले की यह घटना सीतापति बाबू के जीवन के साथ ऐसी घुल-मिल गयी, जिसके कारण फड़ियापुकुर की दत्त हवेली का इतिहास अभिशप्त हो उठा। चालीस साल तक सीतापति बाबू ने इस घर में खाया, यहीं का पहना, यहीं शायद मर भी जाते लेकिन चालीस साल के बाद अचानक एक अनहोनी हो गयी। हठात् [illegible] टूट गया।

सौरभी को देखते ही सीतापति बाबू उठ खड़े होते। पूछते—"सब ठीक है न ?"

सौरभी फिसफिस करके कहती—"हाँ, बाबू, चलो।"

तब सीतापति बाबू मुँह में पान रख, चबाते-चबाते किसी-किसी दिन पूछते—"आज पान किसने लगाया है री ? खुशबू आ रही है!"

सौरभी जवाब नहीं देती। सिर्फ कहती—"चुप रहो, बाबू, कोई सुन लेगा!"

इसके बाद उस अंधेरे में खिड़की पार कर, रसोईघर पार कर, बरामदा और जनानखाना पार कर यथास्थान पहुँचने में सीताराम बाबू को काफी चक्कर लगाना पड़ता था। कलकत्ता शहर के बीच फड़ेपुकुर की पालिश चढ़ी सभ्यता में वह रास्ता उन्हें बड़ा ही कठिन और लम्बा प्रतीत होता था। लार्ड क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स जिस रास्ते से कलकत्ता आये, उससे भी अधिक कठिन और दुर्गम। माधवदत्त के पुरखे जिस रास्ते से भटककर फड़ेपुकुर आकर बसे थे और अपार सम्पत्ति के मालिक हुए थे, उससे भी अधिक दुर्गम। रात के अन्धकार में फोटोग्राफर सीतापति फड़ेपुकुर की दत्त हवेली के उस राजसी कमरे में पहुँचकर रात के बादशाह बन जाते और मालिक माधवदत्त खड़दा में पूंटी के घर एकादशी का निशि-पालन कर रहे होते; तबला, हारमोनियम और गजल के मिसरों में खोये होते।

शाम के समय हमेशा की तरह सीतापति बाबू को देखकर माधवदत्त पूछते—"क्या हाल है ? ठीक तो हो ?"

सीतापति बाबू सविनय कहते—"जी, आपकी दया से ठीक ही हूँ।"

वास्तव में दया ही तो थी। पिछली रात पूंटी के यहाँ जमी महफिल की बात कर सभी को दया ही आती थी। सीतापति बाबू तो वहाँ गये नहीं, वह क्या जानें वहाँ का मजा! ओह, बेचारे के ऊपर दया आती है।

माधवदत्त पूछते—"पूंटी को तो पहचानते थे न ?"

सीतापति बाबू उत्तर देते—"जी, पहचानता क्या था, अभी भी पहचानता हूँ। कितने पोज लिये हैं उसके।"

माधवदत्त सगर्व कहते—"उसी पूंटी का दिमाग ठण्डा किया कल

हमने।"

"किस तरह ?"

सीतापति बाबू उत्सुकता दिखलाते।

माधवदत्त फर्शी की नली मुंह में देते-देते कहते—"बड़ी गरमी थी, एकदम ठण्डा कर दिया।"

"कैसे ? जरा मैं भी सुनूं, हुजूर ?"

माधवदत्त अँगुली से संसार बाबू की ओर इशारा करते, कहते—"इन लोगों से पूछो···"

बीते कल की बात फिर से वर्तमान हो जाती। घटना का विस्तृत हाल सुनते-सुनते जैसे सब फिर से सशरीर वहां पहुँच जाते। तम्बाकू आती, अदालत अली फिर से फर्शी की नली आगे बढ़ा देता।

संसार बाबू कहते—"आप क्या जवानी में ही संन्यासी हो गये सीतापति बाबू ?"

प्रानकेष्टो बाबू कहते—"असली मजा ही नहीं लूटा, तो जिन्दगी में किया ही क्या आपने ?"

निताई बाबू सलाह देते—"अब तो गेरुआ पहनना शुरू कर दीजिए !"

गौरहरी बाबू सलाह देते—"इससे तो कोई गुरु-वुरु पकड़कर दीक्षा ले डालिये !"

सीतापति बाबू सभी की बात पर हँसते, फिर कहते—"आखिर में वही करना होगा, भाई !"

उस दिन सौरभी की जगह सरला आयी। सीतापति बाबू उसे देख-कर अवाक् रह गये।

पूछा—"क्या बात है, सरला बाला ? आज किस ओर सूर्य निकला ?"

सरला ने कहा—"ऐसा न कहिये, बाबू ! आपके ऐसा कहने से मेरी नौकरी चली जायेगी !"

सीतापति बाबू हँसने लगे। पूछा—"तुम्हारी नौकरी चली जायेगी, माने ? तुम ठहरीं बहूरानी की खास बाँदी !"

"नहीं, बाबू, हम लोग तो ताम्बूल खिलाकर आदमी को वस में नहीं कर सकते। हमारे पान में तो झाल है।"

"झाल है या नहीं, खिलाकर ही देख लो न!"—सीतापति बाबू ने मुसकराकर कहा।

सरला ने कहा—"न भई, कोई जरूरत नहीं है। पान खिलाकर अपनी नौकरी से भी हाथ धोऊँ, न बाबू!"

सीतापति बाबू ने कहा—"अरे, रहने भी दो! तुम्हारी नौकरी पर आँख लगाये, ऐसा शख्स दत्त हवेली में अभी तक पैदा नहीं हुआ है। सौरभी किस खेत की मूली हैं!"

सरला जैसे अचानक काफी घनिष्ठ हो उठी। धीरे से बोली—"तो एक बात कहती हूँ, रखोगे?"

"कहो।"

सरला ने कहा—"किसी से भी नहीं कहेंगे, किसी से भी नहीं! मेरे सिर पर हाथ रखकर कसम खाओ।"

सीतापति बाबू ने सरला के सिर पर हाथ रखा। बोले—"यह लो, सौगन्ध खा ली, अब कहो।"

सरला ने कहा—"हाथीबगान की आयुर्वेदी दुकान से एक छटाँक आमले की भस्म और आधा पाव फिटकरी लानी होगी।"

"क्यों? क्या होगा? किसके लिए?"

"वह नहीं कहूँगी। ला पायेंगे या नहीं, कहिये?"

सीतापति बाबू ने कहा—"जब कह रही हो, तो ला दूँगा।" सरला आँचल से पैसे निकालने लगी। सीतापति बाबू ने कहा—पैसे रहने दो, मेरे पास हैं।"

सरला के जाते ही सीतापति बाबू पैरों में चप्पल डालकर निकले। चीज सरला को जल्दी ही चाहिए। जाते-जाते सरला कह गयी—"किसी से कहियेगा नहीं, बाबू! याद रखियेगा, सिर पर हाथ रखकर सौगन्ध खायी है!"

हाथीबगान पास ही है। वैद्यराज ने चीज का नाम सुनते ही सीतापति बाबू की ओर देखकर पूछा, "इस दवा का क्या होगा, आप बता सकते हैं?"

सीतापति बाबू ने कहा—"नहीं, साहब, वह तो नहीं कह सकता, क्योंकि मुझे खुद भी मालूम नहीं। मुझसे खरीद लाने को कहा गया है, सो लेने आया हूँ।"

"किसने लाने को कहा है ?"

सीतापति बाबू बोले—"मैं फड़ेपुकुर के माधवदत्त के यहाँ रहता हूँ, वहाँ की एक 'स्त्री' ने खरीद लाने को कहा है।"

नाम सुनकर वैद्यराज ने और कुछ भी नहीं कहा। तौलकर दवा कागज में बाँध दी। सीतापति बाबू चप्पल फटकारते-फटकारते घर चले आये।

लेकिन अगले दिन ही हवेली के सामने चील-कौओं का झुण्ड जमा था। माधवदत्त की हवेली के सामने डस्टबिन में ताजा खून से सनी पोटली पड़ी थी। आफिस जाते लोगों की भीड़ लग गयी। जो सामने आता, खड़ा हो जाता। सिर पर चील-कौए मँडरा रहे थे। सब कोई पूछते—"किसने फेंका है ? किस हरामजादी का यह काम है ?"

एक ने कहा—"दत्त हवेली में से किसी का काम है, समझे दादा ! यह काम दत्त हवेली को छोड़कर और कहीं का नहीं हो सकता, यह मैं शर्त बद कर कह सकता हूँ।"

और एक बोला—"यही सब पाप तो यहाँ जमा हो रहे हैं ! एक दिन सारा पाप फटकर पारे की तरह बहेगा, तब पता चलेगा !"

लेकिन दत्त हवेली में माधवदत्त को कुछ भी पता नहीं लगा। उस समय उनकी अर्द्ध-रात्रि चल रही थी। अदालत अली भी सो रहा था। कासिम वगैरह भी सारी रात जागने के कारण बेखबर सो रहे थे। पुलिस आयी। दरोगा आये। सफाई की गयी। आस-पास हजारों घर हैं, किसको पकड़ें !...किस पर सन्देह करें ! ऐसा पहले भी हुआ है, बाद में भी होगा। माधवदत्त के पुरखों के समय से ही होता आया है। पर उस समय हल्ला-गुल्ला नहीं होता था, तमाशा भी नहीं लगता था, पुलिस-दरोगा भी नहीं आते थे; कौए-चील झपट्टा मारकर ले जाते। फर्क इतना ही था। पर अब तो समय बदल गया है। लुका-छुपी बढ़ने पर बाहरी पालिश भी बढ़ी है। गोरे जिस्म और झकाझक चेहरों की

वहार आयी। पेटीकोट, ब्लाउज और कोट-पैण्ट की वहार आयी। घोड़ा-गाड़ी की जगह मोटर-गाड़ी आयी। अंग्रेजी लिखाई-पढ़ाई बढ़ी। कालेज और कचहरी बढ़ी। वकील, मुन्शी, बैरिस्टर, कानून, सभी बढ़े। बात-बात पर कानून पास होने लगे। विधवा-विवाह शुरू हुआ। लेकिन कलकत्ता शहर के लोग वहीं के वहीं रहे, एक इंच भी आगे नहीं बढ़े। हाँ, कलकत्ता में झूठ बोलना, खून, राहजनी जरूर बढ़ती रही। पर जहाँ तक सभ्यता का सम्बन्ध है, कलकत्ता शहर जैसे धीरे-धीरे पीछे की ओर ही खिसक रहा था।

हाँ, तो वही फड़ेपुकुर आज भी है।

वही फड़ेपुकुर है, वही कलकत्ता शहर है, वही माधवदत्त हैं, संसार बाबू, गौरहरी बाबू, निताई बाबू, प्रानकेष्टो बाबू भी हैं। बदला है सिर्फ उनका बाहरी चेहरा और ऊपरी पालिश। एक तरह से अब सारा कलकत्ता शहर ही माधवदत्त का महल हो गया है। इस शहर में भी ठीक उसी तरह रुक्मिणी-हरण होता है, विधवा-उद्धार होता है, पूँटी के यहाँ एकादशी का निशि-पालन होता है। और सीतापति बाबू जैसे लोग उसी आश्रय में रहकर मुसाहबी करते हैं और फटकार खाते हैं। जितनी फटकार खाते हैं, उतनी ही चापलूसी करते हैं। फटकार और गाली कोई शरीर से चिपकी तो नहीं रहती, लेकिन बड़े लोगों के साथ रहने से अच्छी नौकरी मिलती है, हाथ में चार पैसे आते हैं, भले ही छिटककर। यही क्या कम फायदा है! लेकिन फिर भी इस युग के सीतापति बाबू उस युग के सीतापति बाबू की तरह प्रतिशोध नहीं ले पाते।

शाम होने पर माधवदत्त की महफिल फिर से जमती है। फर्शी की नली मुँह से निकालकर माधवदत्त पूछते हैं—"सारी रात कैसे काटते हो, सीतापति बाबू?"

सीतापति बाबू कहते—"जी, सोकर।"

"क्या मजे की बात करते हो!"—कहकर माधवदत्त हँसते-हँसते बेहाल हो जाते।

फिर कहते—"रात अगर सोकर ही काटनी है, तो जिन्दा रहने की जरूरत ही क्या है? क्यों चाटुज्जे, क्या कहते हो?"

बात सुनकर सभी हँस पड़ते। कहते—"भगवान् ने रात मजा करने के लिए बनायी है। यही तो सत्य है ? फिर ?"

सीतापति बाबू कुछ कहते नहीं, सिर्फ हँसने में योग देते।

माधवदत्त पूछते—"उम्र तो निकली जा रही है, फिर कब मजा लूटोगे, सीतापति ?"

सीतापति बाबू कहते—"बस, अब करूँगा, हुजूर, जरा झमेले से निपट लूँ।"

सभी फिर से हँसते। कहते—"झमेलों से निपटते-निपटते तो सारा रस-बस सूखकर सूखे नारियल रह जाओगे!"

एक दिन रात को सीतापति बाबू पकड़े गये।

झर-झर पानी बरस रहा था। रात के ग्यारह बजने के बाद से ही बारिश शुरू हो गयी थी। इस तरह की बारिश में शायद दत्त हवेली के रनिवास में रात काटना बड़ा आरामदेह होता। पूरी इमारत जैसे सिर नीचा किये बारिश का उपयोग कर रही थी। माधवदत्त नहीं, अदालत अली नहीं, कासिम आदि नहीं। शाम को मल्लार बाबू और प्रानकेष्टो बाबू का दल यथा रीति निकल गया था। कानों में झर-झर पानी बरसने की आवाज आ रही थी। रसोईघर का झगड़ा और कहारिनों के बरतन माँजने की आवाज भी खत्म हो चुकी थी। भण्डार-घर के दरवाजे में ताला लग चुका था। सिर्फ सीढ़ी की बत्ती टिमटिमा रही थी। बिल्लियों का इस छत से उस छत आना-जाना अभी शुरू हुआ ही था। कॉर्निस के नीचे छिपे कबूतरों की आवाज भी सो चुकी थी। बारिश की आवाज के अलावा सब कुछ भाँय-भाँय कर रहा था।

अचानक दरवाजे पर ठक्-ठक् हुई।

"कौन ?"

गहनों के हिलने की आवाज आयी। दबे गले फिस-फिस हुई।

"कौन ?"

बाहर से हल्की-सी आवाज आयी। सौरभी का स्वर।

"क्या बात है, सौरभी ?"

"वावू, वाहर आ जाओ, मालिक आ गये हैं !"

मालिक ! माधवदत्त ! हड़वड़ाकर उठ वैठे सीतापति वावू, जैसे साँप देख लिया हो। और समय नहीं है, और कुछ भी सोचने का समय नहीं है। विना किसी ओर देखे पलंग से कूद पड़े। कहाँ कपड़े, कहाँ चादर, कुछ भी देखने का समय नहीं है। वाल विखरकर खराव हो गये थे, पर उन्हें सँवारने का समय नहीं है। वत्ती जलाने की हिम्मत की तो वात ही नहीं उठती। अभी भी सारा कमरा सुगन्धित तेल की खुशवू से भरा था। आधी रात हो चुकी थी। लेकिन लग रहा था कि अभी ही शाम पूरी होकर रात शुरू हुई है। ऐसी रातें सीतापति वावू को एकदम छोटी लगती। ऐसी सव रातें जैसे वहुत जल्दी ही खत्म हो जातीं, वहुत ही संक्षिप्त लगतीं।

सौरभी की वात सुनकर सीतापति वावू जल्दी से दरवाजे का अड़ंगा खोलकर वाहर आये।

"क्या वात है, सौरभी ?"

"जी, मालिक लौट आये हैं !"

सौरभी अभी भी हाँफ रही थी। दौड़ते-दौड़ते उसका दम फूल गया था।

"ऐसा तो होता नहीं। अचानक लौट क्यों आये मालिक ?"

सौरभी ने कहा—"वह सव तो पता नहीं। अदालत तम्वाकू का इन्त-जाम कर रहा है। मालिक का मिजाज वहुत खराव दिखाई दे रहा है।"

उस समय इतनी सव वात करने की फुरसत भी किसे थी ! उस अंधेरे में रास्ता देखना मुश्किल हो रहा था। रोशनी हो नहीं सकती, आवाज की नहीं जा सकती। छिपे-छिपे, दवे पाँव रसोईघर की खिड़की पार कर घुड़साल के नीचे वाली कोठरी में लकड़ी के सख्त तख्त पर चित पड़े रहना होगा। उस कोठरी में सुगन्ध जैसा कुछ भी नहीं है। कभी-कभी घोड़ों के खुरों की आवाज जरूर आती है। घोड़ों की लीद की दुर्गन्ध तो हर समय वनी ही रहती है। इसके अलावा घोड़े वीच-वीच में दुम फटकारते, हिनहिनाते और नाक ऊपर कर चेंहें-हेंहें की आवाज करते। लकड़ी के तख्त पर पड़े-पड़े पीठ अकड़ जाती।

साधारणतः ऐसा होना नही है। माधवदत्त के सदल बल बाहर जाते ही जैसे सब कुछ निरापद हो जाता। उस समय किसी की परवाह करने की जरूरत नहीं होती थी। माधवदत्त के जाते ही घर जैसे युद्ध-क्षेत्र बन जाता। रसोईघर में झगड़ा शुरू हो जाता। नौकरानियों का स्वर पंचम पर चढ़ता और वनमाली का एक-छत्र राज शुरू होता। तभी शुरू होता सीतापति बाबू का नैश-विहार। तभी मूँछों में इत्र लगता। गले और चेहरे पर साबुन घिसा जाता। तभी चुनी हुई धोती और कुरता पहने सीतापति बाबू तैयार होते। तभी हाथ में पान लिये सौरभी दरवाजे पर टोका लगाती।

सीतापति बाबू तम्बाकू की नली मुँह से निकालकर उठ खड़े होते। पूछते—"सौरभी, सब ठीक तो है ?"

सीतापति बाबू अच्छी तरह सावधान होने को एक बार पूछ लेते—"मालिक चले गये हैं न ?"

"हाँ, बाबू, हाँ! अच्छी तरह से बिना देखे क्या तुम्हें बुलाने आती ?"

"अदालत ? वह अदालत का बच्चा बड़ा शैतान है। वह भी गया है न ?"

सिर्फ अदालत ही नही, कासिम आदि की कोठरियाँ भी झाँक लेते हैं सीतापति बाबू। कोई भी नही है। खाली सिर्फ भाँय-भाँय है। माधवदत्त के प्रिय दोनों घोड़ों की जोड़ी भी गाड़ी के साथ चली गयी है।

"और वनमाली ?"

"जी, वनमाली तो बहूरानी के दल का है। वह बेटा अगर जबान खोले, तो उसका सिर न तोड़ दिया जायेगा! मूसली से उसकी खोपड़ी बचेगी फिर!"

ठीक ही तो है। वनमाली से, सरला से, महाराज से और अन्दर की किसी भी नौकरानी से डरने की जरूरत नही है।

सब ओर से निश्चिन्त होकर सीतापति बाबू पैरों में चप्पल पहनते जल्दी से निकलते-निकलते शीशे में एक बार अपना चेहरा भी निहार लेते।

वायें हाथ की दो अंगुलियों को मूँछों पर भी फेर लेते।

फिर कहते—"चलो···हाँ···अब तुम आगे-आगे चलो।"

रोज का वही देखा-भाला रास्ता। न पहचानने या भूलने की अब कोई गुंजाइश ही नहीं। रास्ता एकदम जाना-पहचाना हो गया है। सबसे पहले रसोई की खिड़की पार करनी होती है। इसके बाद रसोई का चबूतरा। फिर दो-चार बरामदे-दालान पार करके दो तल्ले दालान है। उस दालान को पार करते ही शुरू होता है माधवदत्त का रनिवास। वहाँ कदम रखते ही सीतापति बाबू का शरीर जैसे सिहर उठता। एकदम वर्जित जगह। कब और न जाने किस पुरखे के पूर्व जन्म के पुण्य फल से फड़ेपुकुर की इस दत्त हवेली का निर्माण हुआ था। उस समय से ही इस ओर आने का स्वयं सूर्यदेव भी साहस नहीं कर पाये। यहाँ के जो बाशिन्दा हैं, वे बनारसी साड़ी के घूंघट में एक दिन इस हवेली के अन्दर आये, तो फिर किसी ने उनकी शक्ल नहीं देखी। झरोखों और खिड़कियों से जिन्होंने बाहरी दुनिया देखने की कोशिश की, उन्होंने कितना देखा, यह तो वे ही जानें। वैसे मिस्त्रियों और राजों ने, जहाँ तक उनका बस चला था, वह सम्भावना भी छोड़ी नहीं थी। जो थोड़ी बहुत रोशनी अन्दर आती, वह भी दीवारों और परदों के इस व्यूह को भेद कर ही आ पाती। जो हवा आती, वह जैसे वास्तुशिल्प-विशारदों की बुद्धि पर हँसती हुई आती। इन सबके लिए उत्पादन भी वैसे ही थे। मेदनीपुरी और डायमण्ड हार्बरसे 'झी' और नौकरानियाँ आतीं। अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करने के बाद ही उन्हें भरती किया जाता था। उस समय दत्त हवेली में जवान लड़कियों को 'झी' बनाकर रखने का नियम नहीं था। शरीर जितना ढल चुका हो, उतना ही अच्छा माना जाता था। 'झी' बहुओं के पैरों में साबुन लगा देतीं। आलता लगातीं, कमर में दर्द होने पर कमर दबा देतीं। बालों में कंघी कर जूड़ा बाँध देतीं। माथे पर सिन्दूर की बिन्दी लगा देतीं। रसोईघर से खाने का थाल सजा लातीं। भण्डार से पान की गिलौरियाँ ले आतीं। नींद न आने पर तलुवे सहलाकर सुला देतीं। दत्त हवेली के पुरखे जैसे असूर्यम्पश्या बहुओं के लिए सातवाँ

स्वर्ग तैयार कर गए थे। वँधे हुए नियम-कानून, व्यवस्था-वन्दोबस्त, किसी वात में कसर नहीं रखी थी। दोनों हाथों से जिस तरह वे रुपया कमा रहे थे, उसी तरह सुख-सुविधा और ऐशो-आराम के मामलों में भी कंजूसी नहीं करते थे। हर वहू के सोने का कमरा अलग, बैठने का कमरा अलग और शृंगार का कमरा अलग था। फूलों के लिए पृथक् वगीचा था। कामिनी, वेला और गुलाबों से भरा हुआ वगीचा। वगीचे में माली की व्यवस्था भी थी। वगीचे के फूलों से शाम को वेणियाँ वनती। उन्हीं वेणियों को वहुएँ नहा-धोकर शाम के समय जूड़े में लगातीं। मेदनीपुर और डायमण्ड हार्बर से आयी बूढ़ी नौकरानियाँ सोने की कंघियों से जूड़ों में वेणियाँ लगाकर बीच-बीच में वख्शीश पातीं। सिर्फ वेणियाँ लगाना ही उनका काम नहीं था, दोपहर के समय वहुएँ जब सोतीं, पीठ का कपड़ा हटाकर सीपी से वे मरोरी मारतीं। ऐशो-आराम का जितना भी इन्तजाम सम्भव था, उन लोगों ने कसर नहीं रखी। एक समय कुटुम्बी और रिश्तेदार इस घर को छोड़कर इधर-उधर छिटक गये। इस हवेली में आदमी ही कम हुए हैं; नौकर-चकर, झी-दाई, सब वैसे के वैसे हैं। अकेली वहू, उसके लिए आराम-सुख की खुराक माधवदत्त यथारीति जुटाते आ रहे हैं। जो नियम-कानून शुरू से चले आ रहे, वैसे ही चल रहे हैं। उसी तरह शाम के समय नहाने के बाद अलता लगाना, माथे पर विन्दी लगाना, बालों में कंघी करके जूड़े में फूलों की वेणी लगाना, सब कुछ ठीक उसी तरह चल रहा है। दोपहर को सोने से पहले पीठ खुजवाने का इन्तजाम और है और है घण्टे-घण्टे के बाद ताम्बूल-सेवन का प्रबन्ध। इन सब नियमों में जरा भी रद्दो-बदल नहीं हुई। जमाना बदल गया है, समय भी वह नहीं है, फिर भी दत्त हवेली की एक वहू के लिए वही सब नियम-कानून चल रहे हैं। माधवदत्त खुद भी जिस तरह उस समय के सारे वंशानुगत नियमों का अक्षर-अक्षर पालन कर रहे हैं, उसी तरह सदल वल संमार वावू आदि के साथ नैश-विहार करना, घर के अन्दर भी उसी तरह अलता लगाना, बिन्दी लगाना, जूड़े में फूल लगाना, मरोरी मारना, सब वातों का उसी तरह अक्षर-अक्षर पालन हो रहा है।

लेकिन वर्तमान पीढ़ी के अन्तिम दिनों में उन नियम-कानूनों की लड़ी में अचानक गड़बड़ हो गयी। सच, एकदम अचानक। माधवदत्त भी इस बात की कल्पना नहीं कर पाये थे। माधवदत्त का लड़का वृन्दावनदत्त भी यह बात नहीं सोच पाया था।

जिस समय की बात कर रहा हूँ, उस समय वृन्दावनदत्त का जन्म नहीं हुआ था। माधवदत्त का इकलौता लड़का। राजकुमार-सा सुन्दर चेहरा। वही लड़का अन्त में ऐसा करेगा, किसे मालूम था! मधुसूदन सुनार बहूरानी का हार जिस दिन पहली बार माधवदत्त के सामने लाया, उसी दिन सब लोगों को वह किस्सा मालूम हुआ। बड़ानगर के बलराम बाबू को भी पता लगा। वृन्दावनदत्त भी जान गया, लेकिन सीतापति बाबू उस समय मृत्यु-शय्या पर पड़े थे।

खैर, जो भी हो, उस दिन घनघोर पानी में ही माधवदत्त लौट आये। अदालत अली लौट आया। कासिम आदि गाड़ी लेकर घुड़साल में चले गये। सीतापति बाबू को अभी नींद नहीं आयी थी। अपने तख्त पर आँखें बन्द किये पड़े थे। घुड़साल से आवाजें आ रही थीं। घुड़साल का दरवाजा खुला। दोनों घोड़ों को दाना दिया गया। उधर अदालत अली चिल्ला रहा था। अचानक मालिक लौट आये हैं। कोई भी तैयार नहीं था। फिर से महफिल जमीं। फिर से तम्बाकू तैयार की गयी। बारिश के कारण कोई कहीं भी नहीं जा पाया। रास्ते में कमर-कमर तक पानी जम गया था। घोड़े आगे नहीं बढ़ पाये। गाड़ी डूब जाने का डर था।

सीतापति बाबू अपनी कोठरी में पड़े-पड़े डर से काँप रहे थे। थोड़ी देर बाद बाहर आये। पुकारा—"कासिम!"

"जी हुजूर!"

सीतापति बाबू ने पूछा—"क्या हुआ? लौट क्यों आये?"

"हुजूर, सारे रास्ते में पानी भरा है। गाड़ी चल ही नहीं सकी।"

उस दिन बड़ानगर जाने की बात थी। श्याम बाजार के मोड़ पर पहुँचकर गाड़ी अटक गयी। माधवदत्त ने कहा—"चलो, बेलघरिया चलो।"

कासिम ने कहा—"घोड़े बढ़ नहीं रहे, हुजूर!"

"घोड़े नहीं बढ़ते, तो चाबुक मारो ! घोड़ों के लिए इतने मजे की रात खराब नहीं की जा सकती। इतना सामान है। संसार बाबू, निताई बाबू, गौरहरी बाबू, प्रानकेष्टो बाबू, सभी साथ हैं।"

ससार बाबू ने कहा—"हुजूर, बातासी इन्तजार में बैठी होगी !"

गौरहरि बाबू बोले—"ओह, मालिक के लिए रो रही होगी बेचारी !"

निताई बाबू ने कहा—"इतना सारा माल किसी काम नहीं आयेगा, सब खराब होगा, हुजूर !"

माधवदत्त और भी उत्तेजित हो गये। बोले—"अदालत कहाँ गया ?"

अदालत गाड़ी के पीछे खड़ा-खड़ा भीग रहा था। आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया—"हुजूर मुझे बुला रहे थे ?"

माधवदत्त ने कहा—"कासिम से कहो, घोड़ों को लेकर नहीं बढ़ेगा, तो मैं उसे चाबुक से मार-मारकर अधमरा कर दूँगा।"

कासिम ने गुस्से में पानी के अन्दर ही गाड़ी चला दी, जैसे तालाब में गाड़ी बढ़ रही हो। पानी में घोड़ों के बिगड़ जाने का डर था। लेकिन कासिम के चाबुक के डर से वे भी प्राणपण से कोशिश कर गाड़ी खींचने लगे। असली विलायती घोड़े थे। आस्ट्रेलिया से आये घोड़े। जन्म उस देश में और कर्म इण्डिया में। निश्चय ही भाग्य खराब था, नहीं तो इतने देशों के रहते इण्डिया में माधवदत्त की घुड़साल में क्यों आये होते ! और इस तरह रोज-रोज नाइट ड्यूटी ही क्यों बजानी पड़ती !

ससार बाबू ने कहा—"यह भी एक तरह से हम लोगों का नौका-विहार ही हो रहा है, हुजूर !"

माधवदत्त को यह बात कुछ पसन्द नहीं आयी, बोले—"तुम भी बड़े बेरसिक होते जा रहे हो, चाटुज्जे ! सीतापति की तरह दिनोंदिन बेरसिक हो रहे हो।"

"क्यों हुजूर ? मैंने क्या किया ? मैं तो रोज आपके साथ नाइट ड्यूटी दे रहा हूँ।"

"अरे, नौका-विहार क्या ऐसे ही होता है ? षोडश गोपी कहाँ है ?

श्री राधे कहाँ हैं ?"

बात तो ठीक है। माधवदत्त की बात में सभी ने हाँ मिलायी। मालिक की बुद्धि की तारीफ करनी पड़ती है, यह बात तो किसी के दिमाग में आयी ही नहीं।

लेकिन पानी धीरे-धीरे बढ़ रहा था। यहाँ तक कि गाड़ी के दरवाज़ों की सन्द से पानी गाड़ी के भीतर भी आने लगा।

माधवदत्त चिल्ला उठे—"अरे रोको, रोको! इस कासिम के बच्चे में जरा भी बुद्धि नहीं! साले की अक्ल का एकदम दिवाला निकल गया है!"

अन्त में बेचारे कासिम की ही मुसीबत आयी। गाली-गलौज जो खानी थी, खा ली। सिर झुकाकर सहन किया। बोला—"हुजूर, गुस्ताखी माफ़ हो···!"

"हुजूर के बच्चे, तुझे चाबुक से पीटकर ही मेरा जी ठण्डा होगा!"

इसके बाद अफ़सोस करने लगे—"ऐसी अच्छी रात मिट्टी कर दी!"

सच ही माधवदत्त की रात मिट्टी हो गयी। संसार बाबू, निताई बाबू, गौरहरी बाबू, प्रानकेष्टो बाबू, सभी लौट आये। फिर से महफिल में सब गोल होकर बैठे। अदालत अली तम्बाकू दे गया।

माधवदत्त आग-बबूला हो गये। बोले—"फिर से तम्बाकू क्यों दे रहा है बे?"

अदालत अली अकचकाकर रह गया।

माधवदत्त बोले—"देखा, चाटुज्जे, देख रहे हो इस हरामी की बुद्धि! साला जले पर नमक छिड़क रहा है! कहता हूँ, बिस्तरे लगा···!"

अदालत अली महफिल में ही माधवदत्त के बिस्तरे लगाने लगा। माधवदत्त ने गुस्से में भरकर एक थप्पड़ लगाया—"यहाँ सोऊँगा मैं! यहाँ कभी सोया हूँ मैं, जो यहाँ बिस्तरा लगा रहा है?"

अन्त में वही हुआ।

अन्दर खबर गयी। मालिक अन्दर सोयेंगे। ऐसी घटना तो सुनी नहीं गयी। सभी मालिक का अजीब मिजाज देखकर ताज्जुब से एक-दूसरे का चेहरा देखने लगे।

बहूरानी के कमरे में ही सौरभी ने बिस्तरा लगाया। नयी चादर निकली। नये गिलाफ निकाले। तकिये, तोषक, मसनद लगे। पीकदानी रखी गयी और माल। अदालत अली माल वगैरह भी खुद सजाकर सौरभी को दे आया। अदालत अली को अन्दर आने का अधिकार नहीं है। रात को अचानक अगर माधवदत्त की नींद टूट जाये, तो वह उनके मुंह के आगे कर देनी होगी। तम्बाकू से भरी फर्शी तैयार रखनी होगी। पीकदानी सिरहाने की ओर पलंग के नीचे रखनी होगी। और भी कितने ही नियम-कायदे अदालत अली ने सौरभी को समझा दिये।

अन्त में माधवदत्त महफिल से उठे।

दूसरे दिन फिर हमेशा की तरह महफिल जमी। एटर्नी नरहरी बाबू कागजात लेकर आये। वकील हेमदा बाबू भी आये—अपनी फाइलें लिये। संसार बाबू, गौरहरी बाबू, निताई बाबू और प्रानकेष्टो बाबू, कोई भी उस रात अपने घर नहीं जा पाये थे। वे लोग भी आकर जम गये। प्रार्थी लोग भी अपनी-अपनी अर्जी लिये आ बैठे। माधवदत्त पूजा समाप्त कर मसनद पर बैठे। एटर्नी नरहरी बाबू आगे बढ़ने लगे। वकील हेमदाकान्त भी सुयोग की ताक में उठकर खड़े हो गये। लेकिन माधवदत्त ने किसी की ओर भी नहीं देखा। सीधे आकर मसनद के सहारे अधलेटे-अधलेटे पूछा—"अरे हां, सीतापति को नहीं देख पा रहा हूं।"

"मालिक, मैं इधर हूं।"

"तुम आये हो ?"

सीतापति बाबू ने कहा, "मैं तो यहां काफी देर का आया हुआ हूं !"

"अच्छा, तो तुम अभी तक बचे हुए हो ?"

इसका मतलब ? मतलब कोई भी नहीं समझ पाया।

माधवदत्त हंसने लगे। बोले—"अपनी नाक पर हाथ लगाकर देखो, सांस चल रही है या नहीं ?"

माधवदत्त की बात पर सभी हंस पड़े।

माधवदत्त ने फिर कहा—"तुम्हारा सिर तुम्हारे धड़ पर ठीक से तो है ?"

इस वार भी सव हँस पड़े। सभी सीतापति वावू की ओर देखकर हँसने लगे।

संसार वावू नेही अन्त में पूछा—"क्यों हुजूर, ऐसा क्यों कह रहे हैं?"

माधवदत्त ने कहा—"अच्छा, तो सुनो फिर! क्या मज़ा हुआ, कल रात, जो अन्दर सोने गया, तो जाकर देखता हूँ, मेरे सोने के कमरे में पलंग के नीचे सीतापति की चप्पल पड़ी है!"

"यह कैसे, हुजूर?"

सचमुच आश्चर्य की वात ही थी। मालिक के सोने के कमरे में पलंग के नीचे सीतापति वावू की चप्पल!

माधवदत्त ने कहा—"हाँ, मैं देखते ही पहचान गया कि यह चप्पल सीतापति की छोड़ और किसी की नहीं हो सकती—चीनी डीसिन मार्का चप्पल!"

"फिर?"

माधवदत्त ने कहा—"फिर क्या! मन-ही-मन हँसने लगा। सोचा, यह आदमी या तो पागल है, नहीं तो कम से कम सिरफिरा जरूर है। नहीं तो चप्पलों को मुँह में दवाकर विल्लियाँ अन्दर ले गयीं और इन्हें पता ही नहीं चला!" कहकर माधवदत्त जितनी देर तक हँसे, उनके मुसाहिवों का दल भी वरावर हँसता रहा।

सच ही तो है। हँसने की ही तो वात थी। सारे घर में विल्लियों का दल भरा है। एकदम विल्ली-कुटुम्व। उसी कुटुम्व के सदस्यों ने सारे घर पर अधिकार कर लिया है। रात को ही उनका उत्पात वढ़ता है। उन्हीं में से किसी ने घुड़साल के नीचे सीतापति वावू की कोठरी में से चप्पलें मुँह में दवाकर अन्दर माधवदत्त के रनिवास में पहुँचा दीं। एक ही नहीं, दोनों चप्पलें ठीक एक ही जगह पहुँचायीं और इधर सीतापति वावू को पता ही नहीं है!

"ऐसा वोड़म आदमी देखा है तुम लोगों ने? इसी से पूजा करते-करते सोच रहा था कि दीखते ही पूछूँगा, सीतापति, तुम्हारा सिर गरदन के ऊपर ठीक से तो है?"

सीतापति वावू ने कहा—"जी, दरवाजा खुला छोड़कर ही सो गया।

था न, शायद इसी से···"

माधवदत्त हो-हो कर हँस पड़े। बोले—"इस उम्र में इतनी नींद अच्छी नहीं है सीतापति, नहीं तो किसी दिन तुम्हें ही विल्लियाँ खींचकर ले जायेंगी!"

हाँ, तो उसी साल वृन्दावनदत्त का जन्म हुआ। माधवदत्त की इकलौती सन्तान। दत्त वंश का एकमात्र कुल-दीपक।

याद है, सीतापति बाबू ने सौरभी को खूब डांटा था। कहा था—"जरा-सी और देर हो जाती तो मालिक के हाथों पकड़ा जाता!"

"तो मैं क्या करती? मुझे क्या खयाल था इस समय?"

"लेकिन तुम्हें चप्पलों का ध्यान तो दिलाना था? मालिक आ गये हैं, यह सुनते ही मैं तो जल्दी से भाग आया अँधेरे में!"

"क्या मेरा भी दिमाग ठीक था उस समय?"

"तुम जरा बुद्धि लगाकर चप्पलों को कहीं छिपा देती।"

खैर, जो हुआ सो हुआ। बिल्ली के ऊपर से बात निकल गयी, यही कृपा हुई भगवान् की। उसके बाद से सौरभी और भी अधिक सावधान रहती। सीतापति बाबू भी सावधान रहते। माधवदत्त ने और भी रातें बाहर काटीं। एटर्नी नरहरी बाबू कागज लेकर आये, वकील हेमदाकान्त बाबू भी अपनी फाइलों को लिये हुए और मौका लगते ही सही-सही कराकर ले गये। कहीं पर जरा भी गड़बड़ी नहीं हुई। फड़ेपुकुर की दत्त हवेली की जीवनधारा वैसे ही अबाध गति से बहती रही।

वृन्दावनदत्त का अन्नप्राशन हुआ, पट्टी-पूजा हुई। एक दिन वृन्दावनदत्त बड़ा भी हो गया। माधवदत्त भी एक दिन बूढ़े हो गये। संसार बाबू, निताई बाबू, गौरहरी बाबू, प्रानकेष्टो बाबू भी बूढ़े हो गये। सिर्फ इतना ही नहीं, जवान सौरभी भी बूढ़ी हो गयी, जवान सरला भी बूढ़ी हो गयी। अब रसोईघर में वैसा झगड़ा नहीं होता। सौरभी को कमर में वात की शिकायतें हो गयी है। खुद ही तेल-मालिश करती है। कहती है—"भगवान् उठा लें, तो बच जाऊँ!"

सरला कहती—"और क्या-क्या देखना है माँ, आँखों में छानी पड़ गयी है।"

वनमाली आगे की तरह बुलाने नहीं आता। पहले जैसी खातिर भी नहीं करता; बारह, एक, दो, कभी-कभी तो तीन भी बज जाते। सीतापति बाबू पड़े-पड़े बिलखते, वनमाली के आने की राह देखते। भूख से जैसे प्राण निकलने-निकलने को होते और सहन नहीं होता। चप्पल डालकर बाहर आते। पूछते—"ओ कासिम…कासिम मियाँ, तुम लोगों का खाना-पीना हुआ ?"

"जी हाँ, हो गया।

"देखो तो, तुम लोग खा-पीकर आराम कर रहे हो और मेरा अभी खाना ही नहीं हुआ ! अभी तक कोई बुलाने ही नहीं आया !"

कासिम बेचारा क्या कहता !

सीतापति बाबू फिर कहते—"दत्त हवेली का भी क्या हाल हो गया है, कुछ समझ में नहीं आता ! मेरी भी क्या दशा हुई है !"

सचमुच दत्त हवेली का क्या हाल हुआ है ! कैसे यह सब हो गया ! जैसे जादू का खेल हो। जादू के महल की तरह सब हवा में उड़ गया। जिस साल वृन्दावनदत्त का जन्म हुआ, उसी रात कलकत्ते में बड़े जोर की आँधी आयी थी। दत्त हवेली के बगीचे के कोने में जो एक शिरीष का पेड़ था, वह भी गिर गया था।

वृन्दावन को कितना लाड़, कितना प्यार मिला था ! लड़का न होकर जैसे माधवदत्त का प्राण हो। रोज महफिल में आते ही माधवदत्त कहते—"अदालत, खोका को ले आओ तो।"

अदालत अली तम्बाकू लाता। खोका को भी ला देता।

जैसा सुन्दर चेहरा, वैसा ही स्वास्थ्य। देखते ही गोद में लेने का इच्छा होती।

माधवदत्त कहते—"इसी उम्र में खूब चालाक हो गया है, जानते हो, चाटुज्जे ?"

संसार बाबू कहते—"आपका ही तो वंशधर है, बुद्धि नहीं होगी ?"

माधवदत्त कहते—"इसी उम्र में बाबा कहना सीख गया है।"

गौरहरी बाबू कहते—"बाप का बेटा, सिपाही का घोड़ा। यह लड़का आपका नाम रखेगा हुजूर, देख लीजियेगा।"

प्रानकेष्टो बाबू कहते—"आपने नाम भी खूब रखा है, हुजूर ! त्रेता युग मे वृन्दावन ही तो थी श्री माधव की लीला-भूमि।"

"क्यो, तुम कुछ नही बोल रहे, सीतापति ?"

सीतापति बाबू कहते—"जी, मैं और क्या कहूँ ?"

संसार बाबू कहते—"ठीक ही तो है, सीतापति बाबू कहेंगे ही क्या ! सीतापति बाबू की स्त्री नही है, बेटा भी नही है। बेटे का मर्म सीतापति बाबू क्या समझें !"

माधवदत्त कहते—"ठीक कहते हो, चाटुज्जे, अपनी सन्तान न होने पर दूसरे के लड़के का मर्म नही समझा जाता।"

वृन्दावन तब तक माधवदत्त की गोद में उठकर हुक्के की नली मे खींच-तान शुरू कर देता है। माधवदत्त नली को बेटे के मुँह मे देकर कहते—"हाँ, बेटा, हाँ, मजा लो ?"

छोटा-सा बच्चा। नली का मुँह जीभ से चाटने लगता।

माधवदत्त लडके का नली चूसना देखकर हँस पड़े।

कहते—"देख रहे हो, चाटुज्जे, देखो ''देखो, लडके का तम्बाकू पीना देखो, खूब तम्बाकूखोर होगा खोका !"

सभी देखते। संसार बाबू, निताई बाबू, गौरहरी बाबू, प्रानकेष्टो बाबू, सभी तारीफ करते।

सभी ने कहा—"आपका लड़का बहादुर है। हुजूर, बाप के सारे के सारे गुण पाये हैं।"

सीतापति बाबू अभी तक एक कोने मे चुपचाप बैठे थे। यह सब देखकर उनका चेहरा जैसे सूख गया। बोले—"मालिक, इतना आदर न करें। इससे अभी से लडके का स्वभाव खराब हो जायेगा।"

माधवदत्त अचानक सीतापति बाबू की ओर घूमे। बोले—"तुम खाक समझते हो ! सुनो, चाटुज्जे, सीतापति की बात सुनो ! कहते हैं, तम्बाकू पिलाने से लड़के का स्वभाव खराब हो जायेगा ! मैं तो बचपन से तम्बाकू पी रहा हूँ, मैं भी कभी का खराब हो जाता !"

संसार बाबू हँसते-हँसते बेहाल हो गये। निताई बाबू भी हँसने लगे। गौरहरी बाबू, प्रानकेष्टो बाबू, सभी दिल खोलकर हँसने लगे।

संसार वावू ने कहा—"जी, सीतापति वावू से पूछिए न हुजूर, उनकी बीवी ने कितने बेटे जने हैं ?"

"वही तो तुमने भी खूब कहा ! कहते हैं न—'बीवी नहीं, बेटा नहीं, निधिराम के बाप।' अपने सीतापति का भी वही हाल है।"

वृन्दावन के अन्नप्राशन के समय माधवदत्त ने बड़ी धूम-धाम की थी। शहनाई बजी, नौटंकी हुई। दूर-दूर के लोग वाह-वाह कर गये। फड़ेपुकुर की गली गाड़ियों से भर गयी। गहने का आर्डर मधुसूदन सुनार को मिला। गहने से वृन्दावन का शरीर ढँक दिया गया। झी-चाकर, कासिम, वनमाली, सौरभी, सरला, सभी को नयी धोती, साड़ी और थान मिले। पुरोहितों को दान में घड़ा, लोटा, थाली, कपड़े और न जाने क्या-क्या मिला और वे संतुष्ट होकर वृन्दावन को आशीर्वाद दे गये।

दस भरी का हार गले का। दस अँगुलियों में बीस अँगूठियाँ, झुमका, कंगन, तागा, बाला, कुछ भी बाकी न रहा। गहने के भार से माधवदत्त का लड़का हिल भी नहीं पा रहा था।

उस दिन अदालत अली लड़के को गोद में लिये महफ़िल में पहुँच गया।

"किसने क्या दिया है, देखा जाय। किसका क्या उपहार है ?"

"चाटुज्जे, यह देखो, यह दिया है वृन्दावन के काका ने, यह वृन्दावन की मौसी ने, और यह वृन्दावन की बुआ ने दिया है···और यह···"

"यह बाला की जोड़ी किसने दी है, हुजूर ?"

माधवदत्त ने कहा—"यह अपने सीतापति ने दिया है।"

संसार वावू, निताई वावू, गौरहरी वावू, प्रानकेष्टो वावू, सभी की आँखें फटी की फटी रह गयीं। सीतापति वावू ने मालिक के लड़के को बाला दिये हैं। सबको इस तरह से अँगूठा दिखलाया ! सभी को इस तरह से हरा दिया।

सभी ने कहा—"तुमने बाला दिया है, सीतापति ?"

"पता नहीं, तुम्हारे पास इतना सब आता कहाँ से है ?"

"अरे, सब मालिक का ही है।"

"शायद हम लोगों को नीचा दिखलाने के लिए दिया है।"

सीतापति बाबू ने कहा—"हाथ का सोने का तावीज था, उसका क्या होता ? उसी को तुड़वाकर बाला बनवा दिये। मालिक के यहाँ रहता हूँ, उन्ही का खाता हूँ, मालिक का दिया ही पहनता हूँ। मौका पाने पर बिना कुछ दिये खराब लगता है।"

हाँ, तो वही वृन्दावन फिर बड़ा हुआ। उसकी पट्टी-पूजा हुई। मास्टर पढ़ाने आने लगा। स्कूल जाना शुरू हुआ। वृन्दावन गाड़ी से स्कूल जाता और शाम को वापस आता।

खाते-खाते सीतापति बाबू पूछते—"हाँ रे बनमाली, वृन्दावन इतना कमजोर क्यों हो रहा है ? ठीक से शायद खाना-वाना नहीं देते हो ?"

उन दिनों बनमाली का मिजाज बड़ा चिड़चिड़ा हो गया था। सीधे मुँह बात नहीं करता था।

सुबह कासिम वृन्दावन को गाड़ी से स्कूल पहुँचाने जाता।

"कासिम, ओ कासिम मियाँ, सुनते हो, भाई ?"

"जी हुजूर।"

सीतापति बाबू कहते—"खूब सावधानी से गाड़ी चलाना, भाई। समझे ? दरवाजा वगैरह ठीक से बन्द कर देना। आखिर बच्चा ही तो ठहरा। कौन जाने, कब दरवाजा खुल जाय और नीचे गिर जाय।"

"ऐसा नहीं हो सकता, हुजूर। छोटे बाबू को पूरी हिफाजत से ही ले जाता हूँ।"

सीतापति बाबू कहते—"हाँ, खूब सावधानी से। छोटा बच्चा है। इसी से कहता हूँ। नटखट भी तो है। हो सकता है, बाहर की ओर झाँक रहा हो कि गाड़ी का धक्का सँभाल न पाये और गिर पड़े। तब ? कब क्या हो जाये, कहा नहीं जा सकता, है न ?"

"और देख।" ···अपनी कोठरी मे जाकर फिर लौट आते और कहते—"और देख, बुरे लड़कों की सोहबत मे न पड़ जाय। समझे, कासिम ? इस उम्र में ही अगर बुरी सोहबत मे पड़ गया, तो एकदम खराब हो जायेगा। तुम जरा नजर रखना, भाई। हम लोग खुद भुगत चुके हैं न।"

माधवदत्त की महफिल वैसे ही गुलजार रहती। उस समय भी संसार वावू आते, निताई वावू, गौरहरी वावू, प्रानकेष्टो वावू आते। अदालत अली वैसे ही तम्वाकू तैयार करता। एटर्नी नरहरी वावू कागज लेकर आते। वकील हेमदाकान्त अपनी फाइलें लिये वैठे रहते।

माधवदत्त कहते—"हाँ, तो फिर क्या हुआ, चाटुज्जे ?"

संसार वावू कहते—"जी, फिर क्या होता। लड़की अपने आदमी से झगड़कर कोलातला वस्ती में आकर रहने लगी।"

"इसका मतलव ?"

माधवदत्त हमेशा की तरह चौंक उठते। तम्वाकू को नली मुँह से निकालकर कहते—"कोलातला की वस्ती में रहने लगी और मुहल्ले के लोगों ने कुछ भी नहीं कहा ?"

संसार वावू कहते—"जी, वे लोग और क्या कहते ? लड़की कोई वच्ची तो नहीं थी, अठारह-उन्नीस साल की जवान वहू थी।"

"अरे राम राम ! तुम भी गजव करते हो, चाटुज्जे !"

माधवदत्त झट मसनद छोड़कर उठ खड़े होते। अठारह-उन्नीस साल की जवान वहू अपने आदमी को छोड़कर कोलातला की वस्ती में रह रही है और माधवदत्त वैठे-वैठे देखते रहेंगे !

"चलो, चलो, देख आयें।"

माधवदत्त की उम्र तव ढलने लगी थी। वाल पकने लगे थे। काफी त्ति निकल चुकी थी। कई मुकदमों में हार गये थे। फिर भी अपने दलवल के साथ शाम को निकलते और भोर होते-होते लौटते—ठीक पहले की तरह। इसके वाद और भी कितनी उलट-पुलट हुई। और भी कितनी रद्दो-वदल।

सीतापति भी तव वूढ़े हो गये थे। वगीचे का कामिनी पेड़ भी झुककर नीचा हो गया था। कासिम की भी काफी उम्र हो चुकी थी। सारी रात जगने में अव तकलीफ होती थी। दोनों घोड़ों में भी अव उतना दम नहीं रहा था। पहले की तरह सरपट नहीं दौड़ पाते थे।

माधवदत्त कहते—"चावुक मार न, कासिम ! चावुक नहीं लगा सकता ? चावुक के सामने सव ठीक हो जाते हैं।"

कासिम चाबुक मारते-मारते भी रुक जाता। जरा धीरे से मारता। जानवर है तो क्या, आखिर जीव ही है न। उसका भी अपना मिजाज है, अपनी इच्छा है। उसको भी मान-अभिमान होता होगा। बात नही कर पाता, तो क्या कुछ समझता भी नही है ?

लौट आने पर कासिम दोनो घोड़ो को अच्छी तरह से मालिश करता। पीठ खुजला देता। दोनो पैर सहलाकर मुंह पर हाथ फेरता। जैसे शाम के चाबुकों को दिन के प्यार मे भुला देना चाहता हो।

कान के पास मुंह लाकर कहता—"क्यो रे, क्या हुआ है तुझे ?"

कासिम घोड़ो की बात समझता था। उनके गुस्सा होने का भान कासिम को तत्काल हो जाता था।

सीतापति बाबू सब सुनते। अपनी कोठरी मे पड़े-पड़े वह सब सुन पाते। फिर धीरे-धीरे उठकर आते। बाहर आकर पूछते—"किससे बात कर रहे थे, कासिम ? घोड़े के साथ ?"

कासिम सिर झुकाकर कहता—"जी हाँ।"

"लेकिन घोड़े के साथ बात करने से फायदा ?"

"हुजूर, वह सब समझता है। आदमियो की बातें भी समझ लेता हैं, सिर्फ बोल नही पाता।"

सीतापति बाबू हँसते। मूक जीव भी समझता है। लेकिन माधवदत्त नही समझ पाते।

कासिम कहता—"हुजूर, घोड़े का एक फोटो उतार देंगे ? आपके पास तो मशीन है। पता नही, कब मर जायेगा। इसी से कहता हूँ, निशानी रहेगी।"

सीतापति बाबू कहते—"कैसे उतारूँ, कासिम ! मशीन अब कहाँ है ! अपना कैमरा तो मैंने बेच दिया है।"

"अरे, यह क्या किया, हुजूर ? कैमरा बेच क्यों दिया ?"

सीतापति बाबू ने इस बात का कोई उत्तर नही दिया। कभी देते भी नही थे। टालकर चल देते। कुछ देर बगीचे मे टहलते। फिर जरा माधवदत्त की महफिल मे झांकते। मास्टर के पास बैठा वृन्दावन पढ रहा था।

सीतापति बाबू अन्दर घुस जाते। पूछते—"खोका कैसे पढ़ रहा है, मास्टर साहब ?"

मास्टर उत्तर देता—"अच्छी तरह से ही तो पढ़ रहा है।"

"जरा मन लगाकर पढ़ाना, मास्टर, जरा ध्यान से।"

मास्टर कहता—"जी, मैं तो मन लगाकर ही पढ़ा रहा हूँ।"

"हाँ, ऐसा ही करो, मास्टर। वृन्दावन का दिमाग अच्छा है, समझे मास्टर! बुद्धि-उद्धि भी है। फिर भी आखिर लड़का ही तो है, इसी से कहता हूँ।"

सीतापति बाबू इससे ज्यादा कुछ भी नहीं कह पाते।

लेकिन अगले दिन ही माधवदत्त ने उन्हें बुला भेजा। माधवदत्त महफिल में आकर बैठ चुके थे। सीतापति बाबू ने जल्दी से पहुँचकर कहा—"मुझे बुलाया था, हुजूर ?"

माधवदत्त ने फरशी की नली मुँह से निकालकर कहा—"आखिर तुम्हारा मतलब क्या है, सीतापति ? तुम चाहते क्या हो ?"

"जी, किस बात का मतलब ?"

"कहता हूँ, वृन्दावन तुम्हारा लड़का है कि मेरा ? तुम किस अधिकार से खोका के बारे में हुक्म देते हो ? तुम हो कौन ?"

"जी, मैंने क्या किया है ?"

माधवदत्त ने कहा—"वृन्दावन पढ़े या न पढ़े, इससे तुम्हें क्या ? मास्टर को अच्छी तरह से पढ़ाने के लिए कहने वाले तुम कौन हो ? मास्टर की तनख्वाह तुम तो नहीं देते ? रुपया अगर खराब होगा भी, तो वह तुम्हारा नहीं है। तुम वृन्दावन के मामले में क्यों टाँग अड़ाते हो ? तुम्हें यहाँ रहने को जगह मिली है, खाना मिल रहा है, यही काफी है। अगर यहाँ रहना चाहते हो, तो मुँह बन्द कर पड़े रहो, समझे ?···चले जाओ अब यहाँ से !"

इसके बाद से सीतापति बाबू मालिक की महफिल में भी नहीं जाते। माधवदत्त भी उन्हें नहीं बुलाते।

कभी कोई बात चलती, या कोई पूछता, तो माधवदत्त कहते—"शायद पड़ा होगा कहीं। जिन्दा ही होगा। मर गया होता, तो मुझे

खबर मिलती।"

बात सुनकर ससार बाबू हँसते। निताई बाबू, गौरहरी बाबू, प्रानकेष्टो बाबू, सभी मालिक की इस रसिकता पर हँसते।

कुछ दिनों बाद सीतापति बाबू और भी अधिक बूढ़े हो गये। सिर के बाल और भी सफेद हो गये।

इसी बीच एक दिन घर की मालकिन यानी माधवदत्त की पत्नी का स्वर्गवास हो गया। कहां, कौन से कोने मे वह रहती थी, पृथ्वी का कोई भी आदमी नही जानता था। जानती थी सिर्फ सरला, सौरभी और ऐसी ही कुछ अन्य नौकरानियां। अब तो वे लोग भी नहीं हैं। उन कोमल और गोरे-गोरे पैरों मे अब किसी को अलता नही लगाना होगा। बालों में कंघी कर किसी के जूड़े मे फूल नही लगाने होंगे। किसी का बदन और पैर नहीं दबाने होंगे। माधवदत्त को उस दिन बड़ा शोक हुआ था। सीतापति बाबू को याद है, वह रात माधवदत्त ने घर रहकर ही काटी। साथ में थे संसार बाबू, निताई बाबू, गौरहरी बाबू और प्रानकेष्टो बाबू।

माधवदत्त कह रहे थे—"बड़ा दु:ख हो रहा है रे!"

ससार बाबू ने कहा—"जी, कष्ट तो होगा ही। पत्नी सहधर्मिणी होती है। शास्त्रों मे इसी से पत्नी को अर्धांगिनी कहा गया है।"

गौरहरी बाबू ने कहा—"वह बड़ी सौभाग्यवती थीं, हुजूर, इसी से भरी मांग स्वर्ग मे जा पायीं। इस तरह का जाना कितनों को मिलता है! वह तो हम लोगों की साक्षात् सती माँ थीं।"

माधवदत्त ने कहा—"अदालत, थोड़ी-सी और ढाल, बड़ा खराब लग रहा है!"

लेकिन उस समय क्या उन्हें पता था कि इससे भी बड़ा दु:ख उनकी राह देख रहा है। उससे भी बड़ा दुर्योग। दुर्योगों की जसे आँधी चल रही थी। फड़ेपुकुर की वह हवेली दुर्योगों के इन धक्कों को सँभाल नहीं सकी, एकदम ढह गयी। वह दबदबा गया। ससार बाबू, निताई बाबू, गौरहरी बाबू और प्रानकेष्टो बाबू ने भी एक-एक कर विदा ले ली। यहाँ तक कि अन्त में सीतापति बाबू को भी दत्त हवेली के आश्रय से निकलना

पड़ेगा, यह किसी ने सोचा था !

माधवदत्त उस दिन गुस्से से आग होकर महफिल से उठे। अदालत अली अन्त तक माधवदत्त के साथ था। मालिक का हाल देखकर उसे भी आश्चर्य हो रहा था। माधवदत्त चप्पल पैरों में डाले बाहर बगीचे में जाकर खड़े हुए।

पुकारने लगे—"सीतापति, सीतापति ! कहाँ है ?"

सीतापति हमेशा की तरह घुड़साल के नीचे की कोठरी में तख्त पर पड़े थे। कोई काम-काज तो था नहीं, इससे पड़े रहने के सिवा कोई चारा भी नहीं था।

अचानक मालिक की पुकार सुनकर सीतापति बाबू उठ बैठे। चप्पल पाँव में डालकर बाहर निकलने ही वाले थे कि माधवदत्त एकदम कोठरी के दरवाजे पर आकर हाजिर हो गये। सीतापति बाबू ने अचकचाकर पूछा—"मुझे बुलाया था, हुजूर ?"

माधवदत्त ने कहा—"तुम इसी समय मेरे घर से निकल जाओ ! निकलो, इसी समय !"

"जी···"

"न, मैं और कुछ भी नहीं सुनना चाहता। वृन्दावन शराब पिये या न पिये, इसमें तुम्हारा सिर क्यों दर्द करता है ? वह क्या तुम्हारे पैसे से पीता है ? तुम्हारा रुपया उड़ाता है ?"

"लेकिन हुजूर, इस बारे में तो मैंने उससे कुछ कहा नहीं !"

"नहीं कहा, तो बात मेरे कान तक कहाँ से आयी ? मेरा लड़का भाड़ में जाये, जहन्नुम में जाये, इसपर बोलने वाले तुम कौन हो ? निकल जाओ यहाँ से !"

"जी···"

शायद अदालत अली से धक्के लगवाने का इन्तजाम ही कर रहे थे माधवदत्त। लेकिन उससे पहले ही सीतापति बाबू उसी हालत में चुपचाप घर से निकल गये। पाँव में चप्पल और एक धोती। वैसे साथ ले जाने को कुछ विशेष था भी नहीं। एक कीमती कैमरा था, लेकिन वह कुछ साल पहले मधुसूदन सुनार के हाथों बेच दिया था। फड़ेपुकुर की

रो रहा है···"

मैंने भी देखा, बेचारा कुत्ता इस बार फिर से पूंछ समेटकर तथा शरीर सिकोड़कर सोने की कोशिश रहा है। वह रास्ते पर का लावारिस कुत्ता था। लावारिस होने की वजह से ही निराश्रय, रास्ते की धूल पर खुले आसमान के नीचे सोने की कोशिश कर रहा है।

डॉक्टर साहब ने कहा—"उस समय के राजस्थान मे जितनी भी प्रजा थी, स्वरूपसिंह की नजरों में सबों का अस्तित्व इस लावारिस कुत्ते से बढ़कर नहीं था। घर-द्वार, औरत, लड़के-लड़कियों के रहते भी मानो उनके पास कुछ भी न हो। मानो वे मनुष्य न हों। स्वरूपसिंह की नजरों में *राजस्थान की प्रजा मानो जानवर ही हो। वह मरती है अथवा जिन्दा* रहती है, इसमे कोई फर्क नहीं पड़ता। उन दिनों के समाज का नियम ही यही था। सैकड़ों वर्ष पुरानी कहानी मैं आपको बता रहा हूं। उस समय राणा का अर्थ था भगवान्। देवादिदेव एकलिंगेश्वरनाथ के बाद उनका ही स्थान था।

लेकिन एक कहावत है—हाकिम बदल सकता है पर हुक्काम नहीं बदलता। यह भी उसी तरह है। स्वरूपसिंह फिर भी देवादिदेव एकलिंगेश्वरनाथ से ऊपर हैं, लेकिन उनके भी ऊपर अगर कोई है तो वह मन्त्री जगमन्तसिंह ही है। कोतवाल यदि कोई अत्याचार बाजार मुहल्ले वालों पर करता है तो उसकी अर्जी की अधिकतम सीमा मन्त्री जगमन्तसिंह ही है। स्वरूपसिंह तक वह पहुँच ही नहीं सकती है। स्वरूपसिंह को यह पता भी न लगेगा कि किस मुहल्ले के किस सेठ पर अत्याचार हुआ है। पूरे राजस्थान का शासन जगमन्तसिंह ही चलाता है। लेकिन असल में स्वरूपसिंह के इशारे पर।

स्वरूपसिंह की हुक्म-तामीली में जगमन्तसिंह कभी पीछे नहीं रहता। स्वरूपसिंह के कान मे जगमन्तसिंह जैसा सुनाता, स्वरूपसिंह वैसा ही सुनता है।

यदि जगमन्तसिंह कहे—"इस बार खेत में मक्के का फसल खूब हुआ है—किसानों को भरपूर नफा हुआ है—"

तो स्वरूपसिंह कहता—"तब खजाने की रकम बढ़ा दो—"

पड़ेगा, यह किसी ने सोचा था !

माधवदत्त उस दिन गुस्से से आग होकर महफिल से उठे। अदालत अली अन्त तक माधवदत्त के साथ था। मालिक का हाल देखकर उसे भी आश्चर्य हो रहा था। माधवदत्त चप्पल पैरों में डाले बाहर बगीचे में जाकर खड़े हुए।

पुकारने लगे—"सीतापति, सीतापति ! कहाँ है ?"

सीतापति हमेशा की तरह घुड़साल के नीचे की कोठरी में तख्त पर पड़े थे। कोई काम-काज तो था नहीं, इससे पड़े रहने के सिवा कोई चारा भी नहीं था।

अचानक मालिक की पुकार सुनकर सीतापति बाबू उठ बैठे। चप्पल पाँव में डालकर बाहर निकलने ही वाले थे कि माधवदत्त एकदम कोठरी के दरवाजे पर आकर हाजिर हो गये। सीतापति बाबू ने अचकचाकर पूछा—"मुझे बुलाया था, हुजूर ?"

माधवदत्त ने कहा—"तुम इसी समय मेरे घर से निकल जाओ ! निकलो, इसी समय !"

"जी…"

"न, मैं और कुछ भी नहीं सुनना चाहता। वृन्दावन शराब पिये या न पिये, इसमें तुम्हारा सिर क्यों दर्द करता है ? वह क्या तुम्हारे पैसे से पीता है ? तुम्हारा रुपया उड़ाता है ?"

"लेकिन हुजूर, इस बारे में तो मैंने उससे कुछ कहा नहीं !"

"नहीं कहा, तो बात मेरे कान तक कहाँ से आयी ? मेरा लड़का भाड़ में जाये, जहन्नुम में जाये, इसपर बोलने वाले तुम कौन हो ? निकल जाओ यहाँ से !"

"जी…"

शायद अदालत अली से धक्के लगव… …ंजाम ही कर रहे थे माधवदत्त। लेकिन उससे पहले ही … उसी हालत में चुपचाप घर से निकल गये। पाँव में च… धोती। वैसे साथ ले जाने को कुछ विशेष था भी नहीं। ए… था, लेकिन वह कुछ साल पहले मधुसूदन सुनार के … । फड़ेपुकुर की

स्त्री

रो रहा है…"

मैंने भी देखा, बेचारा कुत्ता इस बार फिर से पूंछ समेटकर तथा शरीर सिकोड़कर सोने की कोशिश रहा है। वह रास्ते पर का लावारिस कुत्ता था। लावारिस होने की वजह से ही निराश्रय, रास्ते की धूल पर खुले आसमान के नीचे सोने की कोशिश कर रहा है।

डॉक्टर साहब ने कहा—"उस समय के राजस्थान में जितनी भी प्रजा थी, स्वरूपसिंह की नजरों में सबों का अस्तित्व इस लावारिस कुत्ते से बढ़कर नहीं था। घर-द्वार, औरत, लड़के-लड़कियों के रहते भी मानो उनके पास कुछ भी न हो। मानो वे मनुष्य न हों। स्वरूपसिंह की नजरों में राजस्थान की प्रजा मानो जानवर ही हो। वह मरती है अथवा जिन्दा रहती है, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। उन दिनों के समाज का नियम ही यही था। सैकड़ों वर्ष पुरानी कहानी मैं आपको बता रहा हूँ। उस समय राणा का अर्थ था भगवान्। देवादिदेव एकलिंगेश्वरनाथ के बाद उनका ही स्थान था।

लेकिन एक कहावत है—हाकिम बदल सकता है पर हुक्काम नहीं बदलता। यह भी उसी तरह है। स्वरूपसिंह फिर भी देवादिदेव एकलिंगेश्वरनाथ से ऊपर हैं, लेकिन उनके भी ऊपर अगर कोई है तो वह मन्त्री जगमन्तसिंह ही है। कोतवाल यदि कोई अत्याचार बाजार मुहल्ले वालों पर करता है तो उसकी अर्जी की अधिकतम सीमा मन्त्री जगमन्तसिंह ही है। स्वरूपसिंह तक वह पहुँच ही नहीं सकती है। स्वरूपसिंह को यह पता भी न लगेगा कि किस मुहल्ले के किस सेठ पर अत्याचार हुआ है। पूरे राजस्थान का शासन जगमन्तसिंह ही चलाता है। लेकिन असल में स्वरूपसिंह के इशारे पर।

स्वरूपसिंह की हुक्म-तामीली में जगमन्तसिंह कभी पीछे नहीं रहता। स्वरूपसिंह के कान में जगमन्तसिंह जैसा सुनाता, स्वरूपसिंह वैसा ही सुनता है।

यदि जगमन्तसिंह कहे—"इस बार खेत में मक्के का फसल खूब हुआ है—किसानों को भरपूर नफा हुआ है—"

तो स्वरूपसिंह कहता—"तब खजाने की रकम बढ़ा दो—"

खजाने बढ़ने से ही स्वरूपसिंह को लाभ है। जगमन्तसिंह को भी इससे फायदा है।

असल में स्वरूपसिंह की अपेक्षा जगमन्तसिंह को ही अधिक लाभ है।

दिलदारपने में स्वरूपसिंह से बढ़कर और कोई नहीं है। जिस हद तक अत्याचारी, उसी हद तक दानी भी।

भाट तिलक चाँद मजे का गीत गाता। भाट के मुँह से अपने पिता, दादा और परदादा की प्रशंसा सुनकर स्वरूपसिंह बहुत खुश होता।

ऐसे ही एक बार उसने कहा—"जगमन्तसिंह, इसे पचास मोहरें दे दो..."

स्वरूपसिंह जब जो चीज देने के लिए कहता, उसे देना ही पड़ता। इसलिए स्वरूपसिंह के सामने उतना ही देना पड़ा। इनाम पाकर भाट तिलक चाँद गद्‌गद हो गया। बार-बार माथा झुकाकर उसने स्वरूपसिंह को कोर्निश किया।

लेकिन बाहर निकलते ही जगमन्तसिंह ने रोका।

"...सुनो भाट तिलक चाँद।"

तिलक चाँद खड़ा रहा। घूमकर देखा, पीछे मन्त्री जगमन्तसिंह खड़े हैं।

भाट तिलक चाँद को आश्चर्य हुआ।

कहाँ, भाट तिलक चाँद से तो कोई गलती नहीं हुई है? राणा दरबार में जिन नियम-कायदों को मानना पड़ता है उसने तो सभी का पालन किया है। और ये कायदे-कानून तो सिर्फ उदयपुर में ही नहीं हैं, जोधपुर, बीकानेर सभी जगह तो एक ही कानून है।

जगमन्तसिंह का चेहरा गम्भीर था।

देखते ही जरा संदेह हुआ। कहा—"नमस्ते मन्त्री जी।"

जगमन्तसिंह ने कहा—"स्वरूपसिंह को सीधा पाकर खूब अपना उल्लू सीधा किया, क्यों? लेकिन मेरा हिस्सा कहाँ गया?"

"...सरकार, आपका हिस्सा! इसका मतलब?"

जगमन्तसिंह ने कहा—"तुम्हें जो कुछ भी मिला उसमें से मेरा हिस्सा दिये बगैर ही जा रहे हो?"

भाट तिलक चाँद डर गया। इस तरह की बात तो और कहीं नहीं हुई।

जल्दी-जल्दी सभी मोहरें जेब से निकाला भाट तिलक चाँद ने। कुल मोहरें अपने हाथ में लेकर जगमन्तसिंह ने उनमें से गिनकर पाँच मोहर भाट तिलक चाँद को दिया और बाकी अपनी कमर में खोंसते हुए उसने कहा—"ला, मैंने अपना हिस्सा ले लिया। अब तुम यहाँ से रफूचक्कर हो जाओ···"

यह कोई नयी बात नहीं थी। उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह से जो लोग इनाम पा चुके हैं उन्हें यह सब मालूम है।

इसीलिए उस दिन बाजार मुहल्ला से निकलकर भ. महेश्वर प्रसाद को आश्चर्य नहीं हुआ। लेकिन सेठ झुमुटमल महाराणा की इजाजत लिये बिना ही नाच-गान करा रहा है यह उसे क्या पता था। अगर जानकारी रहती तो पहले से ही होशियार रहता।

रंगना ने पूछा—"गुरुजी, अब क्या होगा?"

सिर्फ रंगना ही नहीं, दल में तो और भी लड़कियाँ हैं। उन लोगों को भी साथ लेकर महेश्वर प्रसाद नाचने आया था।

सेठ झुमुटमल का घर गया, धन-दौलत गयी और ऊपर से कुछ लोग भी मारे गये। मुहल्ले के और सभी सेठ अपने में ही व्यस्त हैं। नटनियों के विषय में सोचने की उन्हें फुर्सत ही कहाँ है?

उसी रात महेश्वर प्रसाद किराये के ऊँटों पर बैठकर अपने दल-बल के साथ कैलाशपुरी लौट आया। इनाम या इज्जत कुछ भी तो नहीं मिली। इसके बदले परेशानी और नुकसान ही हाथ लगा।

बहुत दिनों तक महेश्वर प्रसाद उस ओर नहीं गया।

लेकिन न मालूम किस तरह रंगना की खबर स्वरूपसिंह के कानों तक पहुँची।

उसके पास खबर लाने वालों की कमी भी तो नहीं थी।

"···क्या नाम बताया? रंगना?"

"हाँ सरकार, सुन्दर नाचती है, अद्भुत गाती है। उसका नाच देखने किस मुल्क से आदमी नहीं आते। सिर्फ रंगना का नाच देखने के लिए ही

रुपये खर्च करते हैं।"

स्वरूपसिंह ने कहा था—"ठीक हैं, रंगना को यहाँ लाओ···"

जगमन्तसिंह के पास फरमाइश गयी।

महेश्वर प्रसाद को यह सब मालूम ही नहीं था। उस समय नटनियाँ गुरुजी के साथ मठ, मन्दिर और पहाड़ों मे घूमती फिर रही थीं। वे फिर उदयपुर नहीं जायेंगी। उस वार उन्हें वड़ी तकलीफ हुई थी। नटनियों का नाच यदि देखना ही है तो यहीं कैलाशपुरी आ जाओ। यहीं आकर हम लोगों का नाच देखो। मुजरा कराओ। हम लोग तुम्हें नाच दिखायेंगे, गीत भी सुनायेंगे। और यदि हमारा नाच तुम्हें पसन्द आया तो इनाम देना। खुशी से हम उसे सिर-आँखों लेंगे।

लेकिन उस दिन स्वरूपसिंह का हुक्मनामा महेश्वर प्रसाद के पास पहुँचा।

हुक्म तो स्वरूपसिंह का है, पर भेजा है जगमन्तसिंह ने। और उसे लेकर हाजिर हुआ है दरवार का प्यादा।

महेश्वर प्रसाद पढ़ नहीं सकता है।

पूछ लिया—"मुझे क्या करना होगा?"

प्यादा वोला—"महाराणा स्वरूपसिंह ने रंगना का नाम सुना है, उसके नाच-गान की सुख्याति भी सुनी है, इसीलिए महाराणा रंगना का नाच देखना चाहते हैं।"

महेश्वर प्रसाद ने वताया—"उदयपुर वाजार मुहल्ला के सेठ झुमुट-मल के घर मैं नाचने गया था। वहाँ हमें वड़ी तकलीफ हुई थी। पता नहीं, इस वार किस तकलीफ का मुकावला करना पड़ेगा।"

प्यादा ने कहा—"इस वार खुद स्वरूपसिंह ने वुलाया है, फिर तकलीफ कैसी? अगर स्वरूपसिंह खुश हो सके तो इनाम भी देंगे, इज्जत भी करेंगे।"

महेश्वर प्रसाद ने पूछ लिया—"क्या इज्जत करेगा?"

"···रंगना जो चाहेगी वही, जो इनाम माँगेगी वही पायेगी।"

"···और यदि खुश न कर सकी तो?"

प्यादा वोला—"क्यों खुश नहीं कर सकेगी, गुरु? जव राजस्थान के

सब लोग खुश होते हैं तो वे क्यों नहीं खुश होंगे ? महाराणा स्वरूपसिंह तो जौहरी आदमी हैं। उस बार भाट तिलक चाँद दरबार में गाने आया था, महाराणा उसका गीत सुनकर खुश हो गये और उसे इनाम में पचास मोहरें दीं।"

"···पचास मोहर तो दिया, लेकिन जगमन्तसिंह ने उसमें से कितना हिस्सा लिया ?"

प्यादा ने कहा—"आखिर मन्त्री जी क्यों लेंगे ? महाराणा खुद अपने हाथ से रंगना को इनाम देंगे।"

महेश्वर प्रसाद के दरवाजे पर बैठकर यह सब बातचीत हो रही थी। अचानक रंगना आयी।

बोली - "गुरुजी, कह दो मैं जाऊँगी।"

महेश्वर प्रसाद को मानो काठ मार गया हो।

बोला—"सचमुच ? कह दूँ ? तुम जाओगी ? उस बार बाजार मुहल्ला जाकर जो इतनी तकलीफ हुई ? तुमने तो कहा था, तुम और उदयपुर नहीं जाओगी।"

रंगना ने जवाब दिया— 'उस बार तो सेठ के घर गई थी गुरुजी। इस बार तो राणा का दरबार है।"

प्यादा हुक्म सुनाकर चला गया। उसका काम पूरा हो चुका था। प्यादा के जाते ही महेश्वर प्रसाद ने लड़की की ओर देखा।

पूछ लिया—"क्या, सच में तुम जाओगी ?"

रंगना ने कहा—"हाँ गुरुजी, मैं सचमुच जाऊँगी।"

"···लेकिन यदि कुछ गड़बड़ी हुई तो ?"

रंगना बोली—"क्या गड़बड़ी हो सकती है ? जाने के पहले मैं सेजा कर जाऊँगी। मेरे सेजा का भी इन्तजाम तुम कर डालो ··"

बेटी की बात सुनकर महेश्वरप्रसाद को आश्चर्य लगा। कितने दिनों से महेश्वर प्रसाद बेटी को सेजा के लिए कहता आ रहा है।

मैं अब तक सुन रहा था।

पूछ लिया—"सेजा किसे कहते हैं, डॉक्टर साहब ?"

डॉक्टर साहब ने कहा—"वे लोग शादी को 'सेजा' कहते हैं। मेरे खयाल से 'शय्या' शब्द से ही 'सेजा' शब्द बना है जिसका मतलब होता है विछौना। लेकिन उनका विवाह हम लोगों की तरह नहीं होता। उसका तरीका ही दूसरा है।

मुझे यह अनूठा ही लगा।

पूछ लिया—"किस तरह ?"

"…वे लोग तलवार से शादी करते है विमल बाबू। इसका मतलब तलवार के साथ ही शादी होती है…"

"…तलवार ? आप कहना क्या चाहते हैं ?"

डॉक्टर साहब ने कहा—हाँ, ठीक ही कह रहा हूँ। शादी के वक्त दूल्हा शादी करने के लिए नहीं आता। आती है तलवार। और शादी के सभी रस्म-रिवाज उसी तलवार के साथ पूरे किये जाते हैं। ढोल, ढाक और नगाड़े बजाये जाते हैं। लड्डू, पेड़ा, पूड़ी, तरकारी, गुलाब जामुन आदि खिलाये जाते हैं। बड़े-बड़े घरों में चहल-पहल अधिक रहती है, और गरीबों के घर कुछ कम। लेकिन शादी हो अथवा सेजा राणा के दरबार से मंजूरी लेनी ही होगी। अगर मंजूरी नहीं मिली तो उत्सव भी नहीं मना पायेंगे।"

चहल-पहल, भोज-भात की अभी जरूरत ही क्या है, वह पीछे भी तो चल सकता है। पहले रंगना का सेजा तो हो जाय।

महेश्वर प्रसाद ने कह दिया—"तब वही होगा।"

और एक दिन रंगना के पास तलवार आ ही गयी।

दूल्हे का घर बहुत दूर भी नहीं था। पड़ोस के मुहल्ले में ही दुखहरन रहता है। उसी का बेटा दूल्हा है। उसी दूल्हे ने एक दिन तलवार भिजवा दिया। साथ में लोग-बाग, घोड़ा, ऊँट, जिसे भी आना था सभी आया।

जिसे पता नहीं था, उन्होंने पूछा—"तलवार किसने भिजवाया है जी ?"

जिसे मालूम था वह बोला—"ठाकुर मुहल्ले का चमन…"

"…चमन ? कौन चमन ? किसका बेटा ?"

"…दुखहरन का बेटा, चमन।"

चमन दुखहरन का बेटा तो है पर करता-धरता कुछ नहीं है वह। काम करने के बजाय बाँसुरी बजाने में ही उसका मन अधिक लगता है। जब सभी नाचते हैं, वह पों-पों कर बाँसुरी बजाता रहता है।

रंगना कहती—"तुममें कुछ नहीं हो सकता। बाँसुरी बजाना तुम छोड़ दो···"

चमन जवाब में कहता—"भले मैं बाँसुरी नहीं बजा पाऊँ, तुम नाच तो सकोगी! तुम नाचोगी और मैं तारीफ करूँगा।"

रंगना कहती—"तुम्हारे जैसे निठल्ले की तारीफ मुझे नहीं चाहिए। बड़े-बड़े सेठों की तारीफ से ही मैं गद्गद हो जाऊँगी···"

इस प्रकार चमन समझ चुका था कि निठल्लों की तारीफ का मूल्य रंगना के लिए नहीं के बराबर है। लेकिन वह करेगा ही क्या? किसी भी काम में तो उसका मन नहीं लगता। अत्यधिक कोशिश करने के बावजूद भी वह बाँसुरी नहीं बजा पायेगा, यह वह खूब जानता था।

क्या सभी सब चीज कर पाते हैं?

और सबों को सब काम करना ही पड़ेगा, जानना ही पड़ेगा यह कहाँ की बात है? यह किस शास्त्र में लिखा है? कुछ नहीं कर पाना भी तो एक काम है।

इसीलिए जब नटनियाँ नाचती-गाती या महेश्वर प्रसाद कहीं किसी मुजरे पर जाता तो चमन केवल साथ में रहना चाहता।

रंगना कहती—"गुरुजी, उसे मत लेना। वह किसी भी काम का नहीं है, वह सिर्फ मेरी ओर एकटक देखता रहता है। मैं ताल ही भूल जाती हूँ···"

रंगना किसी भी हालत में उसे साथ नहीं रखेगी। महेश्वर प्रसाद बार-बार कहता—"रहने दे बेटी, साथ रहने से नुकसान ही क्या है?"

रंगना कहती—"कह तो दिया, मुंह खोलकर केवल मेरी ही ओर देखता रहता है वह···"

"मुंह की ओर देखने से तुम्हारा नुकसान ही क्या होता है?"

"···वाह, मैं ताल जो भूल जाती हूँ।"

महेश्वर प्रसाद ने कहा—"ठीक है, वह तुम्हारे मुँह की ओर नहीं

देखेगा। हो गया न ?"

उसके वाद चमन की ओर मुड़कर महेश्वर प्रसाद ने कहा—"खवरदार, किसी के मुँह की ओर आँख उठाकर मत देखना।"

चमन पूछ लेता—"तव किस ओर देखूंगा ?"

रंगना कहती—"क्यों, किसी ओर तुम्हें देखने की जरूरत नहीं। आँख वन्द किये रहने से ही काम चलेगा।"

महेश्वर प्रसाद कहता—"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं। तुम केवल मेरे मुंह की ओर देखते रहना, मैं कोई धुन नहीं भूलूंगा…"

लेकिन कहीं ऐसा हुआ है ? क्या यह सम्भव है ? अचानक एक-आध वार वह रंगना की ओर देख ही लेता। और उसी समय रंगना उसे धमका देती।

रंगना कहती—"गुरुजी, वह देखिए। चमन फिर मेरी ओर देख रहा है…"

और वही चमन एक दिन एक कारगुजारी कर वैठा। वह दिल दहला देने वाली घटना थी। पूरे कैलाशपुरी में खलवली मच गयी।

एक दिन दुखहरण दौड़ता हुआ महेश्वर प्रसाद के नजदीक हाजिर हुआ।

"…क्या कहूँ, मेरे लड़के ने अपना सत्यानाश कर लिया।"

"…कैसा सत्यानाश, दुखहरण ? क्या हुआ ?"

"…चमन ने अपनी दोनों आँखें फोड़ ली हैं। छर-छर दोनों आँखों से खून निकल रहा है।"

"…डॉक्टर साहव को दिखाया है ?"

डॉक्टर का मतलव उस समय राजस्थान के हकीम।

जल्दी-जल्दी दौड़ता हुआ महेश्वर प्रसाद ठाकुर-मुहल्ला पहुँचा। रंगना भी दौड़ पड़ी। उस समय मुहल्ले के वच्चे से वूढ़े तक सभी दुखहरन के घर में मौजूद थे। चमन की आँखों में किसी पेड़ का पत्ता पीसकर लगा देने के वाद उस समय तक डॉक्टर चला भी गया था। देखा, चमन पीड़ा से छटपटा रहा है।

उसके वाद दोनों आँखें फूलकर कुप्पा हो गयीं। हमेशा-हमेशा के लिए

चमन की दोनों आँखें नष्ट हो गयीं।

लोग पूछते—"क्यों रे, दोनों आँखें कैसे फूट गयी हैं ?"

चमन कहता—"खुद अपने से फोड लिया…"

"…क्यों, तुम्हारी आँख से क्या गलती हुई ?"

चमन कहता—"आँख रहने से ही वह केवल रंगना को देखना चाहती…"

महेश्वर प्रसाद को उस समय खयाल पड़ा। उसे ऐसा लगा मानो रंगना का 'सेजा' करना होगा। अब तक सिर्फ ढोल बजाकर और नटनियों को नचाकर ही उसका दिन गुजरा है। बेटी की ओर ध्यान देने का मौका ही उसे कहाँ मिला।

भाग-दौड़कर महेश्वर प्रसाद सेजा का इन्तजाम करने लगा। इस गाँव से उस गाँव, वह खुद खोजने लगा। रंगना को कुछ भी पता नही चला। कहाँ से कौन तलवार भिजवायेगा, दूल्हा कैसा होगा, इसी सबका लेखा-जोखा वह छिप-छिपकर लेने लगी। रंगना को तलवार भिजवाने लायक लड़के का अभाव नही है। सभी रंगना से सेजा करना चाहते हैं।

अचानक एक लड़का मिला।

महेश्वर प्रसाद बहुत खुश हुआ।

लड़की से कहते ही वह तुनक गयी—"मेरे सेजा का इन्तजाम करने तुम वहाँ क्यो गये गुरुजी ?"

"…क्यों, आखिर मैंने अन्याय ही क्या किया ?"

रंगना ने कहा—"एकदम नही, मैं वहाँ सेजा नही करूँगी…"

"…क्यों नही करेगी ? कुछ बतायेगी भी या…"

रंगना ने कहा—"नही करूँगी, मेरी मर्जी…"

"—तब फिर किसके साथ सेजा करेगी ?"

रंगना बोली—"चमन के साथ…"

"…चमन ? वह तो अन्धा है। दोनो आँखों से अन्धा, उसके साथ सेजा करेगी ?"

"…हाँ।"

"…खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर देख ले बेटी। वह अन्धा

आँखों से देख भी नहीं सकता है। तुम्हें भी नहीं देख सकेगा। तुम्हारा नाच भी नहीं देख पायगा। आखिरकार उसे तुम्हें ही सँभालना पड़ेगा। जीवन-भर सँभालना पड़ेगा। क्या ऐसा कर सकोगी? खूब अच्छी तरह सोच लो…"

रंगना अटल रही।

वह बोली—"खूब कर सकूंगी गुरुजी। जो मेरे खातिर अपनी दोनों आँखें फोड़ सकता है, मैं खुद उसकी आँख बन जाऊँगी। मेरी ये दोनों आँखें जब तक मौजूद हैं, तब तक चमन को आँख की कमी नहीं अखरेगी"

महेश्वर प्रसाद इसके आगे कुछ नहीं कह सका। जब उसकी लड़की चमन से सेजा के लिए तुल गयी तो टस से मस भी नहीं होगी।

महेश्वर प्रसाद दुखहरन के घर पहुँचा।

महेश्वर प्रसाद के दल में दुखहरन भी ढोल बजाता है। दुखहरन को भी महेश्वर प्रसाद ने अपने से तालीम देकर तैयार किया है। दुखहरन के बेटे चमन को भी पैदा होते देखा है महेश्वर प्रसाद ने।

महेश्वर प्रसाद की बात सुनते ही उसका दुःख दूर हो गया। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

बोला—"गुरुजी, सब एकलिंगनाथ की मर्जी है।"

और चमन? चमन सुनते ही बोल उठा—"गुरुजी, रंगना से कहना, उसकी ओर देखने से अब वह नाराज न हो जाय। इस बार वह अपनी धुन न भूले।"

जिस तड़क-भड़क की जरूरत थी, वह सब हुई।

तलवार भिजवाया चमन ने और उसके साथ चम्पा-फूल की माला और खाने के लिए मिठाई।

रंगना ने वही फूल-माला तलवार के गले में पहनाया। उसके बाद फूल-माला पहनाये गये उस तलवार को बिछावन पर सुलाकर रखा गया। नटनियों का नाच भी हुआ और गीत भी। रंगना नाचती रही और दुखहरन ढोल बजाता रहा। 'सेजा' उत्सव में नटनी मुहल्ले के प्रायः सभी आये। न आने वालों में केवल चमन था। कारण उसे वहाँ जाना नहीं चाहिए। वह बाद में आयेगा।

जिस दिन चमन आयेगा, उस दिन इससे भी बढ़कर उत्सव मनाया जायेगा। इससे भी अधिक नाच-गान होगा, और भी लड्डू, मिठाई और गुलाबजामुन सब खायेंगे। इसके पहले रंगना महाराणा स्वरूपसिंह के दरबार से इनाम ले आयें, इज्जत पा ले।

डॉक्टर साहब कुछ देर चुप रहे।

फिर पूछा—"रात कितनी गुजर गयी? क्या आपको नींद आ रही है?"

मैंने कह दिया—"उसके बाद आगे क्या हुआ, कहिए।"

किसनगढ़ की सड़क उस समय सुनसान थी। जो कुत्ता अब तक सिकुड़कर सोया हुआ था, वह फिर कॅं-कॅं कर उठा। स्टेशन के प्लेटफार्म पर एक ट्रेन शंटिंग कर रही थी। रात्रि के घने अन्धकार को फाड़कर उसकी सीटी दूर तक चली गयी।

डॉक्टर साहब ने कहा—"नींद आने पर मुझे बताइयेगा'' "

मैंने जवाब दिया—"वह क्या? आप तो देखते है, मैं उठ तक नहीं रहा हूँ। साँस रोककर आपकी कहानी सुन रहा हूँ"

डॉक्टर साहब ने फिर से कहना शुरू किया—राजे-रजवाड़ों की बात है, उनका कायदा-कानून ही अलग होता है। खास कर वह तो बहुत पहले की घटना है। आप यदि कभी इसपर कहानी लिखें तो मैं हर तरह से आपकी मदद कर सकूँगा। छपी किताबों में आप यह सब नहीं पायेंगे। यहाँ इसी किसनगढ़ के जिला पुस्तकालय में भोजपत्र पर लिखी बहुत-सी पुरानी पुस्तकें हैं। मैं वह सब आपको दिखा सकता हूँ।"

मैंने कह दिया—"वह सब पीछे होता रहेगा, यदि कभी उपन्यास लिखने बैठा तो देख लूँगा। अभी आप बताइए उसके बाद क्या हुआ?"

डॉक्टर साहब बोले—"उसके बाद महेश्वर प्रसाद अपने दल-बल के साथ उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह के दरबार में हाजिर हुए। जगतसिंह की बात तो पहले ही कह चुका हूँ। जिस प्रकार [illegible] चाँद की आवभगत हुई थी उसी प्रकार महेश्वर प्रसाद के [illegible] आवभगत की गयी। जो लोग जूता पहनकर आये थे उन्हें [illegible]

ही जूता खोल लेने के लिए कहा गया। खाली पैर ऊपर चढ़ना पड़ेगा।

सबों ने वैसा ही किया। जूते खोलकर ऊपर चढ़े।

असल में स्वरूपसिंह केवल महाराणा ही नहीं, देवता भी हैं। ईश्वर की तरह। एकलिंगनाथ। इसलिए जब उसके निकट जा रहे हैं तो निराभरण ही जाना होगा। देव-दर्शन के लिए जो उचित है, वही।

लेकिन ऊपर पहुंचकर भी देव-दर्शन नहीं हो सका।

महाराणा का हुक्म था। वे उस दिन दरबार मे नाच नहीं देखेंगे। देखेंगे वृन्दावन पैलेस में।

वृन्दावन पैलेस उदयसागर के एकदम बीच में था। आलीशान प्रासाद। लेकिन स्वरूपसिंह के प्रासाद से प्रायः आध मील का रास्ता नाव पर चढ़कर पार होना पड़ता है। नाव के सिवा और दूसरा चारा ही नहीं था। वृन्दावन पैलेस के चारों ओर अगाध-अथाह पानी है। चारों और पानी ही पानी। उसी पानी में महाराणा स्वरूपसिंह कभी-कभी जल-विहार के लिए निकलते हैं। साथ में मित्र और सभासद भी होते हैं। जो लोग स्वरूपसिंह से कुछ पाने की आशा रखते हैं वे जल-विहार में साथ रहने का मौका ढूंढ़ते रहते हैं। साथ रहते हुए हँसी-मजाक के बीच यदि वे कुछ पा सके, इसी की आस लगाये रहते हैं वे लोग।

उसके बाद जब उस दिन का जल-विहार खत्म होता है तब दूसरे दिन मौका पाने की ताक लगाये रहते हैं।

और वह पैलेस भी तो देखने लायक है! आप तो हो आये हैं। सुनने में आया है, उस पैलेस को होटल में बदल रहे हैं। अमेरिका से जो टूरिस्ट आयेंगे वे ही प्रतिदिन तीन सौ रुपये देकर वहाँ ठहरेंगे।

मैंने कहा—"हाँ, अभी राज मिस्त्री काम कर रहा है। हमें सब कमरा भी नहीं देखने दिया।"

डॉक्टर साहब ने कहा—"मेरा सब देखा हुआ है। इसके अलावा यदि आप नहीं भी देख पाये तो आपका नुकसान ही क्या हुआ? उसके सम्बन्ध में मैं आपको बहुत सारी किताबें दे सकूँगा। उसमें ढेरों चित्र हैं। राणा कितने शौकीन थे, कितनी धन-दौलत थी, उनके यहाँ कैसी चहल-पहल, तड़क-भड़क थी, यह सब आप जान सकेंगे। स्वरूपसिंह के समय से वह

बढ़ता ही गया था।"

छोड़िए इन सब बातों को।

उसी वृन्दावन पैलेस के चबूतरे पर उस दिन नाच की मजलिस लगी। बड़े-बड़े गुणियों को निमंत्रण दिया गया था।

महाराणा की इजाजत पाते ही नाच शुरू हुआ। पहले एक-एक कर दूसरी नटनियाँ नाचती रहीं।

महेश्वर प्रसाद ने एक के बाद दूसरे नाच का खेल दिखाया। दुखहरन उसके साथ ढोल बजाने लगा।

दल के सभी आये हैं, केवल एक चमन ही नहीं आया है। उसने रंगना से सेजा किया है। तलवार भिजवाया है। इसीलिए अभी वह आ नहीं सकता था। फिर दूसरी बार वह दल के साथ आयेगा।

लेकिन जब रंगना नाचने के लिए खड़ी हुई, उस समय कैलाशपुरी के ठाकुर मुहल्ले में चमन बैठा हुआ अपनी फूटी आँखों से सामने की ओर देख रहा है।

वह कह रहा है—"डरने की जरूरत नहीं रंगना, तुम नाचो।"

रंगना कहती है—"लेकिन तुम जो मेरी ओर देख रहे हो—यदि मैं ताल-धुन भूल जाऊँ···"

चमन बोला—"मैं तो देख ही नहीं पाता हूँ रंगना···"

रंगना कहती है—"अच्छा यह लो, तुम मेरी दोनों आँखें ले लो···"

चमन कहता है—"अगर तुम मुझे अपनी आँखें दे दोगी तो तुम देखोगी किस तरह?"

रंगना ने जवाब दिया—"मैं तो दोनों पैरों से नाचूँगी, मेरे दोनों पैर ही काफी हैं···"

अचानक रंगना को ऐसा लगा मानो किसी चीज की आवाज हो रही हो। उसने चारों ओर घूमकर देखा। कहाँ, चमन तो उसकी ओर नहीं देख रहा है! कहाँ गया चमन? तब फिर इतनी देर तक उसके साथ बातचीत कौन कर रहा था?

चारों ओर लोग गोलाकार बनाकर बैठे हुए हैं। पहले महाराणा स्वरूपसिंह। उनकी बगल में जगमन्तसिंह बैठा है। जगमन्तसिंह की

बगल में और भी बड़े-बड़े सेठजी लोग है ! रंगना तो किसी को नहीं पहचानती है। सभी उसकी ओर देख रहे हैं।

"···लेकिन तुम कहाँ हो चमन ? तुम तो मेरी ओर नहीं देख रहे हो ?"

न जाने कहाँ से चमन बोल उठा—"मैं किस तरह देखूं, क्या मेरी आँखें हैं ?"

"···हैं, हैं, तुम्हारी आँखें हैं चमन !"

रंगना चीत्कार कर उठी—"मैं जब तक जिन्दा हूँ, तब तक तुम्हारी आँखें मौजूद हैं चमन···।"

"···लेकिन उसके बाद ? जब तुम चली जाओगी ?"

"···मैं और कहाँ चली जाऊँगी ? तुम्हें छोड़कर जाने से मुझे शान्ति कहाँ मिलेगी ?"

"···मुझे इतना अधिक तुम प्यार करती हो रंगना ?"

"···लेकिन यदि मैं तुम्हारी तरह प्यार कर पाती ! तुम्हारे लिए यदि मैं कुछ भी दे पाती ! तुम्हें क्या चाहिए, बोलो ?"

"···मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मैंने सब पा लिया है।"

"···फिर भी कुछ तो माँगो। बिना माँगे कुछ लेना जो नहीं चाहिए···"

"···तुमने अपना सब कुछ मुझे दिया है रंगना। मैंने तो तुम्हें ही पा लिया। पाने के लिए कुछ बाकी नहीं रहा मेरा !"

"···तब ठीक है। इस बार तुम मेरा सम्मान लो। जितना सम्मान, जितनी खातिर, जितनी प्रीति, जितनी तारीफ स्वरूपसिंह मुझे दे रहा है, ये सभी तुम्हारे हैं !"

"···रंगना, तुम कितनी अच्छी हो।"

रंगना उस समय बेहोश होकर नाच रही है। उसके घाघरे में कढ़ा फूल-पत्ती भी मानो नाच रहा है ! स्वरूपसिंह की आँखों की पुतलियाँ भी नहीं हिलतीं। जगमन्तसिंह भी मटकी तक नहीं मार रहा है। सभी सभासदों की आँखें भी एकटक उसी ओर लगी हैं। उदयसागर का पानी भी मानो तरंगहीन हो। तरंगें मानो अपना अस्तित्व भूलकर रंगना के

नाच की ओर देख रही हैं।

"....ये सभी तुम्हारे हैं चमन। यह खातिर, यह तारीफ, ये सभी मैं तुम्हें दे रही हूँ।"

"....लेकिन तुम्हारा सम्मान तो मेरा ही सम्मान है, रंगना। हम तुम क्या अलग हैं?"

रंगना ने कहा—"आओ, तुम और हम मिलकर आज एक रूप हो जायें..."

रंगना और भी तेज नाचने लगी। तारीफ, वाह-वाही और तालियों से महफिल गूँज उठी। पूरा वृन्दावन पैलेस रंगना के पैरों की चोट से उस समय दहल गया। खून खौलने लगा, गहने टूट-टूटकर बिखरने लगे।

उदयसागर के स्थिर और निश्चल जल के उस पार के किले में भी कई सौ आँखें इस ओर देख रही हैं।

नाच तो हम लोगों ने बहुत देखा है महाराणा। लेकिन ढोलक की ताल के चढ़ाव-उतार पर नाचकर मन को विकल कर देने वाला ऐसा नाच देखकर आज तक मन मोहित नहीं हो सका था।

एक के बाद दूसरा नाच हो रहा है। मानो नाच ही तरंग और नाच ही माला हो।

माला की तरह इस नाच के छन्द का फूल मानो पूरे शरीर में जुड़ा हुआ है। जो भी इस नाच को देखता है, वह अपना नाम भूल जाता है, भूल जाता है अपना कर्तव्य। जीवन-मृत्यु, हँसी-खुशी, रोना-हँसना तथा घर-संसार सबको भूलकर उससे छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करता है।

"....तुम देखते रहो चमन। जितना तुम देखोगे, उतनी ही मुझे ताकत मिलेगी।"

"....मैं तो देख ही रहा हूँ रंगना।"

"....क्या तुम देख पाते हो?"

"....अरी वाह, तुमने ही तो मुझे आँखें दी, मैं देख क्यों नहीं सकूँगा? तुम कहती क्या हो?"

"....जब तक मैं नाचूँ, तब तक तुम देखते रहना। अगर तुम देखोगे नहीं तो मैं नाच ही किसे दिखाऊँगी?"

नाच के अन्त में इनाम आया।

महाराणा स्वरूपसिंह के पूर्वजों का संचित धन। तिल-तिल कर जमी हुई दौलत, और यह उसी का एक टुकड़ा।

महाराणा ने अपने हाथों रंगना के गले में पहनाया।

"···पहनो चमन, पहनो। यह तो तुम्हारा ही है।"

"···यह मुक्ता हार क्या मुझे अच्छा लगेगा रंगना? इससे बेहतर हो तुम्हीं पहनो।

रंगना को हँसी आ गयी—"क्या हम दोनों एक-दूसरे से अलग हैं? तुम भी क्या हो।"

महेश्वर प्रसाद ने पूछ लिया—"महाराणा को खुश करने के लिए रंगना और नाच सकती है···"

जगमन्तसिंह ने कहा—"बहुत परेशानी होगी, अब रहने दो···"

महेश्वर प्रसाद ने अर्ज किया—"नहीं सरकार, रंगना तो आपकी गुलाम है, परेशान नहीं होगी। सरकार का यदि हुक्म हो तो रंगना और भी नाच सकती है···"

पास ही बैठे एक सेठजी अब तक नाच देख रहे थे। सेठजी ने कहा—"रस्सी पर भी नटनी नाच सकती है···"

"···रस्सी?"

"···हाँ, रस्सी पर चलते हुए नाचेगी। इस पार से उस पर तक।"

"···तो वैसा ही नाचो। वही नाच हो···"

चमन के चेहरे पर मानो आशंका के बादल घिर आये।

बोला—"नहीं-नहीं, तुम मत नाचो रंगना, मत नाचो···"

रंगना मुस्करायी।

महेश्वर प्रसाद ने पूछ लिया—"हँसती क्यों हो, बेटी?"

रंगना बोली—"नहीं गुरुजी, वैसे ही···"

"···शायद तुम्हें डर लग रहा है?"

रंगना बोली—"डरूँगी क्यों गुरुजी? तुम तो हो?"

"···हाँ, मैं तो हूँ ही, तुम्हें डर किस बात का?"

सब व्यवस्था कर ली गयी। पहले अधिक दूर नहीं, इस छज्जे से उस

मे आया है।" माझी-मल्लाह क्या पैसा दे पाते है ?"

ईश्वरीप्रसाद बोला, "मैं आपको वहाँ ले जा सकता हूँ। डॉक्टर माँ ने बड़ा भारी अस्पताल बना दिया है—एक पैसा नही लेती हुजूर !"

मैंने पूछा, "नाम क्या है ?"

ईश्वरीप्रसाद बोला, "वनलता मित्र, लोग डॉक्टर माँ पुकारते हैं—"

वनलता मित्र ! बहुत दिन, सालों पहले मेडिकल कॉलेज की एक घटना का सहसा ध्यान आया। उसका नाम भी तो वनलता राय था। यह नाम अक्सर सबका तो होता नही।

मैंने पूछा, "देखने मे कैसी है, जरा बताओ।"

मैंने जिस वनलता को देखा था, वह तब तुम्हारी तरह छब्बीस वर्ष की रही होगी। वह भी क्या आज की बात है ? और तब मेरी भी क्या उम्र थी। हर रोज शाम को मेडिकल कालेज जाता। टूकू मौसी टॉसिलस का ऑपरेशन कराके अस्पताल मे सोयी रहती। मैं घर से टिफिन कैरियर लेकर खाना दे आता था। वही सर्वप्रथम वनलता को देखा था। नर्स की पोशाक पहने, हाथ में थर्मामीटर, इस कमरे मे उस कमरे में घूमती-फिरती। कैसा भोला चेहरा। छब्बीस की उम्र होने मे क्या होता है, मौसी कहती—बड़े यत्न से रोगियो को···

ईश्वरीप्रसाद कहने लगा, "वहाँ के माझी-मल्लाहो को पारा रोग बहुत होता है न—उसी पारा रोग का अस्पताल डॉक्टर माँ ने बनवा दिया है। एक पैसा भी खर्च नही होता, देखभाल भी अच्छी होती है, डॉक्टर माँ बड़े यत्नपूर्वक रोगियो को···"

याद है—जब सब जगह घूम चुका—रुक्मिनाथ मंदिर, द्वारिकाधीश, ओखावन्दर, और कुछ देखने को बाकी नही रहा, तब बैलगाडी किराये पर लेकर एक दिन डॉक्टर माँ का अस्पताल देखने गया था। ओखावन्दर मे पैदल रास्ते पर तैंतीस मील अदर। रास्ता खराब। मोटर जा नही सकती। बैलगाड़ी मे हिलते-हिलते जाना, मैं और पडा ईश्वरीप्रसाद। ईश्वरीप्रसाद सारा रास्ता बात करता रहा।

वैसे वनलता देवी को लेकर कहानी नही बनती। वनलता देवी के

जीवन का आरम्भ भी वही था और इति भी वही। मेरे मन में यही आ रहा था, सोच रहा था, वनलता देवी के जीवन के प्रश्न की तरह उत्तर भी वैसा ही सरल है। सीधी समतल भूमि के समान सरल। यदि चढ़ना हो तो विलकुल शुरू से···और कुछ नहीं। प्रश्न जैसा भी हो, जिसका उत्तर कठिन नहीं, उसे लेकर कहानी लिखना तो विडंवना है।

उस दिन यथारीति ठीक चार बजे अस्पताल पहुँचा। वही चारों ओर किनारे-किनारे रोगियों के पलंग, कातर दृष्टि। हठात् कमरे में घुसते ही टूकू मौसी ने कहा, "मालूम है! आज यहाँ एक घटना हो गयी?"

जीवन की तीन वड़ी घटनाओं के वीच दो तो नियमित रूप से अस्पताल में घटा करती हैं। जन्म और मृत्यु चिर-अचिरात! उसे लेकर कोई परेशान नहीं होता। उसे घटना के रूप में भी कोई नहीं सोचता।

मैंने कहा, "कैसी घटना?"

टूकू मौसी वोली, "हमारे यहाँ की एक नर्स ने एक डॉक्टर को जूते से मारा!"

"कौन-सी नर्स ने?"

"वही तो। वही···"

वनलता देवी को उस दिन देखा था। सिर पर स्कार्फ लिपटा हुआ। हाथ में एक फीवर चार्ट। ऐसी लड़की किसी पुरुष के जूता मार सकती है, देखकर ऐसा लगा नहीं; लगा, मानो सव छिप-छिपकर उसे देखते हैं।

"और वह डॉक्टर?"

डॉक्टर सुधामय को मैंने नहीं देखा। किंतु अस्पताल के एक कोने से दूसरे तक, सव जगह, केवल वही एक वात। गुपचुप, कानाफूसी, मानो वात का एक विषय मिल गया हो।

टूकू मौसी और एक मास उस अस्पताल में थी। वाद में सव सुना था। जानने को शेष कुछ न था। डॉक्टर, हाउस सर्जन, मेट्रन, सुपरिंडेंटेंट सभी—

सुधामय ने उस दिन वनलता देवी से यही कहा था। कहा था, "मैं अव किसी को मुँह दिखाने योग्य नहीं रहा—आपने मेरी वड़ी क्षति की है।"

वनलता ने कहा था, "आपका क्या खयाल है ? मुझे ही क्या मुंह दिखाने की जगह रह गयी है ?"

सुधामय ने कहा था, "आप नारी हैं, घर से बाहर न निकलें तो भी चल जायेगा, किन्तु मेरा ?"

वनलता तब छकू खानसामा लेन में पाँच कमरों वाले घर का एक कमरा लेकर रहती थी। वहीं पकाना-खाना समाप्त कर, ताला लगाकर ड्यूटी पर जाती और छोटा अटैची-केस लेकर लौटती। अस्पताल में किसी को उसका यह ठिकाना मालूम न था। वनलता किसी भी दिन बात करती-करती किसी को लेकर इस मकान तक नहीं आयी। किन्तु मकान का पता-ठिकाना सुधामय ने कैसे लगा लिया कौन जाने !

खट्-खट् की आवाज सुन, द्वार खोलते ही सुधामय को देखकर वन-लता कैसी अवाक् रह गयी थी। कुछ क्षण उसके मुख से मानो बात तक नहीं निकली थी।

सवेरे जिससे झगड़ा हुआ, दो दिन बाद उसी से वह कैसे इतनी घनिष्ठता से बात कर सकी, जो लोकचरित्र के अभिज्ञ हैं, वे देखकर अवाक् नहीं होंगे।

आपस में क्षमा-याचना, देना-पाना जब समाप्त हो गया, तब सुधामय ही पहले बोला था, "फिर, अब मैं चलूँ।"

कहकर जा ही रहा था कि वनलता ने कहा, "मेरा एक काम कर सकेंगे ?"

सुधामय घूमकर खड़ा हो गया—मानो अवाक्-सा बोला, "काम ? क्या काम, कहिए।"

वनलता ने कहा, "मेरी इस मास की बीस दिन की तनख्वाह है। वह ला सकेंगे ?"

"क्यों, आप स्वय भी तो ला सकती हैं !"

वनलता बोली, "मैंने नौकरी छोड़ दी है।"

फिर जरा रुककर बोली, "जो घटना हो गयी, उसके बाद यहाँ मुझसे नौकरी न हो पाती।"

सुधामय का आश्चर्य तब तक कम नहीं हुआ था। होश आने पर

बोला, "किंतु मैंने भी तो छोड़ दी है। अब कॉलेज तो जाता ही नहीं हूँ।"

अब की बार विस्मित होने की बारी बनलता की थी; किन्तु जरा रुककर फिर बोली, "आपको क्या चिन्ता, आपने डॉक्टरी पास कर ली है, कहीं और नौकरी करने जा सकते हैं—"

सुधामय बोला, "इसीलिए तो क्षमा माँगने आया हूँ—"

बनलता बोली थी, "नहीं, आपको क्षमा माँगने की जरूरत नहीं थी, अपराध मेरा भी तो कम न था! सवेरे से ही मेरा मिजाज ठीक न था। ऊपर से दो मास का घर का किराया देना था। आप मेरी ठीक-ठीक स्थिति समझ नहीं पायेंगे—"

सुधामय जरा बैठ गया। बोला, "आप भी मेरी स्थिति का ठीक अनुमान नहीं लगा सकेंगी; उस घटना के बाद से मैं घर नहीं गया हूँ, जानती हैं।"

बनलता बोली, "फिर, दो दिन तक कहाँ थे?"

सुधामय ने कहा, "यहीं रास्ते के पार्क में···अखबार में खबर निकलने के बाद किसी बन्धु के घर जाने में भी शर्म आती है···"

फिर खड़ा होकर बोला, "अच्छा, चलूँ फिर।"

बनलता बोली, "कहाँ जायेंगे?"

सुधामय ने कहा, "पता नहीं, घर तो जा नहीं सकता, होस्टल भी नहीं।"

"फिर?"

सुधामय बोला, "डॉक्टरी पास कर ली है, एकदम उपवास की नौबत नहीं आयेगी, जानता हूँ; किन्तु मेरे पास पैसा भी नहीं कि गाड़ी पकड़कर कहीं चला जाऊँ। पैसे होते तो आज ही कहीं चल देता।"

सुधामय इस बार सचमुच ही जा रहा था। बनलता चुपचाप उसकी ओर देख रही थी। जब सुधामय सीढ़ी से एकदम नीचे उतर गया तो पुकारा, "सुधामय बाबू! सुनिए!"

सुधामय ने ऊपर की ओर देखा। बोला, "मुझे बुला रही हैं!" कहता हुआ फिर ऊपर आ खड़ा हुआ। बनलता दरवाजा पकड़े खड़ी थी। बोली, "मेरी बात नहीं मानेंगे?"

"क्या ?"

वनलता ने जल्दी-जल्दी हाथ से एक चूड़ी उतार सुधामय के हाथ में रखते हुए कहा—"यह गिलट की नही, सोने की है, शायद आपका कुछ उपकार हो सके।"

सुधामय सच मे अवाक् रह गया। उसके मुख से एक शब्द भी न निकला।

वनलता ने कहा, "आप उम्र में छोटे हैं, लेने मे आपत्ति न कीजिए।"

सुधामय ने कहा, "इसकी अपेक्षा एक बार चप्पल और मार लीजिए न—यहाँ कोई भी नही है, मैं वह सह भी लूँगा।"

वनलता ने इस बार आँखें नीची कर ली। बोली, "मेरी अवस्था बहुत अच्छी हो, ऐसा तो नही है किन्तु···"

सुधामय बोला, "लगता है, क्षति पूरी कर रही हैं।"

वनलता ने कहा, "वही समझकर ले लीजिए। शायद मैं कहीं और एक नौकरी का जुगाड कर सकूँगी। किन्तु आप इस उम्र मे···यहाँ तो अनेक दोष···"

सुधामय बोला, "जाने दीजिए। फिर भी आप इसे वापस ले लें।"

वह यह कहते हुए वनलता के हाथ मे चूड़ी रखकर जा ही रहा था कि वनलता ने चट से हाथ पकड़ लिया। बोली, "आपके दोनों हाथ पकड़कर कह रही हूँ, ले लीजिए—"

सुधामय ने अवाक् वनलता के मुख की ओर स्पष्ट रूप में देखा। मुख तो इतनी बार देखा था, किन्तु लड़की के मुख पर कुछ और ही भाषा तथा कुछ और ही अर्थ आज प्रथम बार देखा। सुधामय ने फिर हाथ छुड़ाने की चेष्टा नहीं की। बोला, "आप लेने के लिए कह रही हैं?"

वनलता ने कहा, "मैं आपसे उम्र मे बड़ी हूँ, मेरी बात माननी होगी।"

सुधामय बोला, "किन्तु आपको भी तो मकान का दो मास का किराया देना है?"

वनलता बोली, "मैं स्त्री हूँ, हम पुरुषों की अपेक्षा अधिक सहन कर सकती हैं।" कहकर अपने कमरे मे जाकर दरवाजा बन्द कर लिया था।

तुम स्त्री हो। शायद तुम वनलता के इस आचरण को समझ सको।

कमरे में घुसने के बाद वनलता बिस्तर में मुँह छिपाकर रोयी थी या नहीं, कोई नहीं जानता।

ईश्वरीप्रसाद बोला, "तो नाहारगढ़ में जब एक बंगाली डॉक्टर आया, उससे पहले अस्वस्थ होने पर लोग 'जलपड़ा' खाते, ठाकुर-देवता की मन्नत मानते, और जिनके पास पैसा था, वे वैद्य को दिखाते—राजवैद्य, उसकी भेंट होती पन्द्रह रुपये, और दवाई के दाम अलहदा।"

ईश्वरीप्रसाद कहने लगा, "नाहारगढ़ छोटा शहर होने से क्या होता है, नाहारगढ़ के राजा खानदानी राजा हैं। राजा की तीन रानियाँ थीं। हर रानी की तेरह दासियाँ, छत्तीस पर्दायत और लोग, लंगर, खोजा, राजकुमार, लालजी साहब—सब हैं। अजमेर स्टेशन पर एक दिन सवेरे एक छोकरा डॉक्टर रेल से उतरा। संग में न सूटकेस, न बिस्तरबंद, देखने में तेईस-चौबीस वर्ष का…"

जब अजमेर में था, तब थोड़ी-सी कहानी सदानन्द बाबू से भी सुनी थी। सदानन्द बाबू ने कहा था, "अरे साहब, यह जो राजपूताना देख रहे हैं, जिसको कहीं जगह नहीं, उसे यहीं ठीक जगह मिलेगी।"

सदानंद बाबू ने बंगाली मिठाई की दुकान खोली थी। अजमेर आनेवाले बंगाली को यहाँ आना ही होता है। बंगाल देश छोड़कर इतनी दूर आकर खाने को पनीर, बंगला में दो बात, मछली का झोल और भात, यहीं पर मिलेगा। बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, चित्तौड़गढ़ चारों ओर। बीच में यही अजमेर।

सदानंद बाबू बोले थे, "नाहारगढ़ राजमहल में विवाह! संदेश, रसगुल्ले का आर्डर मुझे मिला, और यह भी हुकुम हुआ था कि मँझली रानी को रसगुल्ला बनाना सिखा दिया जाये। जाकर देखा वहाँ का राजवैद्य भी बंगाली, लड़का-सा! देखते ही पहचान गया, बोला, "आप यहाँ?"

"बहुत दिन पहले की बात है, एक छोकरा स्टेशन पर उतरकर सीधा मेरे पास आ हाजिर हुआ। तब मैं सामान रखने जा रहा था। मुझसे पूछा, "सर, यहाँ कोई धर्मशाला है?"

"मैंने पूछा, 'कहाँ से आ रहे हैं?'

"बोला, 'कलकत्ता से !'

" 'संग मे और कौन-कौन है ?' समझ गया, यदि अकेला है तो तीर्थ-यात्री-वात्री नही है।

"फिर पूछा, 'आप क्या करते हैं ?'

"बोला, 'मैं डॉक्टर हूँ।'

"डॉक्टर सुनते ही मानो अवाक् रह गया। डॉक्टरी करने ! बगाल देश छोड़कर यहाँ क्यो ? अवश्य ही कुछ गोलमाल है, पूछा, 'सग मे पैसा-वैसा कुछ है ?'

"बोला, 'है !'

"समझ गया ! झूठ कहता है। पास मे पैसा होता तो चेहरा ही कुछ और होता। शायद घर से किसी का गहना चुराकर लाया हो। ऐसे कितने ही लडके आते हैं। मैं भी तो एक दिन माँ से झगडा करके इसी मरुभूमि प्रदेश मे भाग आया था। सभवत. मेरे जैसा ही कोई हो। उस समय हाथ मे पनीर की ट्रे थी, उसे पास के कमरे मे रख आना होगा। मैं बोला—'तुम जरा बैठो, मैं अभी आता हूँ।'

"कहकर दूसरे ही क्षण दुकान मे लौट आया। कितनी देर लगी होगी। यही दो या तीन मिनट। लौटकर देखा, कही कोई नही। लगा कि मेरे पूछने के तरीके से उसे सदेह हो गया। रास्ते मे घूमकर इधर-उधर भी देखा। अब जहाँ सिंधियों की दुकानें है न, वहाँ तब सब खाली था। सामने रेलवे लाइन दिखाई पड़ती थी। उस ओर एक बार भाग जाओ तो फिर पता पाना मुश्किल। फिर उसका पता मुझे लगा भी नही।

"···तो नाहारगढ जाने पर पुनः उसी छोकरे से साक्षात् हुआ, महाशय। राजा दलजीतसिंह का खास राजवैद्य ! उठते-बैठते 'राजवैद्य' की पुकार पड़ती।

"बोला, 'पहचानते हैं ?'

"किन्तु उसे तो साहब फिर पहचान पाना मुश्किल था। नाहारगढ़ स्टेट मे आपका कोई नही···शहर छोटा होने से क्या होता है। नाहारगढ के राजा खानदानी राजा, राजा की तीन रानियाँ, तीन रानियों की तेरह

दासियाँ, छत्तीस पर्दायत और लोग-लंगर, खोजा, राजकुमार, लालजी साहव, लालजी वाई—सव हैं; उस राजा की नेक नजर में पड़ना क्या सीधी वात है!"

सदानंद वावू की जवान पर वही वात। वोले, "लोग कहते हैं। वंगाली लड़के की घर-गृहस्थी—देख आइए राजपूताना घूमकर; जितने स्टेट के दीवान, नायव, डॉक्टर, लार्ड वायसराय सव तो वंगाली हैं! और नाहारगढ़ का राजवैद्य पहले था एक विहारी, कोई वीमार होता तो वही एक पुड़िया देता, डॉक्टर मित्तिर के जाने के वाद से अव वैद्य की पुड़िया कोई खाना नहीं चाहता।"

मैंने पूछा, "तो राजा को डॉक्टर ने कैसे पटाया?"

"डॉक्टर ने वताया, मँझली रानी यशोदा वाई वीमार हैं, राजवैद्य ने देख लिया है, ठीक नहीं कर सका। मरणासन्न अवस्था है, और तव अजमेर से असंतुष्ट घूमता-घामता नाहारगढ़ आ निकला। राजमहल का चौकीदार दुकान पर आता, सिनेमा देखता, रास्ते में मिल जाता। उससे सुनकर वोला, मैं यशोदा वाई का कष्ट दूर कर सकता हूँ, किन्तु देखूँगा कैसे? राजा के अंत:पुर में कैसे घुसूँ? राजा की अनुमति चाहिए। अंत में दिलखुशसिंह की अनुमति भी चाहिए। दिलखुशसिंह था अंत:पुर का खोजा। समस्त अंत:पुर का एकमात्र प्रहरी। उसकी गतिविधि सर्वत्र। रानी साहिवा से शुरू करके वड़ी रानी, लालजीवाई, वाँदी, नौकरानी तक जिसे अंत:पुर से वाहर जाना होता, दिलखुशसिंह की अनुमति लेनी होती।

"मैंने पूछा, मुझे क्या करना होगा? उसने कहा—'आप रेजिडेंट साहव से मिलिए।' राजप्रासाद के पश्चिम में विराट् लेक के किनारे रेजिडेंट साहव का वंगला! एक दिन सवेरे उनसे मिलने गया। मिलने से क्या होगा? मिलकर क्या करना है। वंगाल से आया है, सुनते ही उन दिनों साहव लोग सोचते टेररिस्ट है। रेजिडेंट ऑसवार्न साहव ने मेरी ओर अनेक वार देखा। मेडिकल डिग्री हाथ में लेकर कई वार पढ़ी। उससे क्या संदेह दूर होता है? पूछा—'यहाँ तुम क्या करने आये हो, वावू?'

"मैंने कहा—'मँझली रानी यशोदा वाई की वीमारी का समाचार सुनकर आया हूँ, यदि दूर कर सकूँ, यदि राजा की नेक नजर में पड़कर

भाग्य बदल सकूँ।'

"इसलिए?'...तब रेजिडेन्ट साहब ने एक चिट्ठी राजा के नाम लिख दी।

"राजा साहब से भेंट करना भी कोई आसान काम न था। राजा तो राजा हैं। राजा दलजितसिंह बहादुर! पारिषद्, अमला, कर्मचारीगण कहने, समुद्र से लेकर हिमालय तक उनका राज्य है। मुगल सरकार के संग युद्ध करके सम्राट् अकबर से नाहारगड के पूर्वपुरुष राजा हिक्मतसिंह बहादुर ने वीरता-जन्य इनाम में पाया था। पुरुषानुक्रम में अब यह वीरता का खिताब राजा दलजितसिंह को मिला है। किन्तु कोई और वीरता दिखाने की अब आवश्यकता नहीं होती। आवश्यकता होने पर केवल रेजिडेंट साहब को लेकर, किंवा बड़े लाट बहादुर को लेकर शिकार करने जाते हैं, अमला कर्मचारीगण ढोल की चोट पर बाघ-भालू को भगाकर लाते हैं—राइफल के निशाने के भीतर, और वे हाथी की पीठ पर हौदे में चढ़कर फायर करते हैं। अब मँझली रानी की बीमारी के कारण उनका भी मन भर-सा गया। अतः रेजिडेन्ट ऑसवार्न साहब की चिट्ठी पाकर द्विविधा नहीं थी, निशानी भेजकर अमले को हुकुमनामा दे दिया, रोगी को देखकर डॉक्टर लौट आयेगा, फिर वह निशानी वापस ले लेना होगा। जितने दिन रोग ठीक नहीं होगा, उतने दिन यही कार्यक्रम रहेगा।

"यथारीति निशानी अन्दर महल के गेट पर दिखानी पड़ी। खोजा दिलखुशसिंह निशानी की परीक्षा करके मँझली रानी के महल में ले गया। महल के बाद महल पार करके, कितनी ही सुरगें, कितनी गलियाँ, कितने विचित्र घाघरे-ओढ़ने, सुरमा लगाये नेत्रों पर अपाग दृष्टि डालते हुए पहुँच गई। झालर लगी मसहरी के भीतर मँझली रानी यशोदा बाई का कमरा। मसहरी की ओट में यशोदा बाई सो रही थी। दिलखुशसिंह के कहने पर उधर से बाँदी ने मसहरी के बाहर मँझली रानी का हाथ बढ़ा दिया। रोग की परीक्षा हुई। पूछताछ हुई। क्या खाती अथवा नहीं खाती हैं, सब प्रश्नों का उत्तर उस ओर से बाँदी की मारफत हुआ।

"इस प्रकार तीन दिन! तीन बार डॉक्टर को जाना पड़ा। औषधि भी होती रही। अजमेर से औषधि लाकर खाने को दी। दिलखुशसिंह

को अच्छी तरह समझाकर बताया। उसके बाद राजा की निशानी दिखा-कर राजकोष से पैसे लिये गये।

"किंतु इससे इस समय इतना ताज्जुब नहीं हुआ था।

"—हुआ हठात्। राजा के पास खबर गयी कि नये बंगाली डॉक्टर साहब ने मँझली रानी को ठीक कर दिया है। इस बार राजा के आम दरबार में तलब हुई।"

सदानंद बाबू ने कहा, "इसे ही भाग्य कहते हैं, साहब—शायद माँ की एक सोने की चूड़ी चुरा लाया था, बाद में हो गया 'राजवैद्य'। पुराने राजवैद्य की छुट्टी हो गयी। केवल जागीर रह गयी। न जाने किसके भाग्य से तीन हजार की जागीर पायी। राजा-रजवाड़े का व्यापार! कब किसके भाग्य में फूल-माला और किसके भाग्य में जूतों की माला जुटेगी, कौन कह सकता है?

"मैंने पूछा, 'तो आपने डॉक्टरी पास की है, आपको नौकरी की क्या चिंता? बंगाल देश में इतने दिन एक भी नहीं जुटी?'

'डॉक्टर ने कहा, 'बंगाल देश में मुख दिखाने योग्य नहीं रह गया था, वरना यहाँ आने का···'

"मैंने पूछा, 'क्यों, क्या हुआ था?'

"डॉक्टर चुप हो गया। राजा साहब ने डॉक्टर के लिए एक विराट महल बनवा दिया है। सामने बाग, और केवल राजत्व ही नहीं, राजकन्या भी···"

"कैसी?"

सदानंद बाबू बोले, "तो सुनिए···वह भी एक इतिहास है। मेरी दृष्टि में तो है ही। नाहारगढ़ के इतिहास में भी। नाहारगढ़ का राजा भारी विलासी मनुष्य! काज-कर्म कुछ नहीं, महाशय, केवल विलास! वरना रसगुल्ला तैयार करने जाकर मैं भला बीच में पाँच हीरों की अँगूठी, एक फरद का जोड़ा और सात सौ रुपये इनाम ले आता! राज-वाड़ी के अमला-महकमा दरबार के लोग खाकर एकदम वाह! वाह! करने लगे कि ऐसी मिठाई कभी खायी नहीं। बड़ी रानी ने अपने हाथ की पन्ने की अँगूठी तारीफ में भेजी थी। अथच रसगुल्ला तैयार करना क्या

खाक सीखा। रसगुल्ला बनाना क्या इतना सहज है, महाशय ! तब सभी बना लेते। फिर डॉक्टर अंत में राजा साहब के प्रिय लोगों में से हो गया। किसी को रोग हो या न हो, 'डॉक्टर साहब' को बुलाओ। दोपहर वेला में नींद नहीं आ रही, बुलाओ 'डॉक्टर साहब' को। अन्दर से बढ़िया शर्बत बनकर आया है, बुलाओ 'डाक्टर साहब को। इसी प्रकार हर समय पुकार। और डॉक्टर को भी भला क्या काम था। राजवैद्य हो गया, तीन हज़ार की जागीर मिल गयी। राजा की हुकुम-हुजूरी में रहना ही तो राजवैद्य का असल काम था।

"फिर भी जब कभी समय होता, मरुभूमि की गर्मी में डॉक्टर रात को लेटता और नींद न आती तो एक अन्य व्यक्ति का ध्यान हो आता। आने वाले दिन जबरदस्ती हाथ में एक सोने की चूड़ी रख दी थी। सुधामय बोला था, 'एक दिन ऋण-शोध कर दूंगा, यह प्रतिश्रुति छोड़कर मेरे पास कहने योग्य और कुछ नहीं है—जानती हो···'

"वनलता ने कहा था, 'इसे ऋण न मानकर ही क्यों नहीं लेते, यह मैंने तुम्हें दिया···'

"सुधामय उस दिन यह बात सुनकर खूब हँसा था।

"वनलता ने कहा था, "इतना हँसते क्यों हो ?'

"सुधामय बोला था, 'देखता हूँ, मुझे जूता मारने की बात तुम अभी तक भूल नहीं पायी हो—किंतु मैं तो भूल ही गया था···'

किंतु वनलता हँसी नहीं, बोली थी, 'जो इतनी सहज सब भूल जाते हैं, उनको लेकर कितना भय होता है !'

"सुधामय तब वनलता का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला था, 'किंतु मुझे लेकर तुम्हें इतना भय करने की दरकार नहीं—अपमान ही सहज भूल गया हूँ, इसलिए प्यार भी भूल जाऊँगा, ऐसा पाखंडी मैं नहीं···'

"वनलता ने कहा था, 'चिट्ठी भेजने की बात याद दिलानी होगी क्या ?'

"पड़ोस की लड़कियाँ कहती, 'आज तुम्हारी ड्यूटी नहीं है, वनलता दी ?"

"एक दिन में ही मानों पृथ्वी पर विप्लव हो गया। एक दिन पहले

जो निहायत पराया था, हावड़ा स्टेशन पर उसी सुधामय को गाड़ी में जाते देख न जाने कैसा सूना लगने लगा। अर्थात् सुधामय उसका कोई न कोई है ! एक ही अस्पताल में एक छब्बीस वर्षीया नर्स और दूसरा सद्यः उत्तीर्ण डॉक्टर। चेहरे से ही कितना छोटा दिखाई देता है।

"वनलता ने केवल यह कहा था, 'मेरे कारण तुम्हें आत्मीय-स्वजन सवको छोड़कर जाना पड़ रहा है···'

"सुधामय ने कहा, 'आत्मीय-स्वजन को छोड़ने से मुझे लाभ हुआ कि नुकसान, यह वताने का अभी समय नहीं आया है···'

"वनलता ने कहा था, 'वह समय क्या पुनः आयेगा ?'

"सुधामय वोला था, 'न आने पर तुम्हारा जूता मारना जैसे मिथ्या होगा, वैसे ही तुम्हारा चूड़ी देना भी झूठ हो जायेगा। मेरा लाभ-नुकसान सभी मिथ्या हो जायेगा···'

"जाकर सुधामय ने एक चिट्ठी अवश्य भेजी थी। लिखा था: राजपूताना की मरुभूमि में पहुँचकर भी अभी तक ओएसिस का संधान नहीं कर पाया हूँ। सारे रास्ते चना खाता रहा हूँ और कुएँ के जल का भरोसा। तुम्हारी चूड़ी आज भी खर्च करते भय होता है, उसे सारा समय अपने पास रखता हूँ, उसकी उपलब्धि से सांत्वना मिलती है कि तुम हो···'

"चिट्ठी में कहीं वनलता को आने का अनुरोध नहीं। वनलता ने वार-वार चिट्ठी पढ़ी, फिर चिट्ठी आँचल में वाँधकर आग पर भात चढ़ा दिया। छब्बीस की वयस है न, सत्य कथा लिखने में स्वाभिमान वाधा वना। चाकरी न मिलने पर भी लिखा—'एक नये अस्पताल में नौकरी कर ली है, कलकत्ते से दूर, समय से उत्तर न मिलने पर चिंता न करना !'

"दोपहर वेला को भात खाने उठकर वीच में ही वनलता औंधी पड़ गयी। सुधामय तो देखने आयेगा नहीं।

"किन्तु राजपूताना कलकत्ता नहीं। नाहारगढ़ भी कलकत्ता नहीं।

"और डॉक्टर सुधामय की उम्र भी तेईस। वह छब्बीस वर्षीया की व्यथा कैसे समझेगा। सवेरे से उठकर पहला काम साज-सज्जा करना।

दरबार में जाकर राजा दलजितसिंह बहादुर को कोर्निश बजाकर बैठना होता। फिर दरबार शेष होने पर घर लौटकर खाना खा। राजप्रासाद के तहखाने की ओर दौडना होता। दिन में सोने के बाद राजा साहब शतरंज खेलने बैठते हैं। पहले और संगी थे, अब केवल डॉक्टर! एक समय राजमंत्री जी, दीवान जी, रानी जी, पर्दायत जी, पासवान जी सभी के संग शतरंज खेला जाता था। अब डॉक्टर है।

"राजा साहब ने पूछा था, 'डॉक्टर, शतरंज खेलनी आती है?" महाराज के सामने 'नहीं' नहीं किया जाता। बोला—'जानता हूँ हुजूर।' एक समय सुधामय शतरंज खेलता था। तब अड्डे का नशा था। अब नौकरी बचाने के लिए शतरंज खेलना होगा।"

यही शतरंज खेलते-खेलते, एक दिन सुधामय के जीवन में चरम आत्मोपलब्धि हुई। उसे आत्मविभ्रम भी कहा जा सकता है। यह शतरंज खेलने न बैठता तो बनलता के जीवन में दुर्दैव न आता। और गल्प-लेखक के हिसाब से मुझे भी 'सरबती बाई' की कहानी ज्ञात न होती।

सदानंद बाबू ने कहा था, 'मैं गया था रसगुल्ला बनाने और सुनकर लौटा 'सरबती बाई' की कहानी।

"राजा के अंतःपुर का व्यापार कभी देखा नहीं। न देखो तो कोई समझ नहीं सकता। गुलाबी ओढ़नी और असूर्यस्पर्शियों की चकित दृष्टिओं की भीड़। इधर सुरंग, उधर कटाक्ष। खुशामदों और हाहाकारों की भीड़, घाघरे, सुरमे और काजल का रहस्य। बाह्य जगत, विश्व-पृथ्वी की खबर यहाँ तक नहीं पहुँचती। यहीं जन्म और यहीं मृत्यु हुई, ऐसी अनेक नारियों का यहाँ इतिहास। सेठ और ठकुरानियाँ उत्सव-पावना, डोले-यात्राओं में आती हैं। किसी-किसी की उच्चाकांक्षाएँ ताल-कटोरे की बदीशाला में धूलिसात हो जाती हैं। राजा की नजर में एक बार पड़ गये तो जीवन की कोई साध अपूर्ण नहीं रह सकती। उसके लिए कितनी साध्य-साधनाएँ। महारानी की खुशामद करनी होती; माँजी साहबा, पर्दायत, पासबान जी की और सबसे अधिक खुशामद करनी होती एकमात्र प्रहरी खोजा दिलखुशसिंह की। किंतु उनके बीच सरबती बाई एक ऐसी व्यक्ति थी, जो ठीक उनके जैसी नहीं थी। खेल में राजा साहब ही अधिकतर

हारते हैं। हारने में ही तो खेल का आनंद है। राजा साहब को खेल का भारी उत्साह है।"

सदानंद बाबू बोले थे, "पुराने समय के राजा-महाराजाओं का काज-कर्म रहता था, युद्ध-विग्रह रहता था। अब राजाओं को क्या है, महाशय! कहीं सुन्दरी लड़की देखते ही ले आना। किसी की सुन्दरी बहू है, ले आओ। इस तरह असंख्य लड़कियों से अंतःपुर भर गया है। वहाँ एकमात्र पुरुष हैं राजा साहब। वह सब क्या अच्छा लगता है! बीच-बीच में वही शिकार-विकार करते हैं। शतरंज-वतरंज खेलते हैं और नाहारगढ़ के राजा तो वयस में भी कम हैं। तीन रानियाँ, उन रानियों की वयस राजा की वयस से अधिक। महाराजा की वयस जब बारह तो बड़ी रानी बीस की थी। मँझली रानी तब सोलह। और छोटी रानी आयी ही नहीं थी। और प्रत्येक रानी के संग दहेज में तेरह-चौदह दासियाँ आती थीं। उनका भी ऐसा ही यौवन का उभार। इनके अतिरिक्त रानियों की सखियाँ हैं, बाहर से उपहार में आयी हुई लड़कियाँ हैं। कोई आती है स्वेच्छा से, किसी को भ्रम में डालकर लाया जाता है। रात्रि को गाने-बजाने के उत्सव में राजा साहब की किसी पर आँख पड़ गयी, तो उसे बुला लिया गया। किसी को षड्यंत्र करके गुम कर दिया गया तालकटोरा कक्ष में, जिससे सारा जीवन फिर राजा साहब की दृष्टि में न पड़े। यह सुन्दरी लड़कियों के भाग्य की भयंकर विडंबना नहीं है क्या? मैं जैसे ही अंदर महल में घुसा, मँझली रानी को रसगुल्ला तैयार करना सिखाया, परन्तु किसी को एक पल के लिए भी नहीं देख पाया। खोजा साहब का हुकुम इतना कड़ा था।

"किन्तु, डॉक्टर का व्यापार अलहदा था। राजवैद्य, राजा साहब का प्रिय व्यक्ति। डॉक्टर कहता, 'हुजूर गजबंदी हो गयी आपकी।'

"राजा साहब कहते, 'देखो डॉक्टर, तुमने मंत्री की क्या दशा कर दी।'

"प्रासाद का तहखाना एकदम धरती के नीचे तैयार किया गया था। गर्मी के दिनों में वहाँ बड़ा आराम मिलता था। भीतर अंतःपुर से सुरंग के रास्ते आना-जाना होता है। दरकार होने पर, राजा साहब तालियाँ

बजाते हैं और साथ-साथ हुकुम की तामील होनी है। घाघरा पहने दासी-बाँदियाँ आती हैं। जल की दरकार हो तो जल, शरबत की दरकार हो तो शरबत, जो चाहिए, सब।

"राजा साहब अमले से कहते, 'डॉक्टर की बुद्धि निर्मल—' केवल बुद्धि ही नहीं, डॉक्टर का सब कुछ अच्छा है। डॉक्टर के पास आते ही मुख पर हँसी खेल जाती है। जो काम कोई नहीं कर सकता, डॉक्टर को कहते ही तामील हो जाती है। डॉक्टर की बात को 'नहीं' करने की साध्य महाराज की भी नहीं। सम्मान में ऊँचे-नीचे होने पर भी वयस में दोनों समान हैं। यह क्या बंगाली की बुद्धि के बस की बात है! सोचिए, कहाँ दूर बंगाल देश से खाली-हाथ आकर एकदम सब चीज पर दखल पा लिया। और वह भी, महाशय, हम सबके ऊपर जा बैठा।"

मैं बोला, "फिर क्या हुआ, बताइए ?"

सदानंद बाबू बोले, "उसके बाद ही तो सरस्वती बाई आयी।

"दोपहर से खेल चल रहा था। राजा साहब की दो बार हार हो चुकी थी, इस बार भी हारने की ही अवस्था थी। शै और मात होने को ही थी। डॉक्टर से पार पाने का कोई उपाय न था। ऐसे समय में एक कांड घट गया।

"भीषण गर्मी का दिन था। तहखाना होने से क्या ? पक्का चैत्र मास। बाहर लू चल रही थी। आकाश के नीचे प्राण हाँफ रहे थे। प्यास से कंठ सूखकर खरखरा हो रहा था। डॉक्टर को प्यास लगी। डॉक्टर को वे सब अर्क-वर्क अच्छे नहीं लगते थे। बोला, 'एक ग्लास जल चाहिए।'

"'जल ?'

"राजा साहब ने ताली बजायी। उस ताली का अर्थ जो समझते थे, वे जान गये। हाथ-ताली का इंगित पाते ही पीछे सुरंग के रास्ते से निकलकर आयीं सरस्वती बाई।

"खेल छोड़कर डॉक्टर उस ओर एकटक देखता रह गया। गुलाबी बूटीदार घाघरा, वक्ष पर सुनहरी चमकदार काँचली और पतला जाफरानी जरीदार ओढ़ना। शरीर पर और कहीं कुछ नहीं। सिर पर

सोने का घड़ा। दोनों हाथों से घड़ा पकड़, वह कमरे में आ खड़ी हुई। मानो सरवती बाई चलकर नहीं, बहकर आयी हो। डॉक्टर ने जल पीकर फिर चाल चली। किन्तु फिर मानो खेल जमा ही नहीं।

"राजा साहब भी अवाक् हो गये। वही डॉक्टर की प्रथम हार हुई।

"उठते समय राजा साहब सिर पर पगड़ी रखते हुए बोले, 'तुम्हें मैं एक उपहार दूंगा, डॉक्टर।'

'उपहार ?'

"राजा साहब बोले, 'तुमने विवाह तो नहीं किया है न ?'

"डॉक्टर बोला, 'नहीं।'

" 'फिर इस बार तुम विवाह कर लो।'

"डॉक्टर अवाक् हो गया। बोला, 'किससे ?'

" 'सरवती बाई को तुम्हें दे दूंगा...'

"एक बार सोचकर देखिए। इतिहास में ऐसी घटना कभी किसी ने देखी नहीं, सुनी नहीं। मुगल सरकार के अमल में अवश्य विवाह हुए हैं, किन्तु वह राजनीति थी। लालजी साहब, लालजी बाइयों में से किसी-किसी का ऐसा दुर्भाग्य रहा है, किन्तु खास महल की लावारिस किसी भी लड़की के भाग्य में ऐसी घटना इतिहास में नहीं घटी। साज-साज में सुर पड़ गया। किसी लालजी बाई के विवाह में ऐसा नहीं हुआ। विवाह-व्यापार चल पड़ा, यहाँ-वहाँ जूते वाला जूते बनाने बैठा। मिठाई वाला मिठाई बनाने बैठा। इधर-उधर से अनेक परिवार आयेंगे ! भव्य समारोह ! रसगुल्ला बनाने की फरमाइश हुई मुझसे, किन्तु जिनके लिए समारोह, जिनका विवाह, उनका हृदय थर-थर काँप रहा था।

"दिलखुशसिंह ने सरवती बाई की पीठ पर एक धौल जमाया, 'जा, बच गयी बेटी। इस बार तेरी तबीयत खुश हो जायेगी।'

"और डॉक्टर ! डॉक्टर सुधामय ! कलकत्ता मेडिकल कालेज का एम० बी० डॉक्टर, उसको भी भय ! रात्रि को बिछौने पर पड़े-पड़े डॉक्टर की आँखों में नींद नहीं आती। अनेक मील दूर एक लड़की अस्पताल में ड्यूटी करते-करते शायद एकदम अन्यमनस्क हो उठी हो। उसका कहीं कोई नहीं, कहीं आश्रय नहीं, एक सोने की चूड़ी देकर एक

निरुद्देश्य यात्री की एक दिन सहायता की थी। उसके बाद शायद फिर कहीं और नौकरी लेकर मस्त है। वनलता ने चिट्ठी भेजी है। लिखा है—नौकरी में बिल्कुल समय नहीं मिलता। समय पर यदि चिट्ठी न भेज सकूँ तो चिन्ता न करना। नया देश है, दूध मिलता है और उस देश में तो शुद्ध घी भी मिल जाता है—उसकी व्यवस्था कर लेना। यहाँ हिलसा मछली बहुत हैं, तुम्हारे लिए मन न जाने कैसा हो जाता है।

"छब्बीस वर्षीय का दौर्बल्य वनलता की चिट्ठी में झाँकता है। मानो उपदेश दे रही हो, मानो ऊँचे खड़े होकर नीचे की ओर देख रही हो। ठीक आमने-सामने नहीं।

"सुधामय की चिट्ठी भी आयी है, लिखता है—तुम्हारी सोने की चूड़ी अब बेचने की दरकार नहीं होगी, फिर भी पास में रखे हूँ। लगता है, तुम पास हो, एकदम हृदय के पास।

"वनलता बार-बार चिट्ठी पढ़ती है। घूम-घूमकर पढ़ती है, खाना बनाते समय, फिर-फिर पढ़ती। कहाँ, आने के लिए तो कहीं लिखा नहीं उसने। शायद अभी तक ठीक से जमकर बैठा नहीं है सुधामय। अच्छी तरह घर सजाना होगा, भली प्रकार व्यवस्था करनी होगी। वनलता को तो ऐसे-वैसे रखा नहीं जा सकता—इधर-उधर! और अपना मुँह खोलकर क्या कहा जा सकता है'''मैं आ रही हूँ। आने के लिए तो किसी ने लिखा नहीं। इस प्रकार कोई लिखता—'तुम चली आओ, वनलता, मैं तुम्हारे लिए घर सजाकर बैठा हूँ। तुम नौकरी छोड़ दो, मैं जो हूँ। अब मैं तुम्हें नौकरी नहीं करने दूँगा।'

"इस अस्पताल में उस अस्पताल! कहीं जाकर वनलता को चैन नहीं, जरा असुविधा होते ही कहती है'''देखिए! मैं आप लोगों की तरह नहीं हूँ। मेरा बिना नौकरी के भी चल सकता है'''"

"सरला दी कहती, 'हाँ, वनलता दी, तुमने एक डॉक्टर के जूता मारा था न?'

"वनलता चौंक उठी, 'किसने कहा?'

"यानी, यहाँ हावड़ा तक बात फैल गयी है। कहती, 'तुम सुपरिंटेंडेंट से कह दो, दरकार होने पर उनके जूता मारने में भी मुझे बाधा न होगी।'

सरला दी कहतीं, 'यह सब सोचने की आवश्यकता है भाई ? नौकरी करने जब आ आ ही गयीं तो नौकरी के बिना हम लोगों का कैसे चलेगा ! यही तो हमारे भाग्य में···' बनलता कहती, 'फिर तुम्हें सच-सच बताती हूँ । सरला दी···मैं बहुत दिन नौकरी नहीं करूँगी ।'

"सरला दी मानो अवाक् हो गयीं । विश्वास नहीं करतीं । कहतीं, 'नौकरी बिना कैसे चलाओगी बनलता दी ?'

"बनलता कहती, 'कलकत्ता छोड़कर चली जाऊँगी ।'

" '···कहाँ ?

"बनलता कहतीं, 'कहीं भी, काम जानती हूँ । काम आने पर खाने का अभाव···' सरला दी कहतीं, 'मुझे भी संग ले जाना बनलता दी । मुझे भी अब अच्छा नहीं लगता, अखबार में केवल नौकरी के विज्ञापन देखती रहती हूँ ।' बनलता कहतीं, 'मेरे संग चलोगी? किन्तु वह बहुत दूर···

" 'कहाँ, सुनूँ तो ?'

" 'नाहारगढ़ ।'

"सरला दी बोलीं, 'यह नाहारगढ़ कहाँ है, नाम कभी सुना नहीं ?'

" 'राजपूताने में ।'

"सरवती बाई ने कहा था, 'बंगाल देश, वह कहाँ है ?'

"सुधामय ने कहा था, 'बहुत दूर है ।'

"बहुत दूर का अंदाजा करने में सरवती बाई की दोनों आँखें फटी-सी रह गयी थीं । बहुत दूर से मनुष्य को मानो भय-सा होता है । सरवती बाई की आँखों में मानो केवल भय की परछाई थी । राजा साहब ने कोई कमी नहीं रहने दी । अजमेर, बीकानेर, जोधपुर, जयपुर से आत्मीय-स्वजन आये हैं । अंदर महल में आ घुसे हैं । राजपुरोहित ने आकर मन्त्र पढ़कर विवाह कराया है । विवाह तो विवाह है । वह बंगालियों की तरह हो चाहे राजपूतों की तरह । होकर ही रहा ।

"विवाह में 'फूलशय्या', 'बहू भात' सभी राजोचित ।

"राजा साहब ने एक बार पूछा था, 'तुम्हारे आत्मीय-स्वजन किसी को निमंत्रण नहीं भेजना है ?'

"है कौन, जिसे निमन्त्रित किया जाये ? जो लोग विवाह कराने वाले हैं सुधामय के, वे सभी तो हैं। किन्तु जब किसी से सम्पर्क ही नहीं रखा तो अब जरूरत क्या ? और राजा साहब अकेले ही सौ के बराबर हैं। अकेले राजा साहब के रहते, कौन किसकी सहायता चाहेगा !

"सरस्वती बाई सुहागरात को बोली थी, 'मुझे छूना मत।'

"शायद प्रथम स्पर्श की लज्जा हो ! किंतु अंत पुर के व्यथित यौवन को लेकर जैसा खोमचा सजाते हैं, वह तो सुधामय की अँगुलियों पर है। अपने नेत्रों से देख चुका है कि यौवन कैसे विश्व-विजय कर सकता है। सामान्य किसान की गरीब लड़की कैसे एक दिन महारानी से ऊँचा पद प्राप्त कर लेती है।

"बचपन में एक दिन बाबा ने कहा था—'अब नौकरी में लग जाओ। मैं तुम्हें आगे पढ़ा नहीं सकूँगा।'

"सुधामय ने तब आई० एस० सी० पास किया ही था। बोला, 'क्लर्की नहीं करूँगा।'

"बाबा गुस्से में भर उठे थे। बोले थे, 'फिर तुम्हारी जो इच्छा हो, सो करो। आगे पढ़ाने का मेरा बूता नहीं है।'

"काका बाबू के पास फैसला कराने गया था। उन्होंने भी कहा था, 'डॉक्टरी पढ़ना कोई मजाक नहीं है, केवल धन होने से क्या होता है, बुद्धि भी चाहिए।'

"बाबा अवश्य उसका डॉक्टरी पास करना नहीं देख पाये। माँ भी नहीं। देखा था केवल काका बाबू ने। किन्तु उसके बाद ही कलंक की लज्जा से देश छोड़कर भागना पड़ा था। बंगाल देश में फिर उसका सम्पर्क ही न रहा। क्षीण-सा सम्पर्क जिसके साथ रहा भी, वह थी बनलता। किन्तु बनलता को यह खबर किस तरह भेजी जाये। रविवार को सवेरे ही कलकत्ता से एक चिट्ठी मिली थी। लिखा था, 'नौकरी में बहुत काम है। जरा भी समय नहीं मिलता, सोच रही हूँ किसी और अस्पताल में नौकरी करने की। यहाँ की मेट्रन अच्छी नहीं है।' जाने दो। बनलता अपनी नौकरी लेकर व्यस्त रहे।

"और सुधामय यहीं रहे। सरस्वती बाई है। राजा साहब हैं। उसे

क्या भय !

"सुधामय ने पूछा था, 'तुम्हें डर लगता है ?'

'सरवती बाई ने कुछ उत्तर नहीं दिया। गुलाबी बूटोदार घाघरा, एक चमकदार काँचली और जाफरानी रंग के पतले ओढ़ने के आवरण में उसने मानो अपने को और सुन्दर बना लिया था। मानो स्पर्श करने से उसकी जात चली जायेगी। किन्तु वास्तव में फिर अंत तक सरवती बाई की जात नहीं गयी।

"उसने कहा था, 'तुमने मुझसे शादी क्यों की, बाबूजी ?

"सुधामय ने पूछा था, 'क्यों, तुम सुखी नहीं हुई क्या ?'

"फिर राजा साहब की मृत्यु हो गयी। तीन रानियाँ विधवा हो गयीं। राज्य का रूप ही बदल गया। डॉक्टर का पहला-सा प्रभाव न रहा। विश्वास कम हो गया। केवल जागीर है। तीन हजार से राजा साहब ने पचास हजार कर दी, वही है। सरवती की तब अवस्था शोचनीय थी। उसको अब स्पर्श नहीं किया जा सकता, सुधामय इंजेक्शन पर इंजेक्शन लगाता। रात-दिन उसकी आँखों में नींद नहीं। सुधामय बड़ी-बड़ी पुस्तकें लाता। चिकित्सा शास्त्र में इतनी औषधियाँ हैं, तो क्या इस रोग की चिकित्सा नहीं होगी। यह रोग अरोग्य नहीं होगा। यह कैसे हो सकता है ! सुधामय आहिस्ता-आहिस्ता घावों पर मरहम लगाता। सरवती बाई का वह रूप कहाँ गया। अब आँख मुंह-धोना, पोंछना होता। सरवती बाई यंत्रणा से छटपटाती।

"सरवती बाई कातर दृष्टि से पूछती, मुझसे तुमने शादी क्यों की, बाबूजी ?

"सुधामय इसकी कैफियत किससे माँगे ? जिनसे माँगी जा सकती थी, वे अब नहीं हैं। राजा साहब का तब लालजी साहब के षड्यंत्र द्वारा खून हो गया था। उनकी प्रेतात्मा अब अंतःपुर के महल-महल में, ताल-कटोरा की कोठरी-कोठरी में, सुरंग की गली-गली में, आँगन-आँगन और माँजी साहबा, महारानी, पर्दायत पासवान जी के कमरे-कमरे में निःशब्द हाहाकार करती घूमती है।

"सुहागरात को निर्जन कक्ष में सरवती बाई के उसी उन्मत्त रूप ने फिर तूफान उठा दिया। सुधामय फिर उस ओर देखकर उन्मादमय हो उठा। शतरंज खेलते समय जैसे उन्माद से भर गया था। बाहर मरुभूमि की रात्रि मानो जादू मंत्र से मदमस्त हो उठी थी। राजा के आदेश पर इस कक्ष में समारोह की आज सीमा नहीं। उन्होंने इत्र, गुलाब जल, फूल, पेय किसी का भी अभाव नहीं रहने दिया। अंत:पुर की महिलाएँ उत्सव के अन्त में समवेत गान गाकर विदा हो चुकी थीं। बाहर उत्सव का शेष अंश अभी चल रहा था, कानों में उसका स्वर बहता आ रहा था।

"सरवती बाई चीत्कार कर उठी, 'पाँव पड़ती हूँ। बाबूजी, मुझे छुओ मत।'

" 'क्यों ?'

"विवाह के इतिहास में नव-वधू का यह आचरण कभी सुनने में नहीं आया। कम-से-कम सुधामय ने कभी नहीं सुना। फिर वह रात्रि उसी तरह कट गयी। दोनों जागते रहे। एक पलंग के ऊपर और दूसरा पलंग के नीचे। सवेरा होते न होते रात्रि के फूल सूखने लगे। इत्र, गुलाब जल की तीव्र सुगन्ध भी मरुभूमि की सूखी हवा में मिल गयी। भोर होते ही सरवती बाई सुरंग के रास्ते से अंत:पुर की ओर चली गयी और बाहर के दरवाजे से सुधामय आ गया।"

आज से कितने वर्ष पूर्व की यह सब घटना है। यह सब सुनी हुई कहानी याद न आती, यदि तुम्हारी चिट्ठी न मिलती। उसी वनलता की ! सरवती बाई इस कहानी की कुछ नहीं है, किन्तु वनलता की कहानी सुनने के लिए सरवती बाई की कहानी सुनाये बिना चल नहीं सकता।

वनलता तुम्हारी ही तरह एक दिन छब्बीस वर्ष की लड़की थी। तुम्हारी ही तरह वह नौकरी करती थी। और तुम्हारे ही समान मुँह खोलकर अपनी बात कहते शर्माती। तुम्हारी ही तरह सुधामय के बचपने पर संदेह करके दूर हट जाना चाहती। वयस में बड़े होने की ज्वाला तो है ही, इसलिए कहता हूँ, उस ज्वाला को गोपन रखने के लिए लज्जा करना और भी खराब है।

"सरला दी कहतीं, 'बनलता दी, किसका स्वेटर बुन रही हो ?'

"सुधामय का नाम लेते भी मानो लज्जा होती बनलता को। कहती, 'कोई न कोई आयेगा ही, तब उसी को दूँगी।'

"सरला दी कहतीं, 'किसी को आना होता तो अब तक आ जाता। हम लोगों की वयस तो हाहाकार करती बीत रही है, भाई।'

"किसी दिन सरला दी कहतीं, 'कह रही थीं न, राजपूताना जाओगी। जाओगी नहीं ?'

"बनलता कहती, 'हट, तुम से यों ही कह दिया था।'

"किन्तु सुधामय की चिट्ठी बड़े ध्यान से पढ़कर भी कहीं उसे आश्वासन का कोई संकेत नहीं मिलता। चिट्ठी में कहीं कोई व्याकुलता, निराशा नहीं। अकेले रहने की परेशानी का कहीं कोई संकेत भी नहीं। लिखता है, 'नौकरी करने जाकर वह सब सहन करना ही होता है। चुपचाप सह रहा हूँ। तुम्हारी वह सोने की चूड़ी अब भी पास रखे हूँ। तुम्हें वापस नहीं भेजूंगा। उसे पास रखकर शांति मिलती है, लगता है तुम मेरे पास हो।'

"फिर बनलता पढ़कर देखती है, कहीं यह तो नहीं लिखा, 'तुम नौकरी छोड़कर चली आओ, तुम्हें नौकरी करने की कोई आवश्यकता नहीं।'

"यह बात स्पष्ट रूप में सुधामय क्यों नहीं लिखता !

"रात्रि के निर्जन में फिर सरबती बाई से भेंट होती है। एक दिन में ही मानो चेहरा करुण हो उठा है, राजप्रासाद का अंत:पुर छोड़कर सरबती बाई सुधामय के घर आ गयी है। राजा साहब ने दोनों की एक विराट ऑयल पेंटिंग बनवा दी है, उसे दीवार पर टांग दिया गया है। सरबती बाई अत्यंत मोहक लग रही है, किन्तु सुधामय को प्रतीत होता है मानो सरबती बाई जान-बूझकर घूंघट में मुँह छिपाये है।'

"हाथ पकड़ते ही सरबती बाई परे सरक गयी, बोली, 'तुम मुझे छुओ मत, बाबूजी।'

"अपनी पत्नी को सुधामय छू नहीं सकता ! यह कैसा अनुरोध है ?

"सरबती बाई ने कहा, 'नहीं, मैं बीमार हूँ।'

"बीमार ! सचमुच सुधामय एक पग पीछे हट गया···यदि सरवती बाई बीमार है, तो वह भी तो डॉक्टर है। क्या रोग है ? कैसा रोग है ? सब रोगों की औषधि है। सुधामय रोग दूर कर देगा। रोग के लिए भय क्या, किन्तु डॉक्टर रोगी को छुए नहीं, यह कैसी बात है !

"सरवती बाई बोली, 'मुझे छूने से तुम भी बीमार हो जाओगे, बाबू जी।'

"सुधामय ने इस बार सीधे प्रश्न किया, 'क्या रोग है ?'

"सरवती बाई ने कहा, 'उन सबने तुम्हें वश में करने के लिए, तुम लोगों के शतरंज खेलने के प्रभाव को दूर करने मुझे भेजा था। तुमपर सबका बड़ा क्रोध था।'

"सुधामय ने पूछा, 'आक्रोश क्यों ?'

"सरवती बाई बोली, 'राजा साहब तुम्हारी मुट्ठी में जो हैं, बाबूजी !'

" 'तो मुझे वश में कैसे किया, सुनूँ जरा ?'

"सरवती बाई ने कहा, 'तुम्हारे संग मेरा विवाह करके, तुम्हारा जीवन बरबाद करके।'

"सुधामय बोला, 'तुम्हारे संग विवाह होने से मेरा जीवन बरबाद क्यों हो गया ?'

"सरवती बाई ने कहा, 'हाँ बाबूजी, मेरा जीवन जो बरबाद हो गया है।'

"सब सुनकर सुधामय अवाक् रह गया। सरवती बाई ने कहा, 'मेरी तरह और अनेक लड़कियाँ हैं बाबूजी, किसी को वश में लाने के लिए, भ्रम में डालने को, उनकी जवानी बरबाद कर दी जाती है।'

" 'और वे ?'

"सरवती बाई ने कहा, 'वे वहीं एक दिन यन्त्रणा में छटपटाती हुई कोढ़ से भर जाती हैं।'

"सुधामय ने कहा, 'राजा साहब यह बात जानते हैं ?'

"सरवती बाई बोली, 'हुजूर सब व्यापार जानते हैं। केवल हम लोगों की बात नहीं जानते। यह खोजा दिलखुशसिंह का स्वार्थ, लालजी

साहव का षड्यंत्र और वड़ी रानी चंदावती के परामर्श…'

'यह वहुत दिन वाद की वात है। अगले दिन सवेरे सुधामय ने दरवार में जाकर राजा साहव से मिलने की अनुमति माँगी। अमला वर्ग वोला, 'राजा साहव तो आज दरवार नहीं करेंगे, हुजूर…'

" 'क्यों ?'

" 'उनकी खुशी।'

"किन्तु अगले दिन भी राजा साहव नहीं आये। हाँ, खवर उनकी अगले दिन आयी।

"रेजिडेन्ट साहव आये। पूछताछ चली कुछ दिन। अरावली पर्वत की झील से वहुत-सा जल प्रवाहित हो गया। अनेक मोहरें, वहुत-सा पैसा, अनेक इनाम सुरंग की अंधकारपूर्ण गली में जाकर लुप्त हो गये। सारे राज्य में उस दिन उपद्रव मच गया था। कितनी वातें, कितनी कहानियाँ वनीं। किसी ने कहा, 'यह लालजी साहव का काम है।' कोई वोला, 'रानी चंद्रावती का परामर्श।' किसी ने कहा, 'इसमें दिलखुश सिंह का हाथ है।'

"रेजिडेंट की रिपोर्ट दिल्ली गयी, 'नाहारगढ़ के रूलिंग प्रिंस की हार्टफेल से मृत्यु हो गयी।'

"सरवती वाई ने कहा, 'मेरे लिए तकलीफ क्यों करते हैं, वावूजी ?'

"सरवती वाई वहुत वात नहीं करती। केवल वड़ी-वड़ी आँखें मिलाकर देखती रहती। गुलाव की पंखुड़ियों के समान दोनों ओठ केवल कभी-कभी काँप जाते। कहती, 'वह शादी हमारी शादी नहीं है, वावूजी। मुझे आप भूल जाइए।'

"सुधामय तव ग्रंथ खोलकर पढ़ता। दिन-रात ग्रंथ पढ़ता और प्रश्न पूछता। कहता, 'तुम्हें भूख लगती है ?'

"और कभी पढ़ते-पढ़ते कुछ संदेह हो जाता। कहता, 'मुझसे लज्जा मत करो। मैं डॉक्टर हूँ, जो-जो पूछता हूँ, वताओ…सच-सच।"

"अद्भुत जीवन। ऐसे अद्भुत जीवन का परिचय सुधामय ने अपनी डॉक्टरी की पुस्तक में भी कभी नहीं पढ़ा। कहीं से सव चुनी हुई

लड़कियाँ—किसी को खरीदकर, किसी को चोरी करके लाया जाता। सब लड़कियाँ गाँव की। शायद कुएँ पर जल भरने जातीं। फिर किसी को उनका पता नहीं चलता। एक दिन अकारण ही निरुद्देश्य हो जातीं। फिर लाकर, उन्हें दिलखुर्शसिंह के हाथ में डाल दिया जाता। उसके बाद जो परम सुन्दरी होती, उनके शरीर में चुन-चुनकर रोग के जीवाणु डाल दिये जाते। जब किसी को वश में करना होता, किसी का जीवन बरबाद करना होता, उसको उपहार में एक रात्रि के लिए सुन्दरी दे दी जाती। उसके बाद रोग के जीवाणु शरीर के कोश की रक्त-कोशिकाओं में मिश्रित होकर समस्त शरीर को विषाक्त कर देते। फिर यंत्रणा! कठोर यंत्रणा में जीवन का अवसान हो जाता। एक रात्रि के विभ्रम में—

"सरवती बाई कहती, 'मुझसे तुमने शादी क्यों की, बाबूजी?'

"अनेक दिन पूर्व की बात है। एक दिन रात्रि को हठात् अंतःपुर का दरवाजा खुला। खबर गयी दिलखुर्शसिंह के पास। एक दिन मुगल अमला ने यहाँ युद्ध-विग्रह के दिन सशस्त्र पहरा था। महाराजा युद्ध में ससैन्य सामंत लेकर गये थे। खबर आयी पराजय की। मुगल सेना के दल के दल नाहारगढ़ की ओर आ रहे हैं। भाले, ढाल, तलवार, घोड़ा, ऊँट लेकर यहाँ के प्रहरी तैयार हैं। भीतर अंतःपुर में सूचना भेज दी गयी है। खोजा-प्रहरियों के कान में भी पड़ गयी। मुगल सेना के अंतःपुर प्रवेश करने से पूर्व सब शेष हो जायेगा। अग्निकुंड तैयार होगा, एक-एक करके माँजी साहब, बड़ी रानी, मँझली रानी, छोटी रानी, सखियाँ, पर्दायत, पासवान जी, दासी-बाँदी कोई बाकी नहीं रहेगा। सब पंक्ति में खड़े हैं। एक-एक करके आग में कूदना होगा, जिससे मुगल सेना देह-स्पर्श न कर पाये, सब जौहरव्रत लेंगी। किन्तु वे दिन अब नहीं हैं।

"किन्तु प्रहरी आज भी वैसे ही खड़े हैं। दिलखुर्शसिंह स्वयं मशाल लेकर आया था। बोला, 'मुख देखूँ।'

"मुख देखते ही खोजा दिलखुर्शसिंह अवाक् हो गया। इतनी कम उम्र की लड़की, और इतना रूप!

"दिलखुर्शसिंह के हाथ में छोड़कर दोनों व्यक्ति फिर अंधकार में खो गये। इस्पात का दरवाजा सशब्द फिर बन्द हो गया। फिर महल के

वाद महल पार करते हुए दिलखुशसिंह और एक छोटी लड़की चलते गये। अन्त में एक कमरे में आ पहुँचे। दिलखुशसिंह का कमरा। कमरे के कोने में पड़े लाल कपड़े में वँधे एक खाते को निकाला। खाते के पन्ने पलटते-पलटते वोला, 'छोकरी, तेरा नाम क्या है?'

"छोकरी वोली, 'मोहर वाई।'

"दिलखुशसिंह ने नाम लिख लिया। फिर ले गया वड़ी रानी के पास। कमरे में झाँककर ऐलान किया। वड़ी रानी तव हुक्का पी रही थीं। अफीम का नशा किया हुआ था। पास में कई सखियाँ-वाँदियाँ सेवा कर रही थीं। सामने पानदान। दिलखुशसिंह की गति अवाध। कमरे के सामने जाकर पुकारा, 'चंद्रावत जी···'

"चन्द्रावत जी—चन्द्रावत वंश की पुत्री वोलीं, 'कौन?'

"दिलखुशसिंह ने सामने जाकर 'मोहर' को आगे कर दिया। वोला, 'सलाम कर।'

" 'यह कौन है?'

" 'नयी आयी है आज। नाम, मोहर वाई!'

"वड़ी रानी ने अच्छी तरह आँख खोलकर देखा, सखियों ने भी देखा, वाँदियों ने भी भली प्रकार देखा। देखकर हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयीं। वोलीं, 'मैया री, एकदम ठंडे शरवत की तरह चेहरा।'

"सव देख-सुनकर मोहर वाई और ताज्जुव में पड़ गयी। कहाँ आ गयी वह! 'राजा का महल दिखायेंगे,' कहकर उसके वाप से सौ रुपये में खरीद लाया गया था। कहा था, 'सेठजी, तुम्हारी लड़की सुखी रहेगी। खा-पहनकर जीयेगी। फिर राजा साहव की नजर में एक वार यदि पड़ गयी, तो क्या कहने!' फिर वैलगाड़ी में चढ़ाकर उसे कहाँ पहुँचा दिया है। मानो परी देश में आ गयी हो।

"वड़ी रानी के कंठस्वर से हठात् उसकी चेतना लौट आयी।

"वड़ी रानी ने कहा, 'ठंडे शरवत जैसा चेहरा, उसका नाम सरवती वाई ही होजाये।' सरवती वाई अंतःपुर में घूमती-फिरती, इस महल से उस महल। झूले के दिनों में फाग मनाती, विवाह-शादी में मिठाई खाती। दीवाली पर नये वस्त्र पहनती, यात्रा-चित्र देखने जाती। गाना सुनती।

अभिनय देखती। पूजा-पर्व में योग देती। और सबकी तरह वह भी महल की एक सदस्य।

"फिर एक दिन वह भी बड़ी हो गयी। दिलखुशसिंह कहता, 'सरबती बाई जी, इतनी दुष्टता मत किया करो, अब तुम्हारी वयस हो गयी है।'

"वयस सत्य ही एक दिन हो गयी। वह वयस होना ही उसके लिए काल हो गया। पाँव में जरी का जूता पहना, वक्ष पर काँचुली, सिर पर ओढ़ना, बालों की वेणी झूल उठी, पाँव में पाजेब, कान में झुमका, गले में हार, सब शृंगार। यह राजमहल का नियम था। यह नियम चला आता है अनादि काल से। अब जो पर्दायत हो गयी हैं—एक समय उन्होंने भी ऐसे ही किया था। पृथ्वी में समस्त सम्पर्क समाप्त हो जाता है। उनके लिए पुरुष एकमात्र राजा साहब। अन्य कोई पुरुष नहीं। इस जगत् में एक व्यक्ति पुरुष और शेष सब नारियाँ। उस पुरुष के मनोरंजन के लिए ही इन असंख्य नारियों का जीवन-यौवन, मान-सम्मान सब कुछ था।

"किन्तु हठात् एक दुर्दैव सरबती बाई के जीवन में घट गया।

"होली का उत्सव। चारों ओर झाड़-फानूस, फूल-पत्ते, लड्डू-मिठाइयों की बहार। नये कपड़े, वस्त्र, जूता, ओढ़ना, घाघरों की आमदनी हो गयी। सबने आना शुरू कर दिया है। दूर-दूर तक खानदानी परिवारों को निमंत्रण गया है। उनके दास-दासी, बहू, बहनें सब आये हैं। किन्तु सभी सरबती बाई की ओर देखते ही चौंक जाते हैं। ऐसा अपूर्व रूप! इतना रूप भी होता है! मानो वह आज सबको हरा देगी। राजा साहब के सामने आज सबको हार माननी होगी। सबकी पोशाक-वस्त्र, गहना, साज-सज्जा सब व्यर्थ। एक सरबती बाई आज सब को किनारे कर देगी।

सब कहते, 'वह कौन है, बहन?'

" 'वह सरबती बाई है।'

"सर्वनाश! राजा साहब की दृष्टि में ऐसा रूप पड़ने देना उचित

न होगा। ऐसी रूपसी को चुपके से ही हटा न दिया गया तो सबको किनारे कर देगी। दिलखुशसिंह को चुपचाप बुला भेजा, बड़ी रानी चन्द्रावत जी ने। उसके बाद क्या बात हुई, कोई नहीं जानता। किसी ने सुनी नहीं वह बात, केवल जब उत्सव हुआ तो सरवती बाई को उस दिन कोई नहीं देख पाया। सरवती बाई तब तालकटोरा की बन्दीशाला के अन्धकार में चुपचाप बैठी थी।

उसके बाद कितने ही वर्ष बीत गये। अब उत्सवों में सरवती बाई का अधिकार चाहे न हो, किन्तु अन्य कामों में बराबर अधिकार है—अधिक गंभीर कामों में। राज्य के भले-बुरे, मंगल-अमंगल के कार्य में उसका व्यवहार किया जाता। जब कोई राजा से शत्रुता करता है अथवा राजत्व के विरुद्ध षड्यन्त्र करता है तब उसके निमित्त रखा हुआ पेय खातिर में देने के लिए इस रूपसी नारी को आगे किया जाता। यही उसका काम था। शत्रुओं का जीवन बरबाद करना। इस प्रकार उनका नाश किया जाता।

"और क्या केवल सरवती बाई! महल में उस काम के लिए हैं मोतिया बाई, अख्तरी बाई, गुलाबी बाई। वे बहुत दिन नहीं जीतीं। तब भी उन्हें जीवित रखना होता। खाने-पहनने को दिया जाता, सुन्दर-सुन्दर पोशाकें दी जातीं। फिर किसी एक रात्रि में दिलखुशसिंह मशाल लिये आता, दरवाजे की चाबी घुमाता और अर्द्ध अन्धकार-पूर्ण कमरे में पटाक से एक विकलांग मूर्ति जा पड़ती। आकर साँप के समान पकड़ लेती। फिर रात्रि के रोमांचपूर्ण क्षणों को घटने में पाँच या सात घड़ी मात्र लगतीं। दिलखुशसिंह फिर से बाहर निकाल ले जाता। फिर पुनः, फिर दिन में पुनः जिससे अच्छी तरह रक्त के अणु-परमाणुओं में जीवाणु मिल जायें। अच्छी तरह अस्थि-मज्जा-मांस की जड़ों को पकड़ लें। कहीं कोई कसर न रह जाये।

"मोतिया बाई, अख्तरी बाई, गुलाबी बाई, सबके जीवन में इसी तरह हुआ, और सरवती बाई के जीवन में भी हुआ।

"बड़े गाजी के सेठ खानदानी व्यक्ति। किन्तु भीतर-ही-भीतर उनका बड़ा स्वार्थ। रतनगढ़ के नवाब के पास जाकर नाहारगढ़ के राजा साहब

की निन्दा करते। जमींदार-प्रजा के ऊपर हमला करते; बैल, घोड़ा, ऊँट आदि चोरी कर लेते, बड़े गाजी के सेठ की वास्तविकता यह है। उन्हें वश में करना होगा। रेजिडेंट साहब को दरखास्त देकर अपील, अदालत जो कुछ है वह तो होगी ही, किन्तु सेठजी को वश में करना अपेक्षित है। एक दिन खातिर के लिए उन्हें बुलाया गया। पेट भर खाना खिलाया गया। शराब आयी। बाईजी आयी और काफी रात गये आयी गुलाबी बाई। गुलाबी बाई के संग एक बिछौने पर सेठजी ने रात काटी। और सेठजी की अस्थि-मास-मज्जा में गुलाबी बाई की समस्त प्रतिशोध-कामना प्रतिहिंसा के रूप में चिरस्थायी हो गयी। उसके बाद चार या पाँच बरस। राजा साहब के सब शत्रु इसी प्रकार नष्ट हो गये।

"सरवती बाई केवल कातर दृष्टि से देखती और क्षीण कंठ से कहती, 'मुझसे तुमने शादी क्यों की, बाबूजी, हम लोग शादी के योग्य नहीं हैं।'

"इस बार किन्तु कुछ और घट गया। राजा साहब भी नहीं जानते। यह दिलखुशसिंह, बड़ी रानी और लाल जी साहब का काण्ड था। तीन हजार से पचास हजार की जागीर बंगाली डॉक्टर चालाकी से हथिया ले गया। राजा साहब डॉक्टर साहब की बात पर उठते हैं। उसे वश में करना होगा। रोज शतरंज होती है तहखाने में। जब जल के लिए राजा साहब ताली बजायेंगे, तो जल लेकर जायेगी सरवती बाई।

"सवेरे से दिलखुशसिंह बहुत-सी पोशाक-वोशाक दे गया है। कुम-कुम, फूल-पहुँची, कंगन, माथे की बिंदी। 'अच्छी तरह सजाओ, अच्छी तरह, घिस-माँजकर मोहिनी मूर्ति बनो, खेल का मोह भंग करो। नहीं, आपत्ति करने से नहीं चलेगा, राजा के भले-बुरे के लिए सब स्वार्थ त्याग करना होगा। रोने से भी नहीं चलेगा।'

"उसके बाद मोहिनी मूर्ति सजाकर तहखाने के पास वाले कमरे में सरवती बाई को बिठा दिया गया।

दिलखुशसिंह बोला, 'राजा साहब के तीन बार ताली बजाते ही समझ लेना कि जल चाहते हैं, दो बार हाथ ताली दें तो अर्क, एक बार देने

पर समझना तम्वाकू ।'

"राजा साहव ने ताली वजायी तीन वार ।'

सदानन्द वावू वोले थे, "फिर एक वार गया था साहव, नाहारगढ़। उस वार भी वही रसगुल्ले की फरमाइश, सरवती वाई के विवाह के समय रसगुल्ला खाकर खूव अच्छा लगा था, फिर वही हुकुम मिला था तो गया। तव राजा दलजितसिंह की मृत्यु हो गयी थी। खोजा दिलखुशसिंह और वड़ी रानी चन्द्रावत जी का राजत्व। वड़े कुँवर साहव गद्दी पर वैठे थे। डॉक्टर की अव वैसी खातिर नहीं थी। डॉक्टर तव एक कुकर्म कर वैठा था।"

सदानन्द वावू ने कहा, "भीषण कांड! सारा जीवन, साहव, ऐसा कांड किसी ने सुना न होगा।"

मैंने पूछा, "और वनलता?"

"—कौन वनलता?" सदानन्द वावू पहचान न पाये। वोले, "एक महिला को देखा अवश्य था—"

"—देखने में कैसी थी?"

"यों वनलता राय देखने में कुछ ऐसी अच्छी नहीं थी। एक तरह सामान्य, पर लोग कहते—मुख की वनावट कुछ ऐसी मोहक है, जिसके कारण एक दिन सुधामय, शायद रसिकता के लोभ को संवरण नहीं कर पाया था। उस दिन उसका मूल्य भी देना पड़ा था। सारा जीवन उसका मूल्य देना पड़ा था उसे और वह मूल्य क्या कम मर्मान्तिक था!

"सरवती वाई जिस दिन मरी, उस दिन सुधामय नदी-प्रवाह से सीधा अपने कमरे में आकर वैठ गया। वह जिस कमरे में घुसा, फिर आजीवन उससे वाहर नहीं निकला। उसके वाद कव सवेरा होता, कव संध्या होती, कव सारा नाहारगढ़ निद्रा में अचेतन होता, कोई खवर न रखता। किसी-किसी ने देखा है। रास्ते में पास से गुजरते हुए दिखाई देता कि डॉक्टर कमरे में वैठा-वैठा कुछ लिखता है। पन्नों पर पन्ने। लोग वीमार होते। डॉक्टर के पास औषधि लेने आते।

"पूछते, 'डॉगदर साहव हैं!'

"नौकर आकर कह जाता, 'नहीं, साहव अव डॉक्टरी नहीं करते···'

"अनेक रात्रि, पुस्तक पढ़ते-पढ़ते सुधामय पन्नों के ऊपर दोनों नेत्र स्थिर कर लेता, मानो ध्यान में बैठा हो ! सरवती बाई यंत्रणा मे मारी गयी। डॉक्टर की औषधि उसे नही बचा पायी। डॉक्टरी-विद्या उसके कोई काम नही आयी। पृथ्वी की कोई औषधि रोग दूर नही कर पायी। किसी-किसी दिन वह सरवती बाई के पास बैठा तीक्ष्ण दृष्टि से केवल उसे देखता, पूछता—'आज कैसी हो ?'

"सरवती बाई केवल नेत्रों से बात करती।—अन्तिम दिनों मे उसमें बात करने की शक्ति नही रही थी, मानो कहना चाहती हो, 'मुझसे शादी क्यों की, बाबूजी ?'

"सुधामय बोला, 'और एक इंजेक्शन देता हूँ। वह देकर कैसा रहता है, देखूं···!'

"एक के बाद एक औषधि—कलकत्ता से, बम्बई से मँगवाना, और सरवती बाई को देता। पुस्तक पर पुस्तक खरीदता और पढ़ता। लगता, यह मरुभूमि प्रदेश का विचित्र रोग है। इस रोग की बात किसी ने पहले नही लिखी। सरवती बाई का समस्त शरीर आहिस्ता-आहिस्ता गलना शुरू हो गया। फिर वाणी बन्द हुई। फिर अन्धी हो गयी। वह यंत्रणा देखी नही जाती, फिर भी सरवती बाई का समस्त शरीर वह अपने दोनों हाथों मे लेकर धोता ! समस्त शरीर दुर्गन्धित ! जो इतनी सुन्दरी ! इसी के सौन्दर्य को देख एक दिन सुधामय अवाक् हो गया था। अब वह बात सोची भी नही जा सकती। वह कई महीने तक खूब अच्छी रहती। फिर बीमार हो जाती, फिर ठीक हो जाती और फिर वही।

"सारा मकान सॉय-सॉय कर रहा था। चारों ओर निस्तब्धता पश्चिम दिशा से केवल खजूर के पत्तों की सूखी हवा मे खरखर आवाज आ रही थी। एक पक्षी निःशब्द उड़ता हुआ जाते-जाते शायद हठात् पंख फड़फड़ाकर दिशा-परिवर्तन कर उठा। सरवती बाई जिस कमरे मे लेटी रहती थी, वह आज खाली है। फिर भी उस ओर देखकर सुधामय को लगा मानो कोई रो रहा है। सरवती बाई के रोने का स्वर। ठीक वैसा ही स्वर। कह रही है, 'मुझसे शादी क्यों की, बाबूजी ?' अस्फुट स्वर मानो आहिस्ता-आहिस्ता पुन बहुत दूर विलीन हो गया। समस्त

नाहारगढ़ मानो स्थिर हो गया है। लेक के किनारे बंगले में नये रेजिडेंट आ गये हैं। नये साहब। राजप्रासाद से नये सिरे से मूल्यवान् उपहार साहब को भेजे गये। राजा साहब भी नये और रेजिडेंट भी नये। किन्तु, बड़ी रानी भी हैं और खोजा दिलखुशसिंह भी है। राजप्रासाद का समस्त चक्रांत साहब की दृष्टि से ओझल रखना होगा। सरवती बाई गयी, मोतिया बाई गयी, अख्तरी बाई, गुलाबी बाई भी शायद चली गयी हों। उनकी जगह शायद किसी और 'बाई' ने ले ली हो। सरवती बाई के कमरे में शायद कोई और लड़की बंदी हो। फिर यदि राजा साहब को कोई हटाना चाहे तो पुनः किसी सरवती बाई को सजाकर सोने के घड़े में जल लेकर तहखाने में हाजिर होना पड़ेगा। तब फिर मुक्ति कहाँ!

"डॉक्टरी की पुस्तक पढ़ते-पढ़ते हठात् सुधामय खड़ा हो गया। कितने दिन से दाढ़ी नहीं बनायी थी। कमरे में बत्ती जगमगा रही थी, सारा चेहरा आईने में वीभत्स हो उठा था। मानो सरवती बाई हठात् अलक्ष्य बोल उठी हो, 'मुझसे तुमने क्यों शादी की, बाबूजी ?'

"इस 'क्यों' का उत्तर सुधामय से देते नहीं बना। तब सरवती बाई का समस्त शरीर पंगु हो गया था। बात नहीं कर सकती। लोग पहचान नहीं पाते। आँख, नाक, कान, मुँह सब विकलांग हो गये। कहाँ गया वह रूप ? कहाँ गयी सरवती बाई ? अंधकारपूर्ण रात्रि में सरवती बाई का विकृत रूप नेत्रों के सामने जल उठता। केवल दीवार पर टँगी आयल पेंटिंग निर्वाक् देखती रहती। उस दिन सवेरे-सवेरे सुधामय ने डॉक्टर माधोलाल को बुलवाया था।

"बोला, 'आज से जो आये, कहना मेरे साथ भेंट नहीं होगी···'

"माधोलाल बोला, "यदि राजा साहब इत्तिला भेजें ?'

"सुधामय बोला, 'तो भी नहीं।'

" '—यदि रानी साहब इत्तला भेजें ?'

" '—तो भी नहीं।'

" 'यदि···'

" '—कोई नहीं!' सुधामय का कोई नहीं है। सरवती बाई के अतिरिक्त इस लोक-परलोक में उसका कोई नहीं है।"

तैंतीस मील का रास्ता, बैलगाड़ी झूमती हुई चल रही है, तब रात बाकी थी। बबूल के पेड़ों का जंगल पार कर कच्चे रास्ते में चलना होगा। कुहाँसे भरा दिन। हिन्द महासागर के किनारे-किनारे नमक का ढेर। धूप लगते ही चिपचिप करता। केवल पंडा ईश्वरीप्रसाद बात करता चल रहा है।

यह भी आज से कितने दिन पहले की बात है। सब स्पष्ट स्मरण भी नहीं।

आज तुम्हारी चिट्ठी का उत्तर देते समय याद करने की चेष्टा कर रहा हूँ सुचेता। अजमेर के सदानन्द बाबू से सुधामय डॉक्टर के बारे में सब सुनने को नहीं मिला। सदानन्द बाबू सब जानते भी नहीं थे। रसगुल्ले बनाने का आदेश पाकर नाहारगढ़ जाकर डॉक्टर को जैसा-जैसा देखा वैसा ही मुझे बताया था। प्रथम बार सुना टुकू मौसी से कलकत्ता में, फिर अजमेर में। बार-बार अंश-अंश में कहानी सुनकर अधूरी-पूरी कहानी मिली है। और आज सुन रहा हूँ शेष! बनलता राय कैसे बनलता मित्र बनी, वही कहानी।

ईश्वरीप्रसाद बोला, "पैसा तो डॉक्टर माँ लेती नहीं, डॉक्टर माँ के अस्पताल में किसी का पैसा नहीं लगता···मानो पैसे का एक दिन कितना *अभाव था बनलता को!*

"सरला दी ने कहा था, 'सब खरीद-वरीद हो गया बनलता दी?'

"बनलता बोली, 'आज पैसे नहीं हैं, भाई···'

"सरला दी बोली थीं, 'जाकर चिट्ठी भेजना, लेकिन···'

"किन्तु सरला दी के जाते ही याद आ गया। सुधामय के लिए कपड़े खरीदे। भाई-दूज से पहले दिन नाहारगढ़ पहुँचेगी। रेल का किराया देने के बाद कुछ शेष न रहा, हठात् ध्यान आयी एक बात। फिर दूकान जाना पड़ा। बोली, 'एक पैकेट सिंदूर दीजिए···बढ़िया सिंदूर···'

"दूकानदार ने एक बार बनलता की सूनी माँग की ओर देखा, फिर पैकेट देकर मानो अवाक् रह गया। दाम लेते समय बनलता के मुख की ओर देखकर मुँह बाये कुछ देर देखता रह गया। बनलता ने जल्दी से दृष्टि नीची कर ली। उसका मुँह और नेत्र सिन्दूर की तरह कैसे लाल हो गये

थे। सबको मालूम हो गया था न !

"सुधामय के मुख से सुनने की प्रतीक्षा पर निर्भर करके वनलता अब देरी नहीं कर सकती। अब छब्बीस छत्तीस तक जा पहुँचा था। रात्रि में ड्यूटी करने जाती तो नींद न आती। और सारा दिन नींद आँखों में झूमती। केवल आँखों में ही क्या, मन में भी क्लांति उतर आयी थी। यह क्लांति समस्त देह को आच्छन्न कर चुकी थी। फिर भी कहीं मानो विराट् असंपूर्णता, निःसहाय निरवलंब अपार शून्यता ! वनलता ने ट्रेन में चढ़कर बार-बार सोचने की चेष्टा की''' कोई अन्याय करने तो नहीं जा रही है वह ? उसकी वयस छत्तीस और सुधामय की तैंतीस। आज के इस तैंतीस मील फैले पथ की तरह सुदीर्घ। छाया है किन्तु प्रथम धूप के तेज में क्या सुधामय ने कभी छाया का आश्रय नहीं खोजा ? क्या वह कभी छाया के निविड़ आश्रय के संधान के लिए आकुल नहीं हुआ ? फिर उसने चिट्ठी लिखनी क्यों छोड़ दी ? वनलता की एक भी चिट्ठी का वह जवाब क्यों नहीं देता ?

"माधोलाल ने बंगाली लड़की देखकर पहले आपत्ति की थी। बोला था, 'भेंट नहीं होगी।'

"वनलता ने कहा था, 'भेंट क्यों नहीं होगी ?'

" 'डॉक्टर बाबू का हुक्म।'

"वनलता ने कहा था, 'तुम कहो, मैं मिलूँगी ही। मैं बहुत दूर से आयी हूँ। कलकत्ता से।'

"माधोलाल बोला, 'डागदर साहब किसी से भेंट नहीं करते हुजूर, केवल औषधि खाते हैं और लिखते हैं।'

" 'क्या लिखते हैं ?'

"माधोलाल ने कहा था, 'लिख-लिखकर कापियाँ भरते हैं। कापियों के ढेर से पूरा कमरा भर गया है।'

मैं ईश्वरीप्रसाद के संग डॉक्टर माँ के अस्पताल में जिस दिन गया था, उस दिन वनलता मित्र ने मुझे वे सब कागज दिखाये थे। वनलता मित्र को उस दिन बहुत वर्ष बाद सर्वप्रथम देखा था। समस्त केशराशि सीधी सरल। थान का कपड़ा, सादी शमीज। अस्पताल के सब रोगियों

पर उनकी नजर। सब रोगी वनलता को 'डॉक्टर माँ' पुकारते। दूर समुद्र का जल कलकल कर रहा था। वनलता की बैठक से बाहर के उस दृश्य के साथ 'डॉक्टर माँ' के चेहरे में मानो कहीं सादृश्य था। मानो वैसा ही विराट, वैसा ही प्रशस्त।'

वनलता देवी बोलीं, "डॉक्टर मित्र उन खातों मे प्रथम दिन से लेकर सब परिचय दे गये हैं, छोटी-से-छोटी बात, सब। मैंने अनेक खाते कॉपी करके जर्मनी भेज दिये हैं, उससे नये तथ्यों का आविष्कार होगा, ऐसा उन्होंने चिट्ठी में लिखा है, देखिए वह चिट्ठी।"

हमारे लिए जलपान आया। देखा, वनलता के जीवन में स्थिरता मानो इतने दिन मे आयी है। मानो इतने दिन की यही सत्य-साधना, इसी परिपूर्णता की ओर वह एकाग्रचित्त से एकलक्ष्य होकर आयी है। प्रथम यौवन की प्रमत्तता का कोई लक्षण उसमे शेष नही था। [जिस दिन प्रथम नाहारगढ में आयी थी, उस दिन उनका चित्त स्थिर नही था।

सुधामय ने कहा था, "तुम क्यों आयी वनलता ?"

वनलता ने कहा था, "मैंने बहुत देर कर दी। और अपेक्षा नही कर सकी। तुम मुझे कब स्वयं आने के लिए लिखोगे इनकी प्रतीक्षा भी मेरे लिए असह्य हो उठी थी।"

"किन्तु मैं जो···"

वनलता बोली थी, "मैं तुम्हारी कोई बात नही सुनूँगी, मैं कलकत्ता मे सिंदूर खरीदकर ले आयी हूँ···"

सुधामय के आपत्ति करने से पूर्व उसका हाथ पकड लिया वनलता ने। सुधामय कहने ही जा रहा था कि 'मुझे छूना मत वनलता' कि पहले ही उसने सुधामय के हाथ से अपनी सूनी माँग मे जबर्दस्ती सिन्दूर भरवा लिया। उसके बाद सुधामय के पाँव छूकर माथे से लगाती हुई बोली, "तुमसे जबर्दस्ती अपनी सूनी माँग मे सिंदूर भरवा लेने मे मुझे कोई लज्जा नही। लज्जा करने का समय भी नही है···।" सुधामय की अंगुलियाँ तब एक-एक करके गलने लगी थीं। सारे शरीर में घावों से पीप बह रहा था। आँखों से भी अच्छी तरह दिखाई देना बन्द हो गया था। दो दिन बाद, शायद, कान से भी सुन न पायेगा। तब भी सुधामय के नेत्रों के कोने में

मानो एक क्षीण-सी हास्य-रेखा चमक उठी थी। बोला, "तुम इतनी देरी करके क्यों आयीं वनलता ?"

वनलता सुधामय के दोनों हाथ पकड़कर बोली, "होने दो, और देरी तो नहीं की, यही मेरा भाग्य···"

सुधामय बोला, "किंतु उस तुच्छ सिंदूर को छोड़कर मेरा और किसी प्रकार का संपर्क तुम्हारे संग नहीं होगा···"

"···कौन कहता है नहीं होगा ?"

सुधामय बोला, "सचमुच नहीं होगा। संपर्क रहने पर मेरी सारी तपस्या जो मिथ्या हो जायेगी। सरवती बाई जिस प्रकार, जितना कष्ट पाकर मरी है, वह समस्त कष्ट मैं भी पाकर मरना चाहता हूँ। और यदि मेरे लिखे हुए ये खाते विलायत या जर्मनी भेज दो, तो वे शायद सरवती बाइयों को फिर बचा सकेंगे।"

ईश्वरीप्रसाद बोला, "फिर वही पचास हजार की जागीर बेचकर डॉक्टर माँ ने यहाँ एक अस्पताल खोल दिया है, जितने पारा-रोगी आते हैं, सबकी बिना खर्च चिकित्सा की स्वयं व्यवस्था करती हैं। डॉक्टर है। स्वयं उस विद्या को वे जानते ही थे। जैसे डॉक्टर सुधामय की मृत्यु के शेष दिन पर्यन्त सेवा की थी उसी प्रकार यहाँ के रोगियों की सेवा करती हैं। बंगाल देश की बात ही भूल गयी हैं, यही देश डॉक्टर माँ का देश हो गया है।"

ईश्वरीप्रसाद से मैंने पूछा, "किंतु सरवती बाई का रोग डॉक्टर को कैसे हुआ ?"

ईश्वरीप्रसाद ने बताया था, "डॉक्टर ने स्वेच्छा से अपने शरीर में इंजेक्शन जो ले लिया था।"

"कैसा इंजेक्शन ?"

ईश्वरीप्रसाद बोला, "उसी पारा रोग का।"

पता नहीं, तुम्हें आज जो चिट्ठी लिख रहा हूँ इससे तुम्हारे जीवन में परिणति का कोई अभाव नहीं होगा। किन्तु एक बात मैं स्वयं नहीं समझ पाया हूँ—आज भी, इतने दिन बाद भी, उस दिन की। ओखा

पोर्ट से बबूल के पेड़ों के बीच कच्चे रास्ते से बैलगाड़ी में चलते-चलते और ईश्वरीप्रसाद की कहानी सुनते-सुनते तब भी अपने मन-ही-मन प्रश्न किया था।

सुधामय ने क्यों अपने शरीर में सरवती बाई के रोग का इंजेक्शन लिया था?

वह क्या पृथ्वी से सिफलिस दूर करने की साधना थी, या सरवती बाई की समस्त यन्त्रणा अपने शरीर में खींचकर स्वस्थ और सुन्दर सरवती बाई को पाने की? जाने दो। मेरी यह कहानी किसको लेकर है, यह भी मैं शायद ठीक से बता नहीं पाऊँगा आज। इसकी नायिका कौन है? सरवती बाई या वनलता देवी? साधारण पाठक जो इच्छा हो, सोच लें— तुम्हें भी क्या उस सम्बन्ध में कोई संशय है?

यह कहानी यहीं शेष हो जाती तो शायद अच्छा होता। किन्तु वह कहानी मेरी कहानी न होती। हाँ, जब लौट रहा था तो वनलता देवी बोली, "आप लोगों को एक चीज और दिखानी शेष है। आइए, देखिए···"

वनलता देवी मुझे बगल के एक कमरे में ले गयीं। ईश्वरीप्रसाद तब समुद्र के किनारे हाथ-मुँह धोने गया था। यह कमरा अपेक्षाकृत बड़ा था। अधिक सजा हुआ। अनेक वस्तुओं से अत्यन्त सजाया हुआ। वनलता देवी बोलीं, "यह देखिए, यहाँ डॉक्टर मित्र की सब वस्तुएँ सजाकर रखी गयी हैं, जो जूता पहनते, जो कपड़े, जो वस्त्र व्यवहार में लाते, सब! उनकी सब वस्तुएँ, उनका कंघा, उनका चश्मा, उनके जड़े हुए दाँत··· और वह देखिए, डॉक्टर मित्र का चित्र।"

मैंने देखा—दीवार पर एक विराट तैलचित्र। सोने के फ्रेम में जड़ा —एक ओर डॉक्टर सुधामय, सिर पर पगड़ी बाँधे, वर की पोशाक में। और उनके पास सरवती बाई का चित्र। जाफरानी ओढ़ना, गुलाबी घाघरा। राजपूत वधू के वेश में—जिस चित्र के बारे में सदानन्द बाबू से सुना था—नाहारगढ़ के राजा साहब ने जो चित्र तैयार कराके उनको विवाह में दिया था।

मैं दत्तचित्त उस ओर देखता रहा।

वनलता देवी बोलीं, "मुझे पहचान पाते हैं ?"

मैं कैसा अवाक् रह गया था !

वनलता बोलीं, "डॉक्टर मित्र के पास—वह मैं ही तो···"

मैं बोला, "आप तो पहचान नहीं पड़तीं ?"

वनलता बोलीं, "तब वयस कम थी न, उस वयस में मैं भी देखने में खूब सुन्दर थी, खूब गोरी। राजा साहब को बड़ा शौक था कि मैं राजपूत लड़की की पोशाक पहनकर चित्र खिचवाऊँ। राजा साहब ने स्वयं खड़े होकर हमारा विवाह कराया था न—"

एक बार इच्छा हुई, पूछूं—सरदती बाई को आप पहचानती हैं ?

किन्तु मेरे चेहरे-मोहरे का भाव देखकर शायद उन्हें सन्देह हो गया। बोलीं, "इसके अलावा दोनों ही वयस में तब कम थे।"

फिर उन्होंने मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से एक बार देखा।

किन्तु एक क्षण में ही अपने को पुनः सँभाल लिया।

मैंने कहा, "कितनी ?"

वनलता देवी बोलीं, "वे तब कुल तेईस और मैं छब्बीस···"

क्या हम लोग सभी अभिनेता हैं ? हम पुरुष मात्र ही ?

कभी-कभी सोचने पर देखता हूँ कि हम लोग हर समय अभिनय ही कर रहे हैं। किन्तु जन्म से मृत्यु तक हम अपने आपको किस हद तक दिखा पाते हैं। अपने आपको कहाँ तक पहचान सका हूँ या दूसरों को ही कहाँ तक दिखा सका हूँ ?

मेरी ये सभी भावनाएँ बहुत पुरानी हैं। बचपन से ही मैं मनुष्य मात्र को पहचानने की कोशिश करता आ रहा हूँ और साथ-ही-साथ अपने आपको भी दूसरों के निकट जताने की चेष्टा करता रहा हूँ। इससे दुःख घटने के बजाय बढ़ा ही है। दोस्तों से अलग होना पड़ा है, गृह-विवाद बढ़े हैं, और इन सबों के बीच मैं दिन पर दिन अकेला होता गया हूँ।

ऐसा होने पर भी मुझे दुःख नहीं है। जितना अधिक मैं अकेला रहा उतना ही अधिक मैं लोगों के विषय में निरपेक्ष विचार कर सका हूँ। लोगों से अलग रहकर ही लोगों के और अधिक निकट जा सका हूँ। दर्शन की भाषा में इसे यों कह सकते हैं—वियोग से ही योग की साधना।

लेकिन नारी ?

यही मुझे हमेशा मुश्किल होती है। आज की नारी तथा उस युग की नारी में जमीन-आसमान का अन्तर पड़ गया है। आज रास्ता, बाजार तथा दफ्तर में—हर जगह नारी है। पुरुष नारी के साथ आमने-सामने बैठकर रोज-ब-रोज नौकरी करता है। जो रहस्य घूंघट के भीतर छिपा था, वह धूल-धूसरित हो गया है। एक ही साथ रहने के कारण पारस्परिक झुकाव मिट चुका है। फिर भी कहूँगा कि पुरुष अथवा नारी किसी का भी अभिनय आज तक बन्द नहीं हुआ है। हम सभी अभी भी अभिनय कर रहे हैं। दूसरों के नजदीक भी अभिनय करते हैं और अपने आपमें भी। आज हमारे जीवन में घर और बाहर एक-सा हो गया है।

इसी तरह अभिनय करते-करते अभिनय मनुष्य के जीवन का एक

अंग-सा बन गया है। हर समय यह समझना मुश्किल हो गया है कि कौन-सा अभिनय है या कौन-सा स्वभाव। यही कारण है कि कभी-कभी स्वभाव को भूल से हम अभिनय समझ लेते हैं, अथवा अभिनय को ही स्वभाव।

ऐसे ही एक को मैं जानता हूँ। यद्यपि वह अभिनेत्री नहीं थी, फिर भी अभिनय करते-करते अभिनय करना ही उनका स्वभाव हो गया था। उस का नाम था रंगना।

ऐसा नहीं कि उसे मैंने अपनी आँखों से देखा है, उसके सम्बन्ध में मैंने सुना है। यह भी प्रायः देखने की ही तरह है। इसके अलावा, क्या अपनी आँखों देखने से ही वास्तव में देखा जाता है? सत्य देखने की चीज नहीं है; असल में वह एक उपलब्धि है। उपलब्धि रूपी रस की सहायता से शोध करने पर ही सत्य का स्वरूप सामने नजर आता है।

एक नटनी की कहानी कहता हूँ :

जयपुर से प्रायः चालीस मील की दूरी पर किसननढ़ है। किसनगढ़ की प्रसिद्धि के अनेक कारण हैं। वहीं रूपनगर नाम का एक गढ़ है। उसी रूपनगर को आधार मानकर बंकिमचन्द्र ने 'राजसिंह' नाम का अपना एक उपन्यास लिखा है।

परन्तु वह प्रसंग ही दूसरा है।

दूसरा प्रसंग होने के बावजूद भी इस कहानी के सम्बन्ध में एक बात कह देने की जरूरत है। क्योंकि किसनगढ़ के डॉक्टर धरनी कुमार-सरकार के साथ अगर मेरी मुलाकात न होती तो नटनी के बारे में मैं जान भी नहीं पाता।

डॉक्टर धरनी कुमार सरकार का अपना एक मकान किसनगढ़ में है। डॉक्टर सरकार का यह मकान राजस्थान के बंगाली यात्रियों का एक निवास-स्थान है। यद्यपि वे खुद डॉक्टर हैं, फिर भी यदि किसी बंगाली को देख पाते हैं तो उसे एक रात उनके यहाँ रहकर खाना और सोना ही पड़ेगा।

आजकल के इस परश्री-कातर युग में, जहाँ एक-दूसरे को छोटा

दिखाने की कोशिश रहती है, डॉक्टर घरनी कुमार सरकार अपवाद स्वरूप हैं।

एक दिन मैं भी उस पथ का पथिक रह चुका हूँ। अवसर अथवा मौका मिलने पर राजस्थान जाने की मेरी प्रबल इच्छा रहती है।

इसलिए जब पहली बार वहाँ गया था तो अजमेर से उधर नहीं लौट सका। सीधा आबू पहाड़ होते हुए ओखा-पोर्ट और द्वारिका की ओर चला गया था।

लेकिन फिर जब १९३२ ई० में वहाँ गया तो उस समय यह निश्चय कर लिया था कि जयपुर में ही रहूँगा।

समीर राय मेरे घनिष्ठतम मित्रों में से हैं। वह जयपुर के बाशिन्दा हैं। अनेक वर्षों से पत्र लिखते—'एक बार जयपुर आइए। मैं आपके लिए मकान ठीक कर रखूँगा।'

उस समय भी, जब मैं अजमेर गया था, उन्होंने कहा था। उसके बाद से वह हर वर्ष पत्र लिखते आ रहे हैं। किन्तु जाना क्या इतना आसान है? घर छोड़कर, काम-काज छोड़कर घर में कौन बाहर निकल पाता है?

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है—

"जड़ाये आछे बाधा
छाड़ाये जेते चाइ।
छाड़िते गेले बुके बाजे!"

अर्थात् बाधाएँ फैली हुई हैं। उनकी पकड़ से मैं छूटना चाहता हूँ। किन्तु इससे मेरे हृदय में तकलीफ होती है।

खुद उन्होंने ही आगे लिखा है—

"देशे देशे मोर घर आछे
आमि सेई घर मरि खूँजिया।"

अर्थात् दुनिया के हर कोने में मेरा घर है। वही घर ढूंढते-ढूंढते मैं हैरान हूँ!

यही दुरंगी चाल तो मनुष्य का जीवन है। जीवन की इस तानी-भरनी की ढरकी को चलाने वाला कोई एक अदृश्य देवता है। [illegible]

इशारे पर हम चलते हैं और अपनी शक्ति के घमंड में पृथ्वी को अपने पदभार से हिला देने की स्पर्धा दिखाते हैं।

किन्तु मैं समझ न सका हूँ। क्योंकि वही अदृश्य देवता हम लोगों से छिपे रहकर हमीं लोगों के द्वारा सिर्फ अपनी भीतरी इच्छा की पूर्ति करा लेता है। हम लोग न तो देख ही पाते हैं और न समझ ही सकते हैं।

अजमेर के 'बंगाली स्वीट्स' की दूकान को बहुतों ने देखा होगा। उस दूकान की मिठाई भी बहुतों ने खायी होगी। साथ में दाल-भात का होटल भी है।

दूकान के मालिक केदार मुखर्जी को भी बहुतों ने देखा होगा। उनके साथ शायद बातचीत भी हुई होगी बहुतों की।

उन्होंने ही उस बार कहा था—"क्या आप किसनगढ़ नहीं जायेंगे?"

मैंने पूछा—"क्यों? किसनगढ़ में क्या रखा है?"

केदार मुखर्जी बोले—"क्यों, वहाँ डाक्टर धरनी कुमार सरकार हैं..."

चूंकि उस समय मेरे पास समय नहीं था, इसलिए किसनगढ़ की ओर लौट नहीं सका। सीधा आबू-पहाड़ की ओर चला गया था।

लेकिन इस बार दूसरा ही इरादा था। जयपुर में पूजा बिताने के बाद किसनगढ़ होते हुए चित्तौड़ और उदयपुर जाने की बात थी। बीच ही में किसनगढ़ पड़ता है।

मैंने पहले ही खबर भेज दिया था। जाकर देखा राजसूय का-सा धूमधाम। खटिया-बिछौना के साथ-साथ खाने-पीने का भी सभी इन्तजाम मौजूद है।

डॉक्टर साहब ने कहा—"यहाँ कुछ दिन रह लेने के बाद ही आप जा सकेंगे..."

एवमस्तु!

इसके अलावा इतना आदर-सम्मान मिलने पर मन लगना स्वाभाविक ही है। स्नेह से बढ़कर जीवन में और दूसरी चीज नहीं है। जो किस्मत के धनी हैं, उन्हीं को वह मिल पाता है।

किसनगढ में मैं ठहर गया। कई दिनों तक डॉक्टर साहब के साथ खूब इधर-उधर घूमा। डॉक्टर साहब किसनगढ के मशहूर व्यक्ति हैं। बीस-पचीस मील की दूरी के गाँव से भी उनकी बुलाहट आती है। साथ में मैं भी रहता हूँ। इस तरह राजस्थान के गाँवो की भीतरी चीजों को भी देखने का मौका मिल जाता है।

अचानक एक दिन उन्होंने कहा—"वह देखिए, वह नटनियों का एक गाँव है···"

"नटनी !"

मुझे यह बात नयी मालूम पड़ी। नटनी माने ?

डॉक्टर साहब ने समझा दिया—"नटनी का पेशा ही नाच और गान है। यदि उसे पैसा दिया जाय तो वह आपके और हमारे घर पर भी आकर नाच और गा सकती हैं। यदि किसी के घर शादी-विवाह होता है तो वे आती हैं, नाचती और गाती हैं। खाना भी खा लेती हैं। ऊपर से उन लोगों के खेती-बाड़ी भी है। इसके अलावा जो ऐसा नहीं कर पाती, अर्थात् जो देखने में अच्छी नहीं हैं, वे दूसरा ही रोजगार करती हैं।"

इसी समय बाहर से कोई रोगी आया और वे उसी के साथ उलझ गये। मैं भी उनके सम्बन्ध मे और आगे नही पूछ सका।

जिस तरह राजस्थान के और सभी गाँव छोटे-छोटे हैं उसी तरह इन नटनियों के भी गाँव छोटे ही होते हैं। कोई फर्क नही। गाँव के बाहर चारो ओर खेत और मैदान। खेतों मे लहलहाते गेहूँ और बाजरा। पीला रंग लिये मैदान। दूर-दूर पर खड़े पहाड़ और उन्ही के बीच बसे हुए गाँव।

अब तक वह रोगी जा चुका था।

मैंने पूछा—"उन लोगों को भी तो बीमारी होती होगी, वहाँ से भी तो आपका काम आता होगा···"

डॉक्टर साहब ने कहा—"जरूर। वे लोग खूब पैसा देते हैं। उनकी हालत भी बड़ी अच्छी है।"

"और पुरुष क्या करते है ?" मैंने पूछ लिया।

उन्होंने कहा—"वे ढोल वजाते हैं, नटनियों की देख-रेख करते हैं। जहाँ नटनियों को मुजरे में बुलाया जाता है, वहाँ वे उनके साथ जाते हैं। गीत भी गाते हैं। इसके अलावा वहुत से लुच्चे-लफंगे लोग भी तो हैं। यदि सच कहा जाय तो राजस्थान है ही डकैतों का देश। यहाँ डकैती ही वहुतों का पेशा है। इसलिए औरतों के साथ मर्दों को भी जाना पड़ता है। इतना होते हुए भी कितनी सारी खून-खरावी हो चुकी है, इसका क्या कोई ठिकाना है···"

गाड़ी चलाते हुए डॉक्टर साहव वातचीत कर रहे थे।

थोड़ी देर चुप रहकर उन्होंने कहा—"इस वार जिस दिन उस गाँव से कॉल आयेगा, आपको भी साथ ले चलूँगा। अनेक प्लॉट पायेंगे···"

मैंने कहा—"प्लॉट के लिए नहीं, मैं नये-नये लोगों को देखना पसन्द करता हूँ···"

वे वोले—"क्यों? यदि ऐसी वात हैं तो वे लोग मेरे औपधालय में ही आते हैं···"

"कहाँ? मैंने तो नहीं देखा।"

उन्होंने कहा—"अच्छी वात है। इस वार आने पर मैं आपको दिखाऊँगा···"

उसके वाद उन्होंने फिर कहा—"उन नटनियों को आप राजस्थान में हर जगह पायेंगे—जयपुर, जोधपुर, वीकानेर, मेवाड़, चित्तौड़गढ़ आदि जगहों में। परन्तु उदयपुर में कोई नटनी नहीं है···"

"क्यों? आखिर इसका कारण?"

इसपर मुझे ताज्जुव हुआ।

डॉक्टर साहव ने कहा—"यह एक वड़ी करुण कहानी है। जो भी हो, आप पहले उदयपुर से हो आइए, फिर मैं आपको वताऊँगा···"

मेरी जिज्ञासा और भी वढ़ गयी।

मैंने कहा—"आप अभी कह डालें, सुनने की मेरी प्रवल इच्छा है···"

"नहीं, पहले आप लौट आयें, उसके वाद मैं आपको वताऊँगा···"

इसके वाद चित्तौड़गढ़ होते हुए मैं उदयपुर चला गया था। मैं जव

उदय सागर देखने पहुँचा, पथ-प्रदर्शकों ने मुझे चारों ओर से आ घेरा।

जरा भी मौका मिलने पर मैं उन लोगों से हर एक तरह की बात पूछने लगा। कैलाशपुरी कहाँ है, वृन्दावनप्रसाद किस जगह है आदि। अकेला रहने पर मैं उनसे पूछा करता—"क्या तुम्हारे यहाँ नटनी नहीं है?"

गाइड बोला—"नहीं हुजूर, उदयपुर में नटनी नहीं है..."

"क्यों, वजह क्या है इसका?"

"यह मुझे पता नहीं है हुजूर। और सभी जगहों में तो है, पर केवल हमारे उदयपुर में ही नहीं।"

केवल एक को ही नहीं, सब पथ-प्रदर्शकों को बुला-बुलाकर चाय पिलाया, पैसा दिया और उनसे बातचीत की। यदि बातचीत के बीच कोई सुराग मिल जाय। होटल में बुलाकर उन्हें खिलाने-पिलाने के बावजूद भी मुझे कोई सुराग नहीं मिल सका। सब एक ही जवाब देते। उदयपुर में नटनी क्यों नहीं है, वजह कोई नहीं जानता।

अन्त में एक दिन सब बातें जानकर मैं फिर किसनगढ लौट आया।

रोज की तरह उस दिन भी डॉक्टर साहब अपने औषधालय में बैठे डॉक्टरी कर रहे थे। दूसरी तरफ कम्पाउण्डर निताई बाबू एकाग्र होकर दवा बना रहे थे।

और डॉक्टर साहब के ठीक सामने उसी इलाके की एक लड़की बैठी हुई थी।

उस लड़की को देखकर मैं सीधा घर के भीतर जाने लगा।

काम करते हुए डॉक्टर साहब ने मुझे बुलाया।

उन्होंने कहा—"बैठिए बिमल बाबू, इसी जगह बैठ जाइए न..."

निरुपाय संकोच छोड़कर पास की ही कुर्सी पर जा बैठा।

तब तक डॉक्टर साहब ने उस लड़की से विभिन्न तरह का प्रश्न पूछना शुरू कर दिया था।

डॉक्टर साहब ने कहा—"तुम्हें शराब पीना कम करना पड़ेगा, समझी?"

लड़की हँस पड़ी। वह राजस्थानी पोशाक में थी। उसका चेहरा

उज्ज्वल और गठा हुआ स्वास्थ्य था। हँसते समय उसके गालों में गड्ढे पड़ जाते। बाँयी ओर का एक दाँत सोने से मढ़ा हुआ था। उम्र के भार से उसका यौवन घाघरा और ओढ़नी के भीतर से भी मानो बाहर निकल जाना चाहता हो।

लड़की बोली—"नहीं डागदर बाबू, मैंने तो शराब पीना कम कर दिया है···"

डॉक्टर साहब ने फिर कहा—"और रात को भी खूब अच्छी तरह सोना पड़ेगा—सोती कम हो···।"

"नहीं डागदर बाबू, मैं तो खूब सोती हूँ। भरपेट सोती हूँ। सवेरे चार बजे सोती हूँ और दिन को बारह बजे उठती हूँ। पूरे आठ घंटे सोती हूँ···।"

डॉक्टर साहब ने कहा—"एकदम गलत। इस तरह सोने से काम नहीं चलेगा। रात दस बजे तक सो जाओ और भोर छः बजे उठो। तुम्हारे शरीर में खून जरा भी नहीं है। यह दवा दे रहा हूँ, इसके खाने से दर्द-बर्द दूर हो जायगा।"

"और, डागदर बाबू, खाँसी ?"

"खाँसी भी छूट जायगी। यदि मेरी बात मानकर चलोगी तो सब कुछ ठीक हो जायगा। चिन्ता की कोई जरूरत नहीं।"

इस बार लड़की उठ खड़ी हुई। कम्पाउण्डर के निकट गयी और दवा ली। गिन-गिनकर उसने रुपये दिये। जाते समय अपनी ओढ़नी से सिर को अच्छी तरह से ढकते हुए उसने डॉक्टर साहब को सलाम किया और चली गयी।

औषधालय के बाहर रास्ते पर एक बैलगाड़ी खड़ी थी। उनके अन्दर शायद एक वृद्धा-सी कोई बैठी थी। वह लड़की उछलती-कूदती गयी और गाड़ी के भीतर बैठ गयी।

अब डॉक्टर साहब ने मेरी ओर घूमकर कहा—"कुछ समझ सके ?"

मैंने कहा—"नहीं तो···।"

"···लीजिए, आपको समझाने के लिए ही तो मैंने आपसे यहाँ बैठने के लिए कहा था। यही तो नटनी थी!"

एक बार फिर से अच्छी तरह नटनी को देखने के लिए मैंने रास्ते की ओर देखा। लेकिन तब तक नटनी को लिये दिये बैलगाड़ी आँखों से ओझल हो चुकी थी।

डॉक्टर साहब ने कहा—"ये लोग मेरे पेशेन्ट हैं। इस किसनगढ़ में ढेर सारी नटनियाँ हैं। उस दफे तो आपको मैंने उनका गाँव ही दिखा दिया था। लेकिन ये शहर की नटनियाँ हैं, इसलिए इनकी अवस्था कुछ अच्छी है। इनके पीछे बड़े-बड़े सेठ-साहूकार और रईस लोग हैं। वे ही इनका निर्वाह करते हैं···"

कुछ देर चुप रहकर उन्होंने पूछा—"उदयपुर में आपने क्या-क्या देखा?"

मैं बोला—"टूरिस्ट-गाइड में जितनी सारी चीजें लिखी थी, प्राय: सब···"

"और नटनी?"

मैंने कहा—"कहाँ? देखने की मैंने बहुत कोशिश की, पर बेकार। बहुत से गाइडो को अपने होटल में बुलाकर खिलाया भी, पर कोई कुछ नही कह सका···"

वे बोले—"तब फिर सुनिये···"

वे कहानी कहने ही जा रहे थे, कि तब तक कुछ और रोगी आ धमके। इसलिए वे कह नही सके।

बोले—"अच्छी बात है, रात को खाना खाने के बाद ही कहूँगा।"

किसनगढ बहुत पुरानी जगह है। चीनी की मीलें हैं। सिनेमाघर भी है। यह एक बडा व्यापारिक केन्द्र है। जयपुर और अजमेर के बीच का यह एक बडा शहर है। रात-भर माल से लदी लारियाँ यहाँ से होकर गुजरती हैं।

बाजार मे ही डॉक्टर धरती कुमार सरकार का मकान है। उत्तर की ओर कपडे की एक बड़ी-सी फैक्टरी बन रही है।

डॉक्टर साहब कहने लगे—"आज का राजस्थान पहले का-सा राजस्थान नही रह गया है। आज यह पूरे तौर पर बदल चुका है। जब

मैं पहले-पहल यहाँ आया था तो मांस का दर दो आने सेर था। लेकिन अब वही दो रुपये किलो विकता है।"

औषधालय के वाहर आराम-कुर्सी पर वैठकर गुजरे हुए दिनों की कहानी चल रही थी। सामने की सड़क से एक-एक कर लारी गुजरती और पीछे गुम-गुम की आवाज कानों में गुँजा जाती।

यही नहीं। उसके वाद ही कुछ दूरी पर रेलवे स्टेशन भी है, जिसके प्लेटफॉर्म पर यदि उचककर देखा जाए तो संभव है, डॉक्टर साहव का मकान भी दीख पड़े।

लेकिन उस समय रात काफी वीत चुकी थी। इसलिए शोरगुल की तीक्ष्णता कुछ कम हो गयी थी। सामने ही स्टोव मरम्मत करने की दूकान थी जिसका मालिक उस दिन काम पूरा कर दूकान का किवाड़ लगाकर वीड़ी पीते हुए अपने घर चला गया। एक ताँगा वाला जिसे उस दिन सवारी नहीं मिली थी, वस स्टाप पर वहुत देर तक इधर-उधर घूमने के वाद अन्त में निराश होकर अपने ताँगे को घसीटते हुए अस्तवल की ओर चला।

डॉक्टर साहव औषधालय के वाहर ही कहानी सुना रहे थे।

मेरी आँखों के सामने चित्र की तरह घूमने लगा उदयपुर, उदय सागर, वृन्दावन पैलेस, राणा स्वरूपसिंह और उन सवों के साथ-साथ एक नटनी।

कैलाशपुरी के महेश्वर प्रसाद की वेटी, रंगना।

डॉक्टर साहव ने कहा—"सवेरे जिस लड़की को दिखाया था, उसका नाम भी रंगना ही है—किन्तु वे लोग इस वात को नहीं जानते···"

मैंने पूछ लिया—"क्या नहीं जानते ?"

"यही जो कहानी में आपको सुना रहा हूँ। वहुत सारे अमीर-उमराव इनके पीछे हैं। उनमें से अनेक करोड़पति भी हैं। ये लोग उनके पीछे ढेरों रुपये खर्च करते हैं। जो नटनी तकदीर वाली हैं, वे इन सेठ-साहूकारों से मोटर-वँगला भी पाती हैं। कोई-कोई तो सैर-सपाटे के लिए वाहर भी जाती हैं। कोई लन्दन, कोई अमेरीका। दुनिया के हर मुल्क में वे जाने को राजी रहती हैं, किन्तु वे उदयपुर नहीं जातीं। यदि कोई उन्हें

उदयपुर पैलेस होटल के शीतताप नियंत्रित (air conditioned) कमरे मे भी रखने का लोभ दें, फिर भी वे उदयपुर नहीं जायेंगी। ऐसा ही है संस्कार इन लोगों का!"

उसके बाद कुछ देर चुप रहकर उन्होंने कहा—"आप तो उदयपुर भी हो आये, पर आपने देख लिया कि इस बात को वहाँ भी कोई नही जानता है। जान भी वे कैसे पायेंगे? क्या उन्होने मेरी तरह नर्तकियो को देखा है? क्या वे भी मेरी ही तरह उनके साथ इतना हिल-मिल सके है? हकीकत तो यह है कि बहुतों ने उनके घर रात गुजारी है, खाना भी खाया है, पर मेरी तरह किसी तरह ने उन्हें मन की आँखों से नहीं देखा···"

असल मे डॉक्टर साहब के पास मन की आँखें थी।

जब वे एक-एक कहानी सुनाते या राजस्थान का एक-एक वीरता इतिहास सुनाते तो ऐसा महसूस होता, मानो वे बंगाली न होकर खास राजस्थानी हो।

उन्होने कहा—"भारत के और सभी राज्यो के साथ इसकी तुलना आप न करें। यह राजस्थान आज भी एक अजायबघर की तरह है। हो सकता है आगामी पंचवर्षीय योजनाओं में यह ऐसा नही रह सके। फिर भी मैं जितना जानता हूँ आप लोगों को अवश्य बताऊँगा। हो सकता है, आप लोगों में से कोई इसके सम्बन्ध मे लिख ही डाले। यहाँ के लोग औरों से एकदम भिन्न हैं। यहाँ की मिट्टी भी भिन्न है। यहाँ की खानो मे जो चीजें मिलती हैं, और राज्यों की खानो मे वे नहीं मिलती···"

इस प्रकार बताते हुए डॉक्टर साहब कहानी की असल दिशा से चूक गये।

मैंने बीच मे ही टोका—"रगना का उसके बाद क्या हुआ?"

"रंगना?"

अब तक शायद उन्हें याद हो आया था।

उन्होंने कहना शुरू किया—"हाँ, रंगना की ही बात कहता हूँ। कैलाशपुरी के महेश्वर प्रसाद की बेटी रंगना। महेश्वर प्रसाद भी नाचते और गाता। कैलाशपुरी के मंदिर में शिव चतुर्दशी के दिन उन्हें नाचना पड़ता। नियम है यह। उदयपुर में जितने भी ——

शिव चतुर्दशी के दिन नाचना पड़ता है। बचपन से ही वे नाचना सीखते हैं। नाच ही उनका नशा है और नाच ही पेशा।"

"और नाच भी क्या एक ही तरह का?"

वे कहते गये—"शुरू में जब मैं यहाँ आया था तो उन सभी चीजों को देखा था। शुरू-शुरू में इसी किसनगढ़ की एक चीनी मील में मैं डॉक्टर की नौकरी पर बहाल हुआ था। चूँकि मैं डॉक्टर था, इसलिए मेरी खूब कदर होती। नटनियाँ भी मेरी कदर करतीं। घर पर शिव पूजा का प्रसाद भेज देतीं। उनके घर अगर कोई उत्सव या त्यौहार होता तो मेरा वहाँ जाना जरूरी समझा जाता। अगर जाता नहीं तो वे नाराज होतीं।"

"और उस नाच के ही बारे में आपको क्या बताऊँ! राजपूतों की लाठी तो आपने देखी है? इस लाठी को एक व्यक्ति ऊपर उठाकर पकड़े रहता है और उसके ऊपरी सिरे पर नटनी बैलेन्स रखकर नाचती। चारों ओर घूम-घूमकर नाचती।"

मैं कहानी सुन रहा था।

मैंने पूछ लिया—"गिर नहीं पड़ती?"

डॉक्टर साहब ने कहा—"कभी भी मैंने उन्हें गिरते हुए नहीं देखा। फिर भी ऐसा सुना गया है कि एक-दो बार कोई घटना घट ही गयी है। मेरे औषधालय में उसको ले आये हैं। हाथ-पैर में मलहम-पट्टी लगाकर उन्हें चंगा भी कर चुका हूँ। वे मेरी भक्ति और श्रद्धा खूब करते हैं। उन्होंने ही यह कहानी मुझे सुनायी थी। इसलिए कि रंगना की बात हर एक की जबान पर मौजूद है···"

राणा स्वरूपसिंह का राज था उस समय। राजस्थान के हर कोने में स्वरूपसिंह का जैसा नाम था, इज्जत और कदर भी वैसी ही थी।

रंगना की जवानी उस समय खिल चुकी थी।

पास-पड़ोस की लड़कियाँ उससे ईर्षा करतीं और कहतीं—"बेशर्म कहीं की···"

बेशर्म कहना है तो कहें। इससे रंगना का कुछ आता-जाता नहीं है। इसकी परवाह नहीं करती रंगना। न तुम लोगों का मैं खाती हूँ, न

को पहनती ही हूँ। मेरी तरह तुम भी नाचो, लोग तुम्हारी कदर करेंगे। तुम्हें भी पैसा मिलेगा। उस समय भारत के हर कोने से यात्री कैलाशपुरी पूजा करने के लिए आते। आज की तरह न रेल थी और न मोटर ही। हवाई जहाज की तो बात ही छोड़ दें। यात्री पंडा के घर टिकते और मन्दिर जाकर पूजा करते।

अगर रमना उनकी आँखों के सामने पड़ जाती तो पंडा से वे पूछते—"यह कौन है ? किसकी बेटी है ?"

पंडा जवाब देते—"उसका नाम रमना है, हुजूर। नटनी की बेटी नटनी···"

"···नटनी किसे कहते हैं ? वह क्या चीज है ?"

पंडा समझाते—"जो नाचते और गाते है उसी को नटनी कहा जाता है हुजूर !"

"नाचती-गाती कैसी है ?"

"···बहुत सुन्दर हुजूर।

"···क्या उसका नाच दिखा सकते हो ?"

"···यही तो उनका पेशा है अन्नदाता।"

"···अच्छी बात है। तब इसका भी इन्तजाम एक दिन कर डालो। उसका नाच भी देख लूँ।"

उसके इन्तजाम में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। सिंध के शायद बड़े सेठजी आये हुए हैं। प्रचुर सम्पत्ति के मालिक हैं। रुपये का पहाड़ ही मानो साथ में है। उन रुपयों को खर्च करने के लिए उनका मन छटपटा रहा है। कितना रुपया लोगे ले लो। परन्तु सबसे बढ़िया जो नाच है, वही दिखाना पड़ेगा।

"···हुजूर वे लाठी और रस्सी पर भी नाच सकती है।"

"···रस्सी पर किस तरह नाचती है ?"

"···दो लम्बी लाठी के सिरों पर रस्सी बांध दी जाती है। उसी रस्सी पर वे नाचती हुई पैदल चलती है।"

"···तब वही नाच देखूंगा। महफिल की व्यवस्था करो।"

कैलाशपुरी के नटनी टोले से नटनियाँ अपने दल-बल के साथ पंडे

के घर के सामने खुले आँगन में आ हाजिर हुईं। डुग-डुग, डुग-डुग की आवाज के साथ ढोल बज उठा और साथ ही आरम्भ हुआ उनका नाच। रंगना कमसिन उम्र की नटनी है। फिर भी सबों को मात कर देती है वह। आखिर क्यों नहीं, अभी भरी जवानी जो है। जैसा गठन, वैसी फुरती। दूसरी नटनियाँ क्यों कर पार पायेंगी उसके साथ।

सेठजी ने तारीफ की—"बहुत खूब ! बहुत खूब···शाबास···"

महफिल की समाप्ति पर नटनियाँ सेठजी से नजदीक आयीं और झुककर सलाम किया। सिर पर बँधे केश के जूड़े सामने झूल गये।

सेठजी ने मुट्ठी-भर मोहर सामने बढ़ा दी और कहा—"तुम्हारा नाम क्या है नटनी ?"

नजदीक ही खड़े रंगना के बाप ने कह दिया—"रंगना···"

रंगना। सुन्दर-सा नाम सेठजी ने मन-ही-मन दुहराया। उसके बाद रंगना के गठन की ओर देखा। मालूम पड़ता है मन में लोभ जगा है। बहुत देर के बाद जब वहाँ से सभी जा चुके, सेठजी ने पंडा जी को एकान्त में बुलाकर पूछा—"पंडा जी, नटनी का घर कहाँ है ?"

पंडा जी ने कहा—"हुजूर, कैलाशपुरी में उन लोगों का एक अलग मुहल्ला है, उसी मुहल्ले में वे रहती हैं "

"···यदि बुलाया जाय तो क्या यहाँ आयेंगी ?"

पंडा ने कहा—"आयेंगी क्यों नहीं हुजूर, उन लोगों का तो धन्धा ही यही है। हुजूर जितनी बार बुलायेंगे, उतनी ही बार वे लोग आयेंगी। दल-बल के साथ आकर नाचेंगी और गायेंगी।"

सेठजी ने कहा—"नहीं भाई, इस तरह नहीं। दल-बल के साथ नहीं। यदि अकेला छुपकर आने के लिए कहा जाय तो आयेंगी ?"

पंडा समझ गया।

समझ में आते ही चौंक उठा।

बोला—"नहीं सरकार, बड़ी विकट होती है उन लोगों की जात। राजपूतों के साथ उन नटनियों का बनता नहीं है। जिस तरह वे लोग नाच और गा सकती हैं उसी तरह खंजर भी चला सकती हैं। नटनियों की ओर

यदि कोई बुरी नजर से देखता है तो उसकी जान लेने में भी वे हिचकती नहीं हैं'''"

सेठजी सिंध के रहने वाले हैं। अतुल सम्पत्ति के मालिक ! सम्पत्ति तो है पर मृत्यु का भय कम नहीं है। देवी-देवताओं की पूजा कर उनका प्रसाद प्राप्त किया और घर लौट गये।

इसी तरह नटनियों के बारे में खबरें देश-विदेशों में फैल गयीं। सिंध से महाराष्ट्र, और महाराष्ट्र से तैलंग में भी खबर फैल गयी।

सभी जगह लोग कहने लगे—"नटनी को देखे हो ? नटनी ?"

कोई-कोई कहते—"नहीं।"

"'''फिर क्या, राजस्थान जाओ। जाकर देख आओ। और नटनियों में भी सबसे बड़ी-बड़ी कैलाशपुरी की रंगना।"

उसके बाद वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही झुंड के झुंड तीर्थ-यात्री उदयपुर की कैलाशपुरी में हाजिर होने लगे। सेठों के चलते कैलाशपुरी के देवों के शरीर सोने से ढकने लगे। कैलाशपुरी के महन्तों के सन्दूकों में मोहरों के पहाड़ बढ़ने लगे। सोने के बड़े-बड़े घड़ों में मोहरें छलकने लगीं।

दरअसल में देवी-देवता सिर्फ नाम मात्र के लिए थे। रंगना का आकर्षण ही प्रधान कारण था।

रंगना को लेकर ही कैलाशपुरी में इतने अधिक लोग आते हैं। उसी के लिए इतनी भीड़ जमा होती है।

मानो रंगना ही कैलाशपुरी की देवी हो।

सावधान ! खूब सँभलकर। तुम लोग उधर आँख भी न उठाना। नटनियाँ बड़ी खतरनाक होती हैं। नाचने-गाने में वे जैसी कुशल हैं, हत्या करने में भी वे उसी तरह निपुण हैं।

"किसी समय महेश्वर प्रसाद गरीब था। जब तक उसकी माँ कमसिन रही, वह नाचती और महेश्वर प्रसाद ढोल बजाता। कभी ऐसा भी होता कि माँ नाचती और बाप ढोल बजाता। और जब कभी उसे मौका मिलता नटनी मुहल्ले की लड़कियों को नाच सिखाता। नटनियों का नाच भी बड़ा

जबरदस्त होता है। इसे हर कोई सीख नहीं पाता। लड़की के पैदा होते ही बड़े-बूढ़े उसे देखने आते हैं। मुंह देखने के बजाय उसका पैर देखते हैं। हाथ से छू-छूकर पैर के गठन की परीक्षा करते हैं। बचपन से ही उस पैर की देखभाल होती है। उसे जूते पहनाये जाते हैं। उसके पैर की माप के जूते चमारों से बनवा लाते हैं। ऊपर से तेल मालिश तो है ही। बहुतेरे पेड़-पौधे हैं जिनके रस को गरमाकर रोज मालिश की जाती है।"

मैंने पूछ लिया—"किस पेड़ का रस ?"

डॉक्टर साहब बोले—"उस पेड़ का नाम वे किसी को नहीं बताते। वे अपनी विद्या किसी को नहीं सिखाते।"

"···उसके बाद ?"

"···उसके बाद लड़की जब दो वर्ष की हो जाती है तो वे खूब धूम-धाम से उत्सव मनाते हैं। हम लोगों के यहाँ बच्चों को जिस तरह खड़ी छुआया जाता है ठीक उसी तरह। हम लोगों के यहाँ जिस प्रकार ब्राह्मणों का जनेऊ होता है ठीक उसी प्रकार। उसके बाद महेश्वर प्रसाद उस लड़की को लेकर बैठ जायगा।"

रंगना तो महेश्वर प्रसाद की खुद अपनी बेटी थी।

महेश्वर प्रसाद ढोल पर आवाज निकालेगा—

ता धिन धिन ताक्
ताक् धिन धिन ता
त्रिकट् ताक् त्रिकट् ताक्
धिन ताक् धिन ताक्
धिन त्रिकट् ताक्···

महेश्वर इस प्रकार ढोल बजाता और जोर-जोर से बोलकर ताल मिलाता। जरूरत पड़ने पर नाचकर भी दिखा देता।

किन्तु नटनी उसी ताल में ताल मिलाकर नाचती।

सिर्फ दो वर्ष की लड़की रंगना ! लेकिन इसी उम्र में सुघड़। केवल एक बार ताल सिखा देने पर उसे कभी नहीं भूलती।

खुद महेश्वर प्रसाद उसकी करामात देखकर हैरान रह जाता।

वह कहता—"शुभान अल्ला—शाबाश···"

यही लड़की रंगना सयानी हो गई है। पूरी देख-रेख में रंगना सयानी हुई थी। महेश्वर प्रसाद नटनी मुहल्ले का नामी ढोलकची था। नाच और गीत सिखाते-सिखाते अब बूढ़ा हो चला था। मुहल्लेवाले सभी उससे डरते और भक्ति भी करते। सभी उसे बहुत मानते।

कहते —"गुरुजी का नसीब सिकन्दर है। लड़की गुरुजी को सुख देगी···"

और अन्त तक हुआ भी यही। महेश्वर प्रसाद को आराम और सुख दोनों मिला। कैलाशपुरी के हर व्यक्ति रंगना की प्रशंसा करते। कैलाशपुरी के बाहर उदयपुर में भी उसकी प्रशंसा फैल गई। और अन्त में कुछ दिनों के बाद उदयपुर से जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, किशनगढ़ हर जगह रंगना की ही प्रशंसा थी।

"···रंगना कौन?"

"अरे, वही रंगना, महेश्वर प्रसाद की बेटी।"

बेटी के साथ बाप का भी नाम पूरे राजस्थान में फैल गया। राजस्थान से बंगाल। बंगाल से बिहार, मध्यप्रदेश और दाक्षिणात्य। बस, कहीं भी तीर्थ के लिए निकलिए आपको राजस्थान का पुष्कर तीर्थ देखने के लिए जाना ही पड़ेगा। और पुष्कर देख लेने के बाद कैलाशपुरी ही कितनी दूर? कैलाशपुरी जाकर शंकर का आशीर्वाद लेना ही पड़ेगा। शंकर तो सबों के देव हैं। केवल नाम में ही जो फर्क है। कोई कहते हैं भोला शंकर तो कोई त्रिलोकीनाथ। फिर कुछ लोग एक-लिंगेश्वरनाथ भी कहकर बुलाते हैं। दरअसल में सभी एक ही हैं।

डॉक्टर साहब बोले—"स्वरूपसिंह के कानों में भी यह खबर पहुँची।"

स्वरूपसिंह उदयपुरेश्वर थे। शंकर यदि भूतेश्वर तो स्वरूपसिंह उदयपुरेश्वर।

बड़ा मौजी राजा था वह।

उस समय तक वृन्दावन पैलेस बनकर तैयार हो चुका था। चारों ओर उदयसागर। आप यदि एक बार उदयसागर का पानी पी लें तो आपकी सेहत सुधर जाएगी। यहाँ से वहाँ तक उदयसागर फैला हुआ था।

फैला हुआ तो है ही साथ ही जुड़ा हुआ भी है। ऊँचे पर्वत पर अवस्थित उदयपुर का किला। ऊपर चढ़ते हुए पाँव दुखने लगते हैं। मगर पहाड़ पर एक बार चढ़ते ही पौ-बारह। उदयसागर की हवा से आपके शरीर और मन की थकान एकदम रफूचक्कर हो जाएगी।

उसी उदयसागर के बीच वृन्दावन प्रासाद है। बहुत देख-भाल कर स्वरूपसिंह ने उसे सजाया है। स्वरूपसिंह वहीं बैठता है। वहीं बैठकर बड़े-बड़े और नामी उस्तादों के गीत सुनता है। जलधारा के साथ गीत का स्वर प्रवाहित होकर दूर के पहाड़ों से जा टकराता है।

गीत सुनते-सुनते स्वरूपसिंह बोल उठता—"बहुत खूब—बहुत खूब···"

केवल स्वरूपसिंह ही नहीं, साथ में होते मन्त्री, मुसाहब, मित्र और सभी सभासद। सभी एक स्वर में उसकी हाँ में हाँ मिलाकर शाबाशी देते। सभी एक साथ कह उठते—"शाबाश—क्या खूब—"

गीत सुनकर राणा यदि उसे अच्छा करार देते तो आस-पास बैठे मन्त्री, मित्र और सभासदों को भी अच्छा कहना पड़ता। राणा जिस दिन गीत सुनना पसन्द नहीं करते उस दिन औरों को भी अच्छा नहीं लगता।

राणा स्वरूपसिंह कभी कहते—"जगमन्तसिंह, आज का दिन तो अच्छा नहीं लगता···"

बड़ा सुन्दर गीत गाता है वह भाट आजकल···"

राणा ने कहा—"बस, तब उसे ले ही आओ···"

जो हरकारा भाट को बुला लाने गया था उससे भाट ने कहा—"मुझे तो अभी फुर्सत नहीं है, सरकार। पहले जोधपुर के राणा को गीत सुना आऊँगा, उसके बाद उदयपुर के राणा को गीत सुनाऊँगा।"

हरकारे ने पूछा—"क्यों ? क्या जोधपुर के राणा उदयपुर के राणा से बड़े हैं जो पहले उन्हीं को गीत सुनाने जाओगे ?"

भाट ने कहा—"ऐसी कोई बात नहीं है सरकार। बात केवल यह है कि जोधपुर के राणा से मैंने अगोत्तरा ले रखा है···"

यह खबर राणा के निकट पहुँचते ही क्रोध में वे जलने लगे।

"···एँ, भाट की यह गुस्ताखी ! भाट को अभी तुरन्त यहाँ बुलाओ। उदयपुर से जोधपुर कब का बड़ा हो गया ?"

उसी समय जगमन्त्रसिंह को बुलाया गया।

मन्त्री जगमन्त्रसिंह स्वरूपसिंह की प्रकृति से वाकिफ था। समझ गया, भाट के सिर पर काल थरथरा रहा है। हमेशा-हमेशा के लिए भाट का जोधपुर जाना बन्द हो गया।

स्वरूपसिंह के नजदीक पहुँचते ही जगमन्त्रसिंह को हुक्म मिला—"भाट को यहाँ हाजिर करो। उसे लाकर बाघ के मुँह में फेंक दो···"

और ऐसा ही हुआ।

यह कोई नहीं जान पाया कि भाट तिलक चाँद जोधपुर क्यों नहीं पहुँच सका। यह कोई नहीं जान सका कि वे अब भाट तिलक चाँद के गीत क्यों नहीं सुन पाते हैं।

भाट तिलक चाँद का नाम महाराणा स्वरूपसिंह ने राजस्थान के इतिहास से ही मिटा दिया।

महाराणा स्वरूपसिंह ऐसा व्यक्ति था।

कैलाशपुरी के बाशिन्दा इस बात को भली-भाँति जानते हैं। महाराणा बिगड़े मिजाज के व्यक्ति हैं, ऐसा वे जानते हैं। सुना है, महाराणा जिस पर दया करेंगे वह उनसे जागीर भी पा सकता है। लेकिन इसके विपरीत जिसपर क्रोध करेंगे उसे जड़ से उखाड़कर ही चैन लेंगे।

उस क्रोध की घटना भी स्वरूपसिंह के जीवन में शामिल है।

मन्त्री जगमन्तसिंह उस घटना को भी जानता है। एक दिन शाम के वक्त स्वरूपसिंह शंकर की पूजा खतम कर सीढ़ी के रास्ते से दरबार की ओर आ रहे हैं। अचानक गीत और बाजे की आवाज उनके कानों में गयी।

कहाँ गाया और बजाया जा रहा है?

जगमन्तसिंह को बुलवाया उन्होंने।

पूछा—"गीत कौन गा रहा है, जगमन्तसिंह?"

जगमन्तसिंह मुश्किल में पड़ा। कान लगाकर सुनने लगा। वही तो, किसकी छाती में इतनी हिम्मत हुई? स्वरूपसिंह की आज्ञा लिए बगैर किस तरह लोग गा और बजा सकते हैं! ऐसा तो कानून नहीं है। यह तो गैर कानून है।

शहर के मुहल्ले से खबर ले आने के लिए जगमन्तसिंह ने अपना आदमी भेजा।

बाजार के सामने ही सेठों का मुहल्ला है। सेठ चारों ओर से रुपये कमाकर लाते हैं। कोई दिल्ली के बाजार में रोजगार करते हैं तो कोई कलकत्ता के बड़े बाजार में। हर ओर से कमाकर लाये हुए रुपये उदयपुर के सेठों के मुहल्ले में जमा होते हैं। कमाकर लाये हुए रुपये सेठजी जमीन के अन्दर गाड़कर रखते हैं। अगर खर्च करने की जरूरत पड़ी तो छिपाकर खर्च कर लिया क्योंकि अगर किसी तरह स्वरूपसिंह को यह खबर मिली कि अमुक सेठ के पास रुपया है तो उसकी फिर रक्षा नहीं। उस समय जगमन्तसिंह पर रुपये वसूल लाने का हुक्म जारी होगा। दरबार के छोटे-मोटे उत्सवों में भी रुपया देना पड़ेगा। महाराणा की लड़की का ब्याह हो अथवा पोते का अन्नप्राशन, उनके पैरों पर हजारों हजार रुपये लाकर ऊड़ेलना ही पड़ेगा।

उस दिन सेठों के मुहल्ले में एक बड़ी मजलिस जमी हुई थी।

मजलिस कोई खास नहीं थी। बाजे-गाजे के साथ नाच और गीत। नटनियों का एक दल कैलाशपुरी में आया हुआ है। अपने गुरु महेश्वर प्रसाद के साथ आकर नटनियाँ गा और बजा रही हैं। और सेठों-मुगे-

नटनियाँ अनेकों वार स्वरूपसिंह के दरवार में गयी हैं। स्वरूपसिंह वड़ा दिलदार है। दयालु भी वहुत अधिक है। साथ ही जी-हुजूरी का वड़ा हिमायती। गुणियों की कदर करता है स्वरूपसिंह। वहाँ जाकर नटनियाँ नाचतीं, गातीं और ढेर-सा इनाम लेकर लौटतीं।

अहेरिया के दिन दरवार में मजलिस वैठती है।

अहेरिया के दिन स्वरूपसिंह के दरवार में केवल नटनियाँ ही नहीं, सेठ-साहूकार भी आते हैं। उदयपुर के वड़े-वड़े सेठ-साहूकार। लाखों रुपये का कारोवार है उनका। एक देश से दूसरे देशों में वे माल भेजा करते हैं। वास्तव में वे माल के भी महाजन हैं। उधर वंगाल एवं दाक्षिणात्य तथा इधर गुजरात और महाराष्ट्र। उनके कारोवार का जाल प्रायः पूरे हिन्दुस्तान में विछा हुआ है। माल का आयात और निर्यात होता है। वे भी असंख्य संपत्ति के मालिक हैं। उनके पास भी मोहरें हैं, सोना है, हीरा है; नौकर-चाकर, वाँदी सभी कुछ तो है। उनकी खिदमत के लिए भी हजारों-हजार व्यक्ति हैं।

किन्तु स्वरूपसिंह के नजदीक आते ही सभी भीगी विल्ली वन जाते हैं।

राजभवन जाते समय उस पहाड़ के नीचे से ही, जहाँ से चढ़ाई शुरू होती है, पाँव के जूते खोलकर हाथ में उठा लेते हैं। स्वरूपसिंह के सामने जूता पहनना भी मना है। अगर किसी को जूता पहनना ही है तो नीचे पहने, वहीं जहाँ तालाव है, जिस घाट पर धोवी कपड़े साफ करता है, जिस खेत में किसान हल चलाते हैं, वाजार जहाँ अनाज और साग-सब्जी विकता है, वहीं जूते पहनकर मचमचाते हुए चलें। लेकिन यहाँ नहीं। इस हाड़ के नीचे, जहाँ इस राजप्रसाद का इलाका शुरू होता हुआ है, जूते हाथ ं लेकर आओ। मेरे सामने पहुँचते ही माथा झुकाकर खड़े रहो। उसके ाद मैं जव वैठने को कहूँ, वैठो; कुछ कहने के लिए कहूँ तो वोलो।

उसके वाद तुम वैठोगे, और हँसने पर हँसोगे, मेरे गम्भीर होने पर म भी गम्भीर वने रहोगे।

लेकिन क्रोध?

क्रोध की वात सुनेंगे?

उस क्रोध की घटना भी स्वरूपसिंह के जीवन में शामिल है।

मन्त्री जगमन्तसिंह उस घटना को भी जानता है। एक दिन शाम के वक्त स्वरूपसिंह शंकर की पूजा खतम कर सीढ़ी के रास्ते से दरबार की ओर आ रहे हैं। अचानक गीत और बाजे की आवाज उनके कानों में गयी।

कहाँ गाया और बजाया जा रहा है?

जगमन्तसिंह को बुलवाया उन्होंने।

पूछा—"गीत कौन गा रहा है, जगमन्तसिंह?"

जगमन्तसिंह मुश्किल में पड़ा। कान लगाकर सुनने लगा। वही तो, किसकी छाती में इतनी हिम्मत हुई? स्वरूपसिंह की आज्ञा लिए बगैर किस तरह लोग गा और बजा सकते हैं! ऐसा तो कानून नहीं है। यह तो गैर कानून है।

शहर के मुहल्ले से खबर ले आने के लिए जगमन्तसिंह ने अपना आदमी भेजा।

बाजार के सामने ही सेठों का मुहल्ला है। सेठ चारों ओर से रुपये कमाकर लाते हैं। कोई दिल्ली के बाजार में रोजगार करते हैं तो कोई कलकत्ता के बड़े बाजार में। दूर दूर से कमाकर लाते हुए रुपये उदयपुर के सेठों के मुहल्ले में जमा होते हैं। कमाकर लाते हुए रुपये सेठजी जमीन के अन्दर गाड़कर रखते हैं। कष्ट खर्च करने की जरूरत पड़ी तो छिपाकर खर्च कर लिया करते हैं, क्योंकि अगर किसी तरह स्वरूपसिंह को यह खबर मिली कि अमुक सेठ के पास रुपया है तो उसकी खैर नहीं। इस प्रकार जगमन्तसिंह पर रुपये वसूल करने का हुक्म जारी होगा। दरबार के छोटे-मोटे उत्सवों में भी रुपया देना पड़ेगा। महाराणा की बरसी का उत्सव हो अथवा पोते का अन्नप्राशन, उनके पैरों पर हजारों रुपया [illegible] ऊडेलना ही पडेगा।

उस दिन सेठों के मुहल्ले में एक बड़ी मजलिस जमी हुई थी।

मजलिस कोई खास नहीं थी। बाजे-गाजे के साथ नट और नटनियों का एक दल कैलाशपुरी से आया हुआ है। अपने गुरु [illegible] प्रसाद के साथ आकर नटनियाँ गा और बजा रही हैं। और सेठों के [illegible]

सम्वन्धी भी उस महफिल में आ जुटे हैं।

उधर घर के अन्दर खाने-पीने का भी इन्तजाम हो रहा है।

साधारण-सा ही उपकरण था। सेठजी एक नया कारवार करने जा रहे हैं। उसी का मुहूरत है। असल में घड़ा रुपयों से भर गया है। उसे तो किसी तरह खर्च करना ही है। एक के वाद दूसरी करके नटनियाँ नाच रही हैं और उनके गुरुजी महेश्वर प्रसाद देखभाल कर रहे हैं।

जरा भी गलती होने पर गुरुजी की डाँट खानी पड़ेगी।

इसी दरम्यान लोगों में अचानक काना-फूसी शुरू हुई। देखा गया सेठ आपस में घुन-घुनाकर वात-चीत कर रहे हैं। इसी वीच गीत सुनते-सुनते एक-दो आदमी उठकर वाहर भी चले गये। ऐसा तो कभी नहीं हुआ।

महेश्वर प्रसाद का चेहरा गंभीर हो गया। खुद महेश्वर प्रसाद ने तालीम देकर सिखाया है इन नटनियों को। उनका नाच देखते-देखते अगर वीच ही में मजलिस छोड़कर कोई वाहर चला जाये तो महेश्वर प्रसाद को वड़ा अखरता है। इसको वह खुद अपनी वेज्इजती समझता है।

ढोलची को और भी जोर से ढोल वजाने के लिए महेश्वर प्रसाद ने कहा।

उसके वाद रंगना की ओर नजर उठाकर देखा। रंगना तव अपनी मौज में नाच रही थी। कभी सीने को चित कर लेती है तो कभी करवटों के वल घूम-घूमकर सवों को सलाम कर रही है। फिर उसी तरह करवट लिए अपना एक पैर दूसरी ओर घुमा लेती है।

महफिल के मँजे हुए लोग प्रायः इसी मौके पर 'तौवा, 'तौवा' कहकर तारीफ करते हैं। प्रायः इन्हीं खास मौकों पर सेठजी इनाम भी देते हैं।

मगर ताज्जुव ! कोई कुछ नहीं वोले। जैसे काठ मार गया हो उन्हें।

नाचते हुए रंगना को भी यह अनोखा-सा लगा। इतना मन लगाकर नाच रही है वह, लेकिन फिर भी दूसरे दिन की तरह कोई भी तो उसकी तारीफ नहीं कर रहा है।

गुरुजी की ओर एक नजर उठाकर देख लिया रंगना ने।

जाओ यहाँ से…"

"क्यों ? मेरा कसूर ?"

"…तुम्हारा कोई कसूर नहीं है, भाई। गलती हम लोगों से हुई है।"

"…कौन-सी गलती ?"

"……कौन-सी गलती हुई, यह बताने में समय लगेगा। इतना समय कहाँ है ? वह समय भी तो किसी ने नहीं छोड़ा।" बात करते-करते वह दूसरी ओर दौड़ गया।

उस दिन की वह घटना महेश्वर प्रसाद को याद है।

उसी समय उसे अपने आदमियों के साथ वहाँ से भाग जाना पड़ा था। लेकिन उसके पहले ही जो सर्वनाश होना था वह हो चुका था। जिस समय महेश्वर प्रसाद अपने नटनियों के दल को लेकर मुहल्ले से काफी दूर तक भागा आया था उस समय तक सेठजी का घर जलकर राख में मिल चुका था।

उस दिन सही में स्वरूपसिंह को काफी गुस्सा आया था।

खबर पाने के साथ-ही-साथ जगमन्तसिंह ने महाराणा स्वरूपसिंह को बताया था।

स्वरूपसिंह आकर दरबार में बैठ गये।

पीछे-पीछे जगमन्तसिंह भी आया।

स्वरूपसिंह ने पूछा—"क्या बात है ? किस सेठ के घर गाना-बजाना हो रहा है ?"

जगमन्तसिंह ने कहा—"सेठ बाजार मुहल्ले में कोई सेठ झुमुटमल है, उसी की हवेली में।

"…कौन झुमुटमल ?"

"…सरकार, यह वही सेठ है जो गुजरात में मूँगफली का कार-बार करता है, वही सेठ…"

"…लेकिन अचानक इस गाने-बजाने की वजह ?"

जगमन्तसिंह ने कहा—"सरकार, काफी मुनाफा हुआ है, बहुत रुपया लाभ में कमाया है, इसीलिए नाच-गान में कुछ उड़ा रहा है…"

"'''वह तो ठीक है। पर क्या दरबार से इसके लिए इजाजत ले चुका है ?"

"'''नही, सरकार।"

"'''ठीक है, तब उसे फँसाओ।"

महाराणा स्वरूपसिंह ने हुक्म जारी किया। फँसाओ का मतलब ही होता है फँसाओ। इसकी और कहीं अपील नही, माफी भी नही। एक तो सेठ झुमुटमल परदेश गया, ऊपर से मूंगफली का कारबार भी कर आया। मुनाफा भी कमाया इसमें। उसके बाद मुनाफे में कमाये उस रुपये को अपनी मर्जी के मुताबिक गाने-बजाने में भी खर्च करता है। लेकिन सबसे बड़ा अपराध तो यह किया कि इस गाने-बजाने की इजाजत तक उसने दरबार से नही ली।

हुक्म मिल चुका है।

इसलिए अब किसी की सिफारिश नही चल सकती।

पहाड़ पर बसे उस राज हवेली की ऊपरी मंजिल मे तोप छोड़ी गयी। तोप को इस निशाने पर छोड़ा गया ताकि तोप का गोला ठीक झुमुटमल के मकान पर गिरे।

और गिरा भी वही।

बारूद गिरते ही झुमुटमल के मकान मे आग लग गयी। आस-पास के घरों को भी क्षति पहुँची। थोड़ी देर पहले जहाँ गीत-बाजे और उत्सव के दौरान आनन्द की लहर फैली हुई थी वही से रोने की आवाज आने लगी। पल-भर में उदयपुर के सेठ बाजार मुहल्ले मे आग फैल गयी। मुहल्ले के लोग घर-द्वार छोड़कर भाग खड़े हुए।

और स्वरूपसिंह, वह ऊँचे पहाड़ पर अपने घर मे बैठे-बैठे इनका आनन्द लेने लगे।

जरा मजा चखें। दरबार से इजाजत लिए बगैर गीत-वाद्य के जरिये दूसरों को रुपये दिखाने का मजा चखे सेठ झुमुटमल। सेठ झुमुटमल के साथ-साथ मुहल्ले के और लोग भी समझें। स्वरूपसिंह अभी मरा नही बल्कि जिन्दा है, समय-समय पर लोगों को यह याद दिला देने की खास जरूरत है। अगर नही तो उदयपुर के लोग राणा को मानने ही क्यों

लगें ?

जगमन्तसिंह भी खुश है। सेठ झुमुटमल की सब अकड़ हेठ हो गयी। सेठ झुमुटमल की हवेली नयी बनी थी, बीवी भी नयी आयी थी। झुमुटमल रुपये भी खूब कमा रहा था, कैलाशपुरी के नटनियों के गुरु महेश्वर प्रसाद को बुलाकर नाच-गान करवा रहा था।

लेकिन जगमन्तसिंह इसे जान भी नहीं सका था कि इसकी खबर सेठ झुमुटमल के घर पहले ही पहुँच गयी है। खबर पाते ही सभी खिसक चुके थे।

बाजार-मुहल्ला को पार कर जिस समय महेश्वर प्रसाद बड़े तालाब के नजदीक जाकर खड़ा था ठीक उसी समय तोप का गोला आकर सेठजी के घर पर गिरा और चारों ओर धुएँ का पहाड़-सा दिखाई पड़ा। इस धुएँ के पहाड़ ने समूचे उदयपुर को ही ढँक लिया।

सेठ झुमुटमल भी घर की औरतों को साथ लेकर दूर जा खड़ा था। जो जान नहीं पाये, वे ही पत्थरों से दबकर मरे। उस समय भी उनके रोने और चिल्लाने की आवाज से लोगों के कान फटे जा रहे थे।

मरने वाला तो बचा।

लेकिन उस समय तक भी जो मर नहीं सके थे या जो अधमरे थे—उन्हीं को तकलीफ थी।

फिर जो एकदम बच गये थे, वे भी दूर पर खड़े थर-थर काँप रहे हैं। सिर्फ एकलिंगेश्वरनाथ की ही दया थी जो वे बाल-बाल बच गये थे। बाबा एकलिंगनाथ की जय, बाबा एकलिंगनाथ की जय हो।

कहानी कहते-कहते डॉक्टर साहब चुप हो रहे।

मैंने पूछ लिया—"उसके बाद ?"

किसनगढ़ की दवा की दुकान के सामने बैठकर कहानी चल रही थी। उस समय तक रात काफी बीत चुकी थी। सामने के ही फुटपाथ पर एक कुत्ता सिकुड़कर सो रहा था। अचानक कें-कें कर वह आर्तनाद कर उठा।

डॉक्टर साहब ने कहा—"देखिए, जाड़े की वजह से बेचारा कुत्ता

दत्त हवेली से उनका सम्पर्क उसी दिन समाप्त हो गया। करीब चालीस साल पुराना सम्पर्क।

लेकिन चालीस साल बाद एक दिन फिर उन्ही सीतापति बाबू की खोज की जायेगी, यह किसी ने स्वप्न मे भी नहीं सोचा था। चारो ओर खोज शुरू हुई, सीतापति बाबू कहाँ है? हर ओर आदमी दौडे सीतापति बाबू को ढूँढने। एक आदमी हाटखोला गया, एक खड़दा गया, तो एक हाथीबगान गया। कोई शिवपुर गया, कोई हावडा, कोई बागमारी, तो कोई दमदम। कुछ देर बाद सभी आकर बोले—"सीतापति बाबू नही मिले, हुजूर।"

"मिले नही, मतलब? आदमी क्या दुनिया मे उड गया? वह उड जाना ही तो हो गया! उसके क्या पख निकल आये?"

माधवदत्त बूढे हो गये थे। पुकारा—"अदालत।"

अदालत अली अभी भी टिमटिमा रहा था। सामने आकर बोला—"हुजूर।"

"सीतापति बाबू का पता जानता है तू?"

"सीतापति बाबू, कौन, हुजूर?"

अदालत अली सीतापति बाबू का नाम भूल चुका था। वह क्या आज की बात है! अदालत की भी तो काफी उम्र हो गयी है। अदालत अली ने भी तो चालीस साल जागकर माधवदत्त के साथ रातें काटी है। कितनी रातें, कितने दिन देखे हैं अदालत ने। वे सब बातें अब और याद नही आती। वही बड़ानगर, वही हाथीबगान, वही खड़दा और वही जग्दननगर। जहाँ हुक्म हुआ, साथ गया। जरूरत होने पर गिलास आगे बढ़ा देता, फर्शी सामने कर देता वह। एटर्नी नरहरी बाबू, वकील हेमदा बाबू, कहाँ गये वे लोग? कहाँ गयी वह सरला? सिर्फ कासिम अभी भी था। उसके जाने की कोई जगह नही हैं। इमी से अभी भी पड़ा है। वे दोनों विलायती घोड़े भी मर चुके हैं। अब छोटे बाबू ने मोटर गाड़ी खरीदी है। उसी घुडसाल के अन्दर ही अब मोटर गाडी खड़ी रहती है। मोटर का ड्राइवर और क्लीनर भी वही रहते हैं। पास मे कासिम भी पडा रहता है। और वे ससार बाबू, निताई बाबू,

गौरहरी बाबू, प्रानकेष्टो बाबू, नाम किसी का याद नहीं है। सिर्फ इतना ही याद है अदालत को कि बाबू लोग नियम से आते थे, मालिक के साथ नयी-नयी जगहों पर जाते थे और रात बिताने के बाद सुबह मुँह-अँधेरे लौट आते थे।

माधवदत्त ने फिर से पूछा—"याद नहीं है तुझे? घुड़साल के नीचे की कोठरी में रहता था और खाता था अन्दर रसोईघर में जाकर?"

अदालत को थोड़ा-थोड़ा याद आया।

बोला—"हाँ, हुजूर, याद आ तो रहा है।"

सच याद आ रहा है। आखिरी दिनों में जाने कौन-सा एक रोग हुआ था उन बाबू को। दिन-रात खाली भूख लगती। हर समय खाऊँ-खाऊँ करते। बनमाली की कितनी खुशामद करते थे। सुबह ग्यारह बजते न बजते, खाने का तगादा। बनमाली से कहते—"क्यों रे, खाना नहीं देगा? दोपहर हो गयी, भूख के मारे बुरा हाल हो रहा है।" अन्त में उस खाने के लिए ही कितनी हाय-तोबा मचती थी।

लेकिन माधवदत्त इसपर कुछ भी नहीं कहते। ऐसे कितने ही लोग तो खाते हैं इस घर में। कौन उन लोगों का हिसाब रखता।

बनमाली ने एक दिन मालिक से कहा था—"बड़ा खाऊँ-खाऊँ करते हैं यह सीतापति बाबू! सब भात खा जाते हैं। भात पूरा ही नहीं पड़ता।"

"इसका मतलब?"

"जी, खा-पीकर उठते ही फिर कहते हैं—बड़ी भूख लगी है! कभी-कभी सारी पतीली खाली कर देते हैं। फिर से भात बनाना पड़ता है। इतना खा लेते हैं कि उठ भी नहीं पाते। वहीं लेट जाते हैं।"

इसपर माधवदत्त ने कहा था—"वह एक तरह का रोग है रे, बड़ा कठिन रोग है। तुम लोग उससे कुछ मत कहना।" तब से बनमाली वगैरह ने फिर कुछ कहना छोड़ दिया था। वे सीतापति को खाना खाते देखते और हँसते।

कभी-कभी माधवदत्त कहते—"खूब ऊँचे घर का है, बड़ा गुणी आदमी है। फोटो बड़ा अच्छा उतारता है। भाग्य का फेर है कि बेचारा यहाँ पड़ा है, नहीं तो यह क्या उसके रहने की जगह है!"

सीतापति की कितनी ही शिकायतें, कितनी ही बातें माधवदत्त ने सहन की थी। लेकिन यह नहीं सह सके कि सीतापति इस बात में दिलचस्पी लें कि उनका बेटा वृन्दावन क्या करता है, क्या नहीं करता, कहाँ जाता है, किसके साथ बात करता है। अरे बाबा, तुम्हें क्या पड़ी है! तुम्हें रहने को मिल रहा है, खाने को मिल रहा है, तुम्हें और सारी बातों से क्या मतलब!

सीतापति बाबू दत्त हवेली छोड़कर जो गये, तो फिर नहीं लौटे। और उनकी खोज-खबर लेने की जरूरत भी किसी ने नहीं समझी। लेकिन इतने दिनों बाद सीतापति बाबू की जो खोज मची, उसका भी एक कारण था।

वह कारण सामने आया वृन्दावनदत्त की शादी के दिन। दत्त हवेली का एकमात्र कुल-दीपक वृन्दावनदत्त शादी की शान-शौकत, धूमधाम, जिसके लिए दत्त हवेली का नाम था, अपने नाम के अनुसार ही हुई। नाते-रिश्तेदारों और कुटुम्बियों से घर भर गया था। छत पर शामियाना लगा। मिठाई, दही, जेवर और कपड़ों का आर्डर दे दिया गया। घर-घर निमन्त्रण-पत्र भेजे गये।

तभी एक दिन मधुसूदन सुनार ने गड़बड़ कर दी। माधवदत्त उस समय अकेले ही बैठे थे। मधुसूदन सुनार ने आकर नमस्कार किया। माधवदत्त ने पूछा—"क्या मधुसूदन? काम हुआ?"

"जी, एक बात पूछनी थी आपसे।"

माधवदत्त उत्सुक हो उठे। पूछा—"कौन-सी बात? रुपया? काम पूरा होने पर रुपया तो मिलेगा ही। दत्त हवेली का रुपया मारा नहीं जायेगा, यह याद रखना।"

मधुसूदन ने दाँत से जीभ काट ली। बोला—"छि-छि हुजूर, ऐसा क्या मैं सोच भी सकता हूँ? ऐसी बात कहने से पहले मेरी जीभ न गिर जायेगी कटकर! मैं तो एक और ही बात कहने आया हूँ।"

कहकर पाकिट से बैंगनी कागज में मुड़ा एक हार निकाला। करीब बीस भरी का शीतलपाटी हार। बहूरानी के गले की चीज। कितने ही और गहनों के साथ यह भी मधुसूदन को दिया गया था। उन सब पुराने

गहनों को तोड़कर वृन्दावन की बहू के लिए नये गहने बनने थे।

मधुसूदन ने सिर झुकाकर कहा—"बहूरानी के इस हार के लॉकेट में एक फोटो मिला है, हुजूर।"

"फोटो ?"

माधवदत्त सीधे होकर बैठे। बोले—"लॉकेट के अन्दर फोटो ? किसका फोटो ? कैसा फोटो ?"

"यह देखिए, हुजूर !"

आश्चर्य की बात थी। मधुसूदन सुनार ने वह फोटो निकालकर दिखलाया—छोटा-सा, मगर साफ, अच्छा फोटो था। मँजे हुए हाथ से खिंचा हुआ। माधवदत्त ने अच्छी तरह से फोटो को देखा, यह तो सीतापति बाबू हैं ! एकदम सीतापति बाबू का जवानी का फोटो। यह फोटो यहाँ कैसे आया ? और बहूरानी के गले के हार में ! उनके मरने के बाद ये गहने और किसी के हाथ में तो गये नहीं। इस लॉकेट के अन्दर सीतापति बाबू का फोटो कैसे आया ?

माधवदत्त की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था।

"यह हार भी तो तुम्हारा ही बनाया हुआ है मधुसूदन ?"

मधुसूदन ने कहा—"जी हाँ।"

माधवदत्त ने फिर पूछा—"यह हार तुमने कब तैयार किया था, याद है ?"

"जी, इतनी पुरानी बात क्या याद रहती है ?"

मधुसूदन ने फिर कहा—"लेकिन हुजूर, यह हार तो मुझे सीतापति बाबू ही ने बनाने को दिया था।"

"सीतापति बाबू ने ?"

"जी हाँ, उसके पास उस समय रुपये नहीं थे, अपना कैमरा बेचकर यह हार बनाने को दिया था।"

माधवदत्त एकदम चौंक उठे।

पूछा—"सीतापति ने यह हार किसके लिए बनवाया था ? तुम्हें बतलाया था कुछ ?"

मधुसूदन ने कहा—"नहीं हुजूर, वह तो नहीं बतलाया। सिर्फ कहा

था कि कैमरा के रुपयों से यह हार बना दो।"

"इसके अन्दर फोटो भी तुम्ही ने रखी ?"

"जी नहीं। लगता है, यह काम उन्होंने किसी दूसरे सुनार से कराया था।"

"तुमने क्या एक बार भी नहीं पूछा कि यह हार किसके लिए बनवा रहे हैं ?"

मधुसूदन—"झूठ नहीं बोलूँगा हुजूर, यह मैंने नहीं पूछा। सोचा, शायद किसी निकट के रिश्तेदार को देंगे।"

"कितने साल पहले बनाया था यह तुमने ? याद आता है ?"

मधुसूदन ने मन-ही-मन हिसाब लगाया। कहा—"यह क्या आज की बात है हुजूर ? उस समय तो मेरा मँझला लड़का भी पैदा नहीं हुआ था। वृन्दावन बाबू का भी जन्म नहीं हुआ था। याद है हुजूर, एक बार बड़ी जोर की बारिश हुई थी, कलकत्ते में श्यामबाजार का मोड़ तक डूब गया था, उससे भी पहले।"

"अच्छा, तुम जाओ।"

मधुसूदन सुनार चला गया।

माधवदत्त उठे। उठकर चहलकदमी करने लगे। एक बार इधर, एक बार उधर। अदालत दूर से देख रहा था। पास आकर पूछा—"तम्बाकू लाऊँ, हुजूर ?"

"नहीं।"

अदालत चला गया।

कई दिनों से ड्योढ़ी पर नौबत बज रही थी। शादी को अभी तीन दिन बाकी थे। शहनाई का स्वर जैसे तीर की तरह माधवदत्त के कानों में बिंधने लगा। प्रायः चीखकर उन्होंने पुकारा—"अदालत !"

अदालत पास के कमरे में ही चुपचाप खड़ा था। आकर बोला—"हुजूर।"

"नौबत बन्द करने को कहो।"

अदालत खड़ा ही रह गया। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। पूछा—"रोकने को कह दूँ ?"

"हाँ, रोकने को कहो। अच्छा नहीं लग रहा···एक पैसा भी नहीं दूँगा इन सालों को ! इतना बेसुरा बजा रहे हैं !"

माधवदत्त का अजीब मिजाज देखकर अदालत अवाक् रह गया। माधवदत्त कमरे से बाहर आये। बाहर आते समय देखा, कपड़े वाला आया है। कॉलेज स्ट्रीट का पुराना व्यापारी। माधवदत्त को देखते ही उसने सिर झुकाकर नमस्कार किया।

"कौन ?"

"जी, मैं केशव···बनारसी साड़ी लाने को कहा था न।"

माधवदत्त चीख उठे—"निकलो, निकल जाओ, तुम सब लुटेरे हो ! निकल जाओ सब यहाँ से !"

केशव तो देखता ही रह गया था। पुश्त-दर-पुश्त दत्त हवेली में कपड़े ला रहा है। इस तरह से गाली तो आज तक कभी किसी ने नहीं दी। आज से पहले माधवदत्त ने भी नहीं।

"हाँ, निकल जाओ ! फिर कभी मेरे सामने न आना ! अभी निकल जाओ !"

कहते-कहते माधवदत्त बाहर निकल आये। उनका चिल्लाना सुनकर घर में आये मेहमान लोग भी अवाक् रह गये। सब एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे। शादी का घर, नाते-रिश्तेदारों का ताँता लगा हुआ था। सब लोग रसोईघर में हल्ला मचा रहे थे। अचानक मालिक का मिजाज बिगड़ा देख सब चुप हो गये।

माधवदत्त हवेली के अन्दर सीधे जनानखाने की ओर चल दिये। रात-दिन में मिलाकर माधवदत्त कितनी बार अन्दर गये, यह उँगलियों पर गिना जा सकता है। इस घर में जो नये लोग थे, इसी से वे कुछ अवाक्-से रह गये। माधवदत्त सीधे अन्दर गये, अपने कमरे में। एक के बाद दूसरी सीढ़ी, बराण्डा और फिर बहूरानी का कमरा। काफी दिन पहले यहीं पर उनकी पत्नी की जिन्दगी के ढेर से दिन कटे थे। माधवदत्त को यह जगह जैसे बिन पहचानी-सी लग रही थी। उन्होंने बहू को गहने दिये, हर तरह का आराम दिया, नौकरानियाँ दीं। सिर्फ इतना ही नहीं, नियमित खाद्य और आराम की सारी चीज़ें भी दीं। पलंग दिया, उसके

लिए विस्तर-चादर-तकिये वगैरह दिये। अलता, सिन्दूर, तेल, साबुन सब कुछ दिया। फिर क्यों उन्होंने माधवदत्त से दस तरह बदला लिया!

वह पलग अभी भी अपनी पुरानी जगह पर था। बहूरानी के मरने के बाद से वह कमरा वैसे का वैसा ही पड़ा है। कुछ भी नहीं बदला है। सब कुछ वैसे ही है। एक फोटो तक नहीं है कहीं बहूरानी का। सिर्फ उनकी पहनी हुई साड़ियाँ, उनका शीशा, यहाँ तक कि उनके व्यवहार की छोटी-मोटी अन्य चीजें भी वैसे ही पड़ी थीं। सब पर धूल जमा हो गयी थी। पलग के नीचे झाँककर देखा। इसी पलग के नीचे एक दिन सीतापति बाबू की चप्पलें पड़ी मिली थीं।

आश्चर्य! उस दिन माधवदत्त ने सोचा था—शायद बिल्ली उन्हें यहाँ ले आयी है। उस दिन भी उन्हें सन्देह नहीं हुआ।

पुकारा—"अदालत!"

अदालत सामने आकर खड़ा हुआ—"हुजूर!"

"नौबत बन्द हो गयी?"

"जी हुजूर!"

"सीतापति कहाँ है, मालूम है?"

सीतापति! अदालत को वह शख्स याद तक नहीं था। वह तो काफी पुरानी बात हो चुकी थी।

माधवदत्त ने फिर कहा—"जहाँ भी मिले, जैसे भी मिले, सीतापति को ढूँढना ही होगा। सीतापति मुझे चाहिए ही।"

आश्चर्य! याद है, जिस दिन बहूरानी को श्मशान ले जाया गया था। माधवदत्त खुद भी साथ गये थे। बृन्दावन भी साथ था। मुखाग्नि बृन्दावन ही करने वाला था। माधवदत्त बहूरानी की लाश को एकटक ताक रहे थे। जीवन में कभी भी इस तरह नहीं देखा। पैरों में अलता, शरीर पर बनारसी साड़ी। उन्हें अच्छी तरह से सजाया गया था। बड़ी सुन्दर दीख रही थी उस दिन। बहूरानी इतनी सुन्दर है, यह उन्हें आज पहली बार मालूम हुआ था। पहले कभी जानने का अवसर ही नहीं मिला। माधवदत्त ने देखा, बहूरानी के चेहरे पर हँसी झलक रही थी। एकदम अजीब हँसी। मृत्यु के बाद भी क्या आदमी हँस सकता है? माधवदत्त

उस दिन नहीं समझ पाये थे। वह किस बात की हँसी थी, आज जैसे वह पहली बार यह जान पाये। प्रतिशोध की हँसी इतनी मधुर हो सकती है, आज ही पता लगा।

इसके बाद अचानक फिर से उन्होंने पुकारा—"अदालत !"

"हुजूर !"

"वृन्दावन कहाँ है ?"

"जी निमन्त्रण देने गये हैं।"

माधवदत्त ने कहा—"सबसे कह दो जाकर, जो जहाँ भी हो, यह घर छोड़कर चला जाए, मैं किसी का चेहरा नहीं देखना चाहता !"

अदालत फिर भी खड़ा रहा।

माधवदत्त ने कहा—"खड़ा-खड़ा देख क्या रहा है, कह दे जाकर ! जा जल्दी से !"

माधवदत्त इतने जोर से बोल सकते हैं, अदालत अली ने इससे पहले नहीं जाना था। वह उनके सामने से हटकर पास के कमरे में जाकर खड़ा हो गया।

माधवदत्त बाहर निकले। फिर से बहूरानी के मृत चेहरे की अमिट हँसी की याद आयी। श्मशान में ले जाकर अरथी को जब रखा गया था, तो माधवदत्त को बड़ा मोह लग रहा था। मन-ही-मन बड़ा दुःख हुआ था उन्हें। सारे जीवन में इस घर में उन्होंने शायद सिर्फ एक रात ही काटी थी। इस चेहरे के जिन्दा रहते इसे कभी अच्छी तरह देखा भी नहीं था। सोचते थे—कोई कमी तो रखी नहीं है। फिर तकलीफ किस बात की ! लेकिन वह उनसे इस तरह बदला लेंगी, यह किसे मालूम था !

माधवदत्त सीढ़ियों से उतरे। अचानक सामने से कोई निकला। माधवदत्त चिल्ला उठे—"कौन ? कौन हो तुम ?"

"जी, मैं सुशीलावाला हूँ।"

"सुशीलावाला कौन ? यहाँ क्या कर रही हो ?"

सुशीलावाला डर से जैसे अचकचा गयी। बोली—"जी, मुझे नहीं पहचान पा रहे हैं ? मैं आपकी ज्ञानदा बहन की लड़की सुशीलावाला।"

माधवदत्त गुस्से से चीख उठे—"ज्ञानदा बहन ! निकल जाओ यहाँ

से ! लड़कियों का और विश्वास नहीं है मुझे ! निकलो यहाँ से ! मुझे तुम लोगों की कोई जरूरत नहीं है···जाओ, अभी जाओ !"

सुशीलाबाला ने फिर भी एक बार कहा—"जी, हम लोग तो वृन्दावन दादा की शादी में निमन्त्रण पाकर आये हैं।"

माधवदत्त और भी गर्म हो गये। बोले—"शादी ? किसकी शादी ? शादी-वादी कुछ भी नहीं होगी। चले जाओ सब !"

सुशीलाबाला डरकर सामने से भाग गयी।

वृन्दावन को घर आने पर पता लगा, पिताजी सभी को डाँट रहे हैं, सबको घर से चले जाने को कह रहे हैं। शहनाई बन्द हो गयी है। दही, मिठाई और कपड़े वाला, सभी यह हाल देखकर भाग चुके हैं। पिताजी सारी चीजें उठा-उठाकर फेंक रहे हैं। सारे घर में भाग-दौड़ मची है। माँ के कमरे के पलंग, बिस्तरा, तकिया, सब जलाने को कह रहे हैं। सारे घर में हाय-तोबा मची है। इतना बड़ा घर। यह हाल देख, सभी स्तम्भित हो गये थे। घर के नौकर-चाकर, महरी-नौकरानी, मेहतर-भंगी, सभी खड़े-खड़े काँप रहे थे। मालिक को एकाएक हो क्या गया ? दोतल्ले में काँच के बरतन और फर्नीचर के फेंके जाने और टूटने की आवाजें आ रही थीं। झन-झन कर सब चूर हो रहा था। थाली, लोटा, बरतन सब। आज किसी को नहीं छोड़ेंगे माधवदत्त।

वृन्दावन की गाड़ी के आते ही अदालत ने दौड़कर उन्हें खबर दी। वृन्दावन उसी समय निमन्त्रण बाँटकर लौटा था। वह भी चौंक गया। पूछा—"आखिर अचानक हुआ क्या पिताजी को ?"

अदालत अली ने डर से काँपते-काँपते कहा—"यह तो पता नहीं हुजूर, कह रहे हैं, शादी नहीं होगी।"

यह क्या ! वृन्दावन दौड़ता-दौड़ता अन्दर पहुँचा। वहाँ से अभी तक तोड़-फोड़ की आवाज आ रही थी। पिता के सामने वृन्दावन के पहुँचते ही उनका विकृत चेहरा देखकर अवाक् रह गया। सुबह तो ठीक ही थे। एक घण्टे में ही इतने बूढ़े हो गये ! दोनों आँखें जैसे निकली पड़ रही थीं। वृन्दावन ने आजिजी से पुकारा—"पिताजी !"

"कौन है तू ? कौन ? तू कौन है ?"

"मैं वृन्दावन ! मैं···मैं···"

माधवदत्त एक लाठी लेकर उसे मारने दौड़े। वृन्दावन शायद प्रतिवाद करता, पर पिता का वह महाभयंकर रूप देखकर डर से भाग गया। नहीं तो न जाने क्या हो जाता। अचानक अदालत ने कमरे में आकर कहा—"सीतापति बाबू का पता लग गया, हुजूर।"

"कहाँ है, कहाँ है वह हरामजादा ? खींच लाओ उस हरामी को ! मेरा ही खाकर उसने मेरा ही सर्वनाश किया ! आस्तीन का साँप ! कहाँ है वह ?"

अदालत ने कहा—"वह बीमार पड़ा है। बागबाजार में है।"

"बागबाजार ? चल, बागबाजार ही चल। हरामजादे का खून करके ही छोड़ूँगा !"

उसी समय गाड़ी निकली। माधवदत्त को और किसी ओर देखने की फुरसत नहीं थी। कुछ भी सोचने का समय नहीं था। अपनी अलमारी का ताला खोलकर माधवदत्त ने बन्दूक निकाली। उसमें खुद ही गोली भरी। फिर गाड़ी में बैठकर बोले—"चलो, हवा में उड़कर चलो ! उस हरामजादे को देखना है आज !"

वृन्दावन ने जाते समय अदालत से कहा—"खूब सावधान रहना, अदालत ! खूब सावधान ! देखना, कुछ ऐसा-वैसा न कर बैठें !"

लेकिन आखिर गड़बड़ हो ही गयी। जो आदमी सीतापति की खबर लाया था, वह भी साथ था। उसने कहा—"वह बुरी तरह से बीमार हैं, हुजूर। इसी से उन्हें यहाँ नहीं ला पाया। बात से एकदम पंगु हो गये हैं। हो सकता है, आजकल में ही मर जायें !"

"जल्दी चलो, देरी करने से हरामी मर जायेगा ! मरने से पहले ही पकड़ूँगा साले को !"

बागबाजार ज्यादा दूर नहीं है। फड़ेपुकुर से बागबाजार जाने में ज्यादा समय नहीं लगता। माधवदत्त पागलों की तरह बक रहे थे। सालों पहले कोई भाग गया था। आज उसे न पकड़ा जा सकेगा। पकड़ से एकदम बाहर हो गया है वह। श्मशान में पड़े-पड़े वह सिर्फ हँसी थी एक बार। शायद उनका मजाक उड़ा रही थी। शायद विद्रूप कर रही थी।

तब उस हँसी को माधवदत्त ने रूठना समझने की भूल की थी। इसी से उन्हें दु:ख हुआ था उस दिन। इसी से उस दिन उनकी आँखों में आँसू आ गये थे। नहीं तो उसी दिन पूछताछ करते। मालूम होता, तो श्मशान में बहूरानी की लाश से भी अपने सवाल का जवाब मांगते। लेकिन दूसरा आदमी तो अभी जिन्दा था। उनकी पकड़ में आने से पहले ही कहीं वह मर न जाये!

बागबाजार में बलराम बाबू के मकान के सामने आकर माधवदत्त की गाड़ी रुकी। गाड़ी रुकते ही माधवदत्त उन्मुक्त पागल की तरह तेजी से उतरे।

बलराम बाबू मीनापति के दूर सम्पर्क के फुफेरे भाई लगते थे। बलराम बाबू न होते, तो मीनापति बाबू को शायद अपने आखिरी दिनों के लिए कहीं ठिकाना न मिलता। वह भीतर पंगु होकर पड़े थे। डॉक्टर आता, दवा दे जाता। बड़े घर के लड़के थे। हालत खराब होने पर भी चेहरा खराब नहीं हुआ था। अभी भी बड़प्पन का रौब झलकता था। लेकिन उनकी आयु जैसे धीरे-धीरे क्षीण हो रही थी। एक-आध शब्द बोल पाते। कुछ भी खा नहीं पाते थे। सिर्फ आँख फाड़े ताकते रहते। बीच-बीच में कभी कुछ कहते। घुँघराले बाल एकदम सफेद हो गये थे। बदन का रंग पके आम-सा हो गया था। देखते ही लगता कि एक समय बड़ा सुन्दर चेहरा रहा होगा।

डॉक्टर कहता—"यह रोग ठीक होने वाला नहीं है। मेहनत बेकार है।"

बलराम बाबू कहते—"फिर भी आखिरी कोशिश कर देखिए, डॉक्टर बाबू। दादा ने बड़े दु:ख भोगे हैं। नाते-रिश्तेदारों ने मामला चला कर इन्हें घर से निकाल दिया था। इसके बाद से पूरे चालीस साल फड़ेपुकुर की दत्त हवेली में रहे। अन्त में वहाँ से भी उन लोगों ने निकाल दिया।"

डॉक्टर ने पूछा—"क्यों?"

बलराम बाबू ने कहा—"कारण नहीं जानता। आखिरी दिनों में मैंने अपने पास रखा है। शायद मरने से पहले थोड़ी शान्ति पा जायें।"

इसी

यह सुनते-सुनते सीतापति वाबू की आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगते और वलराम वाबू धोती के छोर से उन्हें पोंछते।

सुबह से ही हालत अच्छी नहीं थी। वलराम वाबू जल्दी से डॉक्टर को बुला लाये। डॉक्टर नाड़ी पकड़े बैठे थे।

अचानक वाहर गाड़ी की आवाज हुई। निकलकर देखा, माधवदत्त मोटर से उतर रहे थे। वलराम बाबू ने स्वागत किया—"आइए, आइए! मेरा सौभाग्य! जरा देर होने पर शायद देख भी न पाते!"

माधवदत्त चीख उठे—"जिन्दा है अभी!"

"जी, आखिरी वार देख पायेंगे, आइए!"

सीतापति वाबू ने जरा आँख उठाकर देखा। वड़ी करुण थी वह दृष्टि। डॉक्टर अभी नब्ज पकड़े बैठे थे।

माधवदत्त सीधे पास जाकर खड़े हो गये। बोले—"मैं माधवदत्त हूँ—फड़ेपुकुर की दत्त हवेली का मालिक। मुझे पहचानते हो?"

सीतापति वाबू ने स्वीकृति में वहुत धीरे से सिर हिलाया।

माधवदत्त ने फिर पूछा—"तुमने दत्त-पत्नी को यह हार दिया था? इस हार के लॉकेट में तुमने अपना फोटो लगवाया था?"

सीतापति वाबू चुप रहे।

माधवदत्त फिर गरजे—"बोलो, जवाव दो!"

सीतापति वावू ने जैसे सिर हिलाया हो।

"क्यों दिया था?"

फिर भी कोई जवाव नहीं। डॉक्टर वावू कसमसाने लगे। रोगी पर इस तरह अत्याचार करने का अधिकार किसी को नहीं है। लेकिन माधवदत्त बड़े आदमी ठहरे। उन्हें कुछ कहा भी तो नहीं जा सकता।

"क्यों दिया, जवाव दो?"

सीतापति वावू ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया।

माधवदत्त ने फिर से कहा—"परसों वृन्दावन की शादी है, आज मधुसूदन सुनार ने यह लॉकेट मुझे दिया। मैंने विवाह वन्द कर दिया है। मैं अभी जवाव चाहता हूँ, दत्त-पत्नी से तुम्हारा क्या सम्वन्ध था? तुमने उसे हार क्यों दिया? बोलो?"

सीतापति बाबू को पता नहीं क्या हुआ, आखिरी समय इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी थी, कौन कह सकता है !

सीतापति बाबू ने स्पष्ट उत्तर दिया—"वृन्दावन मेरा पुत्र है।"

और इसके साथ ही सीतापति बाबू का सिर लटक गया। आँखों की पुतलियाँ उलट गयी। होंठ टेढ़े हो गये। एक मक्खी न जाने कहाँ से आकर उनकी नाक पर बैठ गयी। डॉक्टर बाबू उठ खड़े हुए। बोले—"सब खत्म हो गया।"

और माधवदत्त ने अचानक अदालत अली के साथ से बन्दूक ले ली और सीतापति बाबू पर निशाना लगाकर ठाँय-ठाँय कर छोड़ने लगे। उन असंख्य गोलियों के लगने से पलक मारते सीतापति बाबू का शरीर छलनी हो गया।

जिन लोगों ने इतनी देर तक कहानी सुनी, उन्होंने पूछा —"फिर ?"

मैंने कहा—"फिर क्या ! रुपये का जोर रहने से जो होता है, वही हुआ। मुर्दे पर छुरी चलाने के अपराध के लिए इण्डियन पेनल कोड में शायद कोई धारा भी तो नहीं है। लेकिन यह मामला यों ही समाप्त नहीं हुआ। देश के सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में एक फैसला दिया है। आप लोगों ने परसों के अखबार में वह खबर जरूर पढ़ी होगी। बाबू वृन्दावनदत्त की सारी चल-अचल सम्पत्ति मामूली कीमत पर नीलाम हो गयी। आप इसे अभिशाप कहें, प्रतिशोध कहें, या भाग्य की विडम्बना कहें, जो भी इच्छा हो, कह सकते हैं।"

३

प्रकाशक की ओर से :

"अन्य किसी भी प्रतिष्ठावान् लेखक के समान विमल मित्र के पास भी अनेक प्रकार के पत्र आते रहते हैं। उन सब पत्रों की विषय-वस्तु बड़ी विचित्र रहती है और विवरण भी अद्‌भुत होता है। उनके लाखों-करोड़ों पाठक-पाठिकाओं में से कुछेक के पत्र हमने भी देखे हैं। उनमें से एक पत्र विशेपकर वड़ा विचित्र था। पत्र किसी महिला का था, लिखा था—

"मैं आपकी रचनाओं के अंधभक्तों में से एक हूँ। जब किसी भी पत्रिका में आपकी रचना प्रकाशित होती है, तो सब छोड़-छाड़कर रचना ले बैठती हूँ। एक लड़की के परिचित एवं परिधित जीवन में बड़ी विचित्र स्थिति और आश्चर्यजनक घटना ने मन बड़ा खिन्न कर दिया है। आप इसे किसी छोटी-सी कहानी का रूप देकर उसके मन के अन्याय और असंयत भावना को कम कर सकेंगे, इस आशा से पत्र भेज रही हूँ।"

पत्र लम्बा था। पत्र में पता कहीं नहीं लिखा था। तारीख। पोस्ट आफिस शिवपुर। लम्बे पत्र में लेखिका ने अपने जीवन की एक अद्‌भुत कहानी लिख भेजी थी। 'सरवती बाई' उसी पत्र का प्रतिफल है।

'सरवती बाई'

सुचेता चट्टोपाध्याय सुचरितासु—

तुम्हारी चिट्ठी मिली। तुम्हें लेकर कहानी लिखने का आदेश देकर तुमने मुझे बड़े संकट में डाल दिया है। मैंने फरमायशी कहानियाँ लिखी अवश्य हैं, किन्तु यह कोई जूता तो है नहीं, जो जितनी बार फरमायश की जाये, उतनी बार बना दूंगा। और तुमने चिट्ठी पर कहीं पता भी नहीं दिया है। लिफाफे पर पोस्ट आफिस की मुहर से ठिकाना खोजने पर देखा, वहाँ लिखा था—शिवपुर।

शिवपुर ! शिवपुर क्या यहाँ रखा है ? किन्तु पता मिलने पर तुम्हें खोजने के लिए निकल पड़ूंगा, यह न सोच बैठना। जितना तुमने

लिखा है, उससे ही मैंने सब समझ लिया है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, बड़ी लाचार होकर तुमने पत्र लिखा है। यदि मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ! नहीं जानता, मेरे द्वारा तुम्हारी कितनी सहायता हो सकेगी।

किन्तु तुम्हारी चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते एक लाभ हुआ। बहुत दिन पहले की, एक अन्य व्यक्ति की बात ध्यान में आ गयी। वह सरस्वती बाई नहीं, बनलता! बनलता की कहानी!

बनलता मेरी अपनी कोई नहीं है। तुम्हारी ही तरह एक दिन छब्बीस वर्ष की उम्र में उसके सामने भीषण समस्या आ खड़ी हुयी थी। सच ही छब्बीस वर्षीया की समस्या की शायद तुलना नहीं है। तुमने लिखा है, जो लड़का तुमसे प्रेम करता है वह उम्र में तीन वर्ष छोटा है, अर्थात् तेईस। भला बताओ, छब्बीस वर्ष की ज्वाला को तेईस वर्षीय कैसे समझेगा।

छब्बीस वर्षीय बनलता ने एक दिन कहा था—आपकी हिम्मत कुछ कम नहीं है।

तेईस वर्षीय सुधामय बोला था—पंख देखकर क्या हम मोर नहीं पहचान सकते···?

बनलता ने कहा था—तब फिर इस बार अच्छी तरह पहचान लीजिए—कहकर, न कुछ बात न चीत, पाँव से चप्पल निकाल, सुधामय के गाल पर तड़ातड़ जड़ दी। बनलता की चप्पल का सूखा तला सुधामय के गाल पर पड़ते ही फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया।

तब तक मेडिकल कॉलेज के नर्स-डॉक्टर, छात्र-छात्राएँ सब दौड़कर आ गये। कॉलेज के ऑपरेशन थियेटर के सामने भीड़ जमा हो गयी। मेहतर, जमादार, हाउस-सर्जन कोई नहीं बचा। क्या हुआ? क्यों मारा? हाउस फिजीशियन को चप्पल क्यों मारी? एक मामूली नर्स की क्या हिम्मत? क्या हुआ, मेट्रन। गुल-गपाड़ा—एकबारगी गजब हो गया।

बनलता तब गुस्से में हाँफ रही थी। हो सकता तो हाउस फिजीशियन के गाल पर एक और जड़ देती। एक बार में मानो ठीक शाइस्तगी नहीं आयी। मेट्रन ने पूछा—क्या हुआ मिस राय?

बनलता बोली—

किन्तु वह बात जाने दो। छब्बीस वर्षीया की जलन और कोई चाहे न समझे, तुम शायद समझ सको। तुम्हीं बनलता राय के उस अपमान को समझ सकोगी। तेईस वर्षीय सुधामय से उस दिन अन्याय किया या नहीं, यह भी तुम्हीं समझ सकोगी। परन्तु यह बात फिर कहूँगा।

तुमने लिखा है—तेईस वर्षीय एक लड़का तुम्हारे साथ घर बसाना चाहता है। फिर हुआ करे वह तुमसे तीन वर्ष छोटा। घर बसाने में क्या उम्र देखी जाती है? घर तो किसी भी उम्र में बसाया जा सकता है। विशेषकर तेईस वर्ष में तो अच्छी तरह बस सकता है। तेईस वर्षीय युवक क्लांति नहीं जानता। तेईस वर्षीय सोना नहीं जानना, तेईस वर्षीय में अक्लांत क्षमता जो होती है! तेईस वर्ष क्या सामान्य बात है।

तब शुरू से ही कहता हूँ—सुनो! बहुत दिन पहले एक बार ओखापोर्ट गया था। राजपूताना पार करके भारतवर्ष की एकदम सीमा पर। मेशाना, अहमदाबाद, जामनगर। महात्मा गांधी के जन्म-स्थान पोरबन्दर पार करके एकदम हिन्द महासागर के किनारे, जहाँ से खड़े होकर हिन्द महासागर के उस पार अफ्रीका के समुद्री जहाज दिखाई देते हैं। पाल चढ़ी नौकाएँ दिखाई देती हैं। जहाँ से व्यापार करने इस पार के माझी-मल्लाह जाते हैं, और उस पार सौदा बेचकर कुछ और माल लाकर यहाँ बेचते हैं। समुद्र के किनारे-किनारे माझी-मल्लाहों के घर हैं। इस किनारे से उस किनारे तक सारी जगह।

पंडा ईश्वरीप्रसाद ने कहा था, "हुजूर, तीर्थस्थान कहलाने से बाबू महाजन वहाँ से आते हैं। वरना तो सभी वही माझी-मल्लाह केवल—"

मैंने पूछा, "तुम्हारे यहाँ कोई बंगाली नहीं है?"

"बंगाली?" ईश्वरीप्रसाद ने याद करने की कोशिश की। फिर बोला, "एक बंगाली यहाँ था, हुजूर, यहाँ बिजली घर में काम करता था। तीन वर्ष हुए, उसकी बदली हो गयी है। एक और व्यक्ति···" कहते-कहते मानो ध्यान हो आया। बोला, "एक व्यक्ति अब भी है हुजूर।"

मैंने पूछा, कौन?"

ईश्वरीप्रसाद बोला, "वह भी यहाँ से तैंतीस मील दूर, एक डॉक्टर है। बंगाली डॉक्टर, डॉक्टरी करने हजारों मील दूर इस अनबसे गाँव

छज्जे तक। जमीन से सात हाथ ऊपर।

रंगना ऊपर उठ रही है। महेश्वर प्रसाद ने ढोल की पीठ पर थपत लगाकर धुन निकाला। और साथ-ही-साथ सभी नटनियाँ एक साथ ताल मिलाकर गीत गाने लगीं।

रंगना उस समय रस्सी पर नाच रही है।

"···खूब सावधान रंगना। खूब सँभलकर।"

"···तुम इतनी चिंता क्यों करते हो? यह नया नया है?"

"···मान लिया, पर मुझे तो हमेशा ही डर लगता है।"

रंगना ने कहा—"तुम डरो नहीं मुझे कुछ नहीं होगा, देख लेना। यह देखो, मैं किस तरह नाचती हूँ। गुरुजी के ढोल की ताल पर मैं धुन मिलाती हूँ। देखो, मेरा न तो हाथ ही काँपता है न पैर ही डगमगाता है मेरा मन भी नहीं घबराता है—"

रंगना नीचे उतरी। फिर भी चमन एक नजर से उसके मुँह की ओर ही देख रहा है।

"···इस तरह क्या देख रहे हो चमन?"

"···मेरे सीने पर हाथ रखकर देखो, मैं किस तरह डर गया था। यदि तुम गिर पड़ती?"

"···क्या कभी गिरी हूँ? तुम तो पहरा दे रहे हो, मैं गिरूँगी कैसे? मैंने तो किसी ओर भी नहीं देखा, केवल तुम्हारी ओर ही देखती रही हूँ हमेशा।"

सामने ही स्वरूपसिंह का चेहरा हँसी से चमक उठा। चारों ओर तारीफ, चारों ओर कदर। रंगना की जितनी तारीफ होती है महेश्वर प्रसाद उतना ही खुश होता है। यह तारीफ तो सिर्फ उसी की नहीं है। यह सबकी तारीफ है। गुरुजी ने उन लोगों को नाच सिखाया है, गीत सिखाया है। इसीलिए रंगना के सम्मान का मतलब है सबों का सम्मान।

उदयपुर के महाराणा ने पहले भी नटनियों के नाच की तारीफ की है, पहले भी बहुत-सा इनाम दिया है, इज्जत भी की है। यह कोई नयी बात नहीं है। किन्तु स्वरूपसिंह भिन्न प्रकृति का मनुष्य है। जगमन्त सिंह जो कहता है, वह वही सुनता है। इसीलिए अब तक रंगना को

नहीं बुलाया गया था। इसके बावजूद महेश्वर प्रसाद ने यह भी क
करा लिया है कि उन लोगों को जो इनाम मिलेगा उसमें से जगम
सिंह को हिस्सा नहीं देगा। अगर वह यह करार मंजूर करे तो हम ल
जायेंगे अन्यथा नहीं।

"···राजी हैं ?"

"···हाँ जी, राजी हूँ।"

"···लेकिन देखिए बात से नहीं मुकरियेगा।"

यहाँ आने के पहले प्यादा यही वचन दे आया था।

महेश्वर प्रसाद ने आस्ते-आस्ते जगमन्तसिंह को बताया—"सरका
अब तो नाच खत्म···"

जगमन्तसिंह ने कहा—"पहले महाराणा तो खत्म करने के लि
कहें, तब तो खत्म हो! तुम तो बेवकूफ जैसी बात करते हो जी···"

महेश्वर प्रसाद ने बात आगे नहीं बढ़ाई।

उस समय महफिल में नीरवता थी। कोई भी सेठ उठना नहीं चाहत
है। अगर महाराणा ही नहीं उठें तो और कौन उठ सकता है ? किसक
इतनी हिम्मत ?

अकस्मात् स्वरूपसिंह ने पूछ लिया—"क्या और अधिक ऊँची रस्स
पर वह नटनी चढ़ सकती है ?"

"हाँ हुजूर, चढ़ सकेगी।"

"···कितनी ऊँची रस्सी पर चढ़कर वह नाच सकती है ?"

"जितनी ऊँचाई पर चढ़कर नाचने का हुक्म हुजूर देंगे।"

"···तब एक काम करो···"

कहकर स्वरूपसिंह ने अपने मन की बात बतायी।

"···किले के ऊपर उस बड़ी हवेली को देख पाते हो ?"

"···हाँ हुजूर, देख रहा हूँ।"

"···अगर रस्सी का एक छोर इस किले के मुंडेरे में बाँध दिया जाय
और रस्सी का दूसरा छोर इस प्रासाद के मुंडेरे पर बांधा जाय, तो क्या
तुम्हारी नटनी उसपर चढ़कर नाच सकेगी ?"

अनूठा खयाल। राणा-महाराणा के खयालों का मानो कोई अन्त ही

न हो। पालतू बाघ की पीठ पर बन्दर बिठाकर उसके साथ हाथी लड़ाने में उन्हें मजा मिलता। घोड़े की पीठ पर बैठकर दस तल्ले ऊपर से जमीन पर कूदना भी एक आनन्द ही है। ऐसे ही विचित्र आनन्द का उपकरण यदि जगमन्तसिंह जुटा न पाये तो उसकी नौकरी ही क्यों बरकरार रहेगी। सारांश यह कि स्वरूपसिंह को किसी भी उपाय से खुश रखना होगा। महाराणा लोग आसानी से खुश होने वाले जीव नहीं हैं। और उस समय कोई युद्ध भी तो था नहीं जिससे महाराणा मस्त रहते।

क्या किया जाय?

जगमन्तसिंह ने महेश्वर प्रसाद को बुलाकर पूछा—"ऐसा कर सकेगी तुम्हारी नटनी?"

महेश्वर प्रसाद ने रंगना से पूछकर देखा—"क्यों री, ऐसा तू कर सकेगी बेटी?"

रंगना ने भली-भाँति खतरे का विचार कर लिया।

बोली—"यदि तुम्हारा आशीर्वाद मिले तो क्यों नहीं कर सकूँगी गुरुजी?"

अब महेश्वर प्रसाद ने जगमन्तसिंह से पूछ लिया—"बख्शीश में क्या मिलेगा?"

इस बार जगमन्तसिंह ने स्वरूपसिंह से पूछा—"उसके उस्ताद जी पूछते हैं, यदि वह ऐसा कर सकी तो आप इनाम क्या देंगे?"

स्वरूपसिंह ने कहा—"समूचे उदयपुर का आधा दे दूँगा।"

"···तमाम उदयपुर का आधा!"

"···तमाम उदयपुर का आधा!"

इस प्रसंग को लेकर सभी काना-फूसी कर आलोचना करने लगे।

उदयपुर का आधा! महाराणा जैसे भाग्यशाली आदमी के लिए यह कोई असम्भव नहीं है। जगमन्तसिंह ने महाराणा की ओर एक बार देखा। महाराणा को बहुत दिनों से पहचानता है जगमन्तसिंह महाराणा जिसे जो कुछ देने का वादा करता है वह उसे बड़े सम्मान से देता है!

"···महाराणा!"

चोरी-छिपे जगमन्तसिंह अपना मुँह महाराणा के कान के नजदीक

ले गया ।

"···महाराणा, आप कह क्या रहे हैं ? क्या सचमुच उदयपुर का आधा दे देंगे ?"

स्वरूपसिंह ने कहा—"अरे, नटनी क्या ऐसा कर सकेगी ?"

"···और यदि कर डाले, तब ?"

महाराणा ने कहा—"यदि वह कर डालेगी तो पीछे देखा जायेगा। पहले मजा तो देख लो न···"

तब तक महेश्वर प्रसाद जी ने डुग-डुग डिम-डिम कर ढोल बजाना शुरू कर दिया। नटनी गुरुजी के नजदीक आयी और माथा झुकाकर प्रणाम किया।

उसके बाद ?

उसके बाद और किसी एक को लक्ष्य कर प्रणाम किया जिसे भगवान् ही समझ सके। कुछ देर तक दोनों आँखें बन्द किये खड़ी रही। यद्यपि तुम मौजूद नहीं हो फिर भी तुम यहीं हो चमन। हमेशा मैं तुम्हारी ही बात सोचती हूँ, तुम जानते हो ? कैलाशपुरी में बैठे रहकर ही तुम मुझे दुआ दो। जानते हो, तुमको मैंने एक दिन कितना भला-बुरा कहा है ? मैं कितनी बार मना कर चुकी हूँ कि मेरी ओर मत देखो। आज मैं उन्हीं आँखों को यहाँ खड़ी-खड़ी याद कर रही हूँ। तुम मुझे दुआ दो चमन। तुम्हारी दुआ पाकर मुझे और किसी का डर नहीं रहेगा। लेकिन कहाँ, तुम तो कोई जवाब नहीं दे रहे हो, चमन ? बोलो, मैं किसके भरोसे तब रस्सी पर चढ़ूँगी ? मेरी रखवाली कौन करेगा ? सभी खतरों से मेरी रक्षा कौन करेगा ? कहाँ, तुम तो कोई जवाब ही नहीं देते। चमन, तुम्हारा जवाब पाये बगैर मैं उस रस्सी पर चढ़ नहीं पा रही हूँ, तुम्हीं तो मेरे सर्वस्व हो !

डॉक्टर साहब रुके।

मैंने टोका—"उसके बाद ?"

"···उसके बाद, महेश्वर प्रसाद के जीवन में जो कभी नहीं बीता था, वही बीता। यहाँ के भाट अभी भी वही सब गीत गाते हैं। भाट

तिलक चाँद के लिखे वे सब गीत। अगर आप कुछ दिन और ठहर जाते तोएक दिन मैं आपको भाटों का गीत सुनवा देता। हमारे बंगाल के *मैमनसिंह-गीतिका* में जिस तरह महुआ-मलुआ का गीत है, इनके यहाँ भी उसी तरह रगना-चमन का गीत है। किसी भी पुस्तक में लिखा नहीं है। भाट की जबानी ये सब गीत चलते हैं। मैंने सुना है। दूसरी बार जब आयेंगे, उस समय सुनवाऊँगा!"

मैंने कहा—"वह सब रहने दीजिए। उसके बाद फिर क्या हुआ? रगना नाच सकी?"

डॉक्टर साहब ने कहा—"सिर्फ नाच ही तो नहीं, ऊपर बँधी रस्सी पर ही नाचते हुए इस पार से उस पार और फिर उस पार से इस पार चलकर आना होगा···"

किसनगढ़ की सड़कों पर उस समय जाड़े की दोपहर रात्रि की खामोशी फैली हुई थी। कुत्ता रह-रहकर कें-कें कर चिल्लाता। उसके बाद जाड़े से राहत पाने के लिए और सिकुड़कर सोने की कोशिश करता। लेकिन इस बार ऐसा नहीं कर सका। उस पार चाय की दुकान अभी तुरन्त खुली थी। सुबह से ही मोटर के सवारी वहाँ आकर चाय पीते हैं। जयपुर से जो लोग पहली बस पर अजमेर जाते हैं उनकी चाय का इन्तजाम वहीं चाय वाला करता है। इसीलिए तड़के ही उसे चूल्हे में आग जलानी पड़ती है।

कुत्ता वहीं जाकर सो रहा, आग की गरमी पाने की आशा से।

किन्तु दुकानदार उसे दुत्कार कर भगा देता है—"ऐ, भाग यहाँ से···भाग जा···"

डॉक्टर साहब ने पूछ लिया—"रात कितनी गुजर गयी? आज तो आप और सो नहीं पायेंगे···"

मैंने कहा—"आज नहीं सही, रोज तो सोता ही हूँ। एक रात नहीं सोने से भी कोई हर्ज नहीं। सबसे बड़ी बात एक कहानी तो सुन सका···"

डॉक्टर साहब ने पूछा—"लिख डालियेगा कहानी? यदि लिखें तो एक बार और राजस्थान घूमकर देख लें। जल्दबाजी में किसी पूजा-संख्या में न दे दीजियेगा। उसमें किसी तरह सिर्फ पन्ने ही भरे जाते हैं।

भाटों के मुँह-सुने छन्दों को कापी में नोट कर लीजिए, बहुत सुन्दर-सुन्दर छन्द हैं—"

"···वह नोट कर लूँगा, आप चिन्ता न करें। लेकिन उसके बाद क्या हुआ, कहिए।"

डॉक्टर साहब कहने लगे—"वह भी ठीक इसी तरह जाड़े का मौसम था। नटनी ने अन्त में एकलिंगनाथ को भी मन-ही-मन प्रणाम किया और रस्सी पर चढ़ गई। चढ़ना क्या आसान है? उस किले की सीढ़ी से गुम्बज पर चढ़ी। वहीं उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह की पताका फहराती है अर्थात् उदयपुर का स्टेट फ्लैग। जगमन्तसिंह के आदमी रंगना को वहीं ले गये।"

नीचे की ओर झुककर रंगना ने देखा। हर ओर पानी-ही-पानी। सिर्फ पानी और पानी। नीचे का वृन्दावन पैलेस दिखाई नहीं पड़ता है। कहाँ गया महाराणा का दरबार, कहाँ हैं महाराणा स्वरूपसिंह, और जगमन्तसिंह, कहाँ गये गुरुजी और उनके दल के लोग? सिर्फ ढोल की उतरती-चढ़ती आवाज हवा में उड़ रही है।

"···क्यों तुम वहाँ चढ़ गयी रंगना?"

"···तुम बेफिक्र रहो। आधा उदयपुर महाराणा मुझे बख्श देंगे।"

"···तुम महाराणा को पहचानती नहीं हो? महाराणा की बात पर तुमने विश्वास कर लिया रंगना?"

"···नहीं-नहीं, चमन, महाराणा क्या अपनी जुबान से मुकर सकते हैं? तब मैं इतना खतरा ही क्यों मोल लेती? तब हम खूब आराम से रहेंगे, चमन। तुम्हें कोई काम नहीं करना पड़ेगा। मैं नाचूँगी और तुम बाँसुरी बजाओगे!"

"···क्या कहती हो! मैं कब से बाँसुरी बजाने लगा?"

"···खूब बजा सकोगे चमन, खूब बजा सकोगे! तब मैं और भी अच्छी बाँसुरी खरीद दूँगी तुम्हें।"

उस समय महेश्वर प्रसाद जी-जान से ढोल पर आवाज निकाल रहा है। दुखहरन भी ताल मिला रहा है। छन्दों की डिम-डिम आवाज मानो हवा के साथ उदयसागर की लहरों पर झूम रहे हैं। लहरें भी ताल में

ताल मिलाकर वृन्दावन-पैलेस की दीवार से टकराकर सुर मिला रही हैं।

स्वरूपसिंह ऊपर देख रहे थे।

जगमन्तसिंह भी देख रहा था। आग्रह और शंका को मन में अटकाये सभी ऊपर की ओर देख रहे थे। रंगना धीरे-धीरे रस्सी पर नाचती हुई आ रही है :

आ पहुँची। और अधिक दूर नहीं।

इस बार? अब तो उदयपुर का आधा भाग नटनी को देना ही पड़ेगा।

महेश्वर प्रसाद और भी जोर-जोर से धुन मिलाने लगा।

दुलहरन से कहा—"जोर से बजाओ, जोर से⋯"

दुलहरन और भी जोर से ढोल बजाने लगा। उदयसागर की लहरें और भी हिल-हिलकर गिरने-उठने लगी। वृन्दावन-पैलेस के पत्थरों से टकराकर !

जगमन्तसिंह ने देरी नहीं की। उसका चेहरा आतंक से स्याह पड़ गया। यदि अभी तुरन्त नटनी रस्सी के सिरे पर पहुँच जाय तो ?

जगमन्तसिंह ने महाराणा की ओर घूमकर देखा। उस मुख पर चिंता का नामो-निशान नहीं था, कोई उद्वेग नहीं था। मानो उल्लास ने पूरे चेहरे को ढँक लिया है। इतना बड़ा उदयपुर, इसका आधा एक अदना नटनी को दे देना पड़ेगा, इस दुश्चिन्ता की छाया भी उनके चेहरे पर नहीं थी !

आश्चर्य होने लायक ही यह बात थी ! एक साधारण-सी नटनी इतना बड़ा दुःसाहस का काम अनायास ही कर गयी, इसपर जगमन्तसिंह को आश्चर्य नहीं हुआ ! आश्चर्य हुआ स्वरूपसिंह पर जिसने अपात्र को दान देने का वादा किया है। अपात्र तो है ही ! नटनियाँ अपात्र हैं, इसमें जगमन्तसिंह को जरा भी शक नहीं था।

आधा उदयपुर जाने का मतलब है जगमन्तसिंह का आधा अधिकार छिन जाना ! आधे अधिकार का अर्थ है आधा जीवन। अधिकार ही तो जीवन है। इतने ऊँचे पद पर रहकर जिस अधिकार का उपभोग जगमन्तसिंह कर रहा है वह उस समय नहीं रह जायगा। उदयपुर के आधे लोग उसे सलाम नहीं करेंगे। आधे लोग भेंट नहीं चढ़ायेंगे। यदि आधे लोग उसको

नहीं माने तो उसका अस्तित्व ही कहाँ रह जायगा ?

हाथ के नजदीक ही तलवार थी, उसकी मूंठ को जोर से पकड़ा जगमन्तसिंह ने।

उस समय भी नटनी आ रही थी। आ ही गयी समझो। और विलम्ब नहीं। थोड़ी ही देर में वह सामने हाजिर हो जायगी। रस्सी से उतर कर वह महफिल में खड़ी हो जायगी।

दुखहरन ने और भी जोर से ढोल वजा दिया।

महेश्वर प्रसाद उस समय मुंह से धुन निकाल रहा था—"ता—धिन्—धिन्—ता…"

लेकिन एक अचानक घटना घट गयी। सवों ने आश्चर्य से देखा। मानो पल-भर में ही सारी घटना घट गयी। पहले आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। सभी चौंककर 'हाँ, हाँ' कर उठे! क्या हुआ? क्या हुआ?

क्या हुआ वह तो सवों ने अपनी आँखों के सामने ही होते देखा। फिर भी विश्वास नहीं कर सके।

मैंने पूछा—"उसके वाद ?"

डॉक्टर साहव वोले—"कितनी रात वीती, वताइए तो ? शायद तीन वज गया। देखता हूँ अजमेर की ट्रेन आ रही है…"

मैंने कहा—"रहने भी दीजिए, मुझे नींद नहीं आ रही है। आप कहिए, उसके वाद क्या हुआ ?"

डॉक्टर साहव कहने लगे—"जव कोई एक जाति विगड़ खड़ी होती है तो ऐसा समझा जाता है कि कहीं न कहीं अन्याय जरूर हुआ है। एक समय राजस्थान का अपना गौरव और ऐतिह्य था। वह ऐतिह्य था वीरता और त्याग का। उसी ऐतिह्य के चलते भारतीय इतिहास में राजस्थान का इतना वड़प्पन है। राणा प्रताप का नाम किसे मालूम नहीं है ?

"लेकिन उसके अगल-वगल ही है मानसिंह। राजस्थान के जिन राणाओं ने अपनी स्वार्थ-साधना के लिए मुगल वादशाहों से हाथ मिलाया था, वे लोग यहाँ के कलंक स्वरूप हैं। राजस्थानी होने के वावजूद भी आज के राजस्थानी उन्हें याद तक नहीं करते। यही नटनियाँ, जिसे आपने आज

डिस्पेन्सरी में देखा, राणा प्रताप का गुणगान करती हैं। राजस्थान के वीरों की पूजा वे आज भी करती हैं। भाट तिलक चांद का गीत गाती हैं। लेकिन राणा मानसिंह की बात उनसे पूछिए, वे चुप हो जाती हैं।"

मैंने कहा—"उसके बाद क्या हुआ, कहिए। इतिहास की बात बाद में सुन लूंगा…"

डॉक्टर साहब ने कहा—"इतिहास भी तो एक कहानी है। आप लोग जो कुछ लिखते हैं वह भी इतिहास ही है। आज से दो सौ वर्ष बाद जब कोई आज का इतिहास जानना चाहेगा तो आप लोगों की कहानी और उपन्यास पढ़ेगा। उस समय वे लोग विचार करेंगे कि दो सौ वर्ष पहले के लोग क्या सोचते थे, किस चीज की कल्पना करते थे और उनका स्वप्न क्या था। आज यदि महाराणा स्वरूपसिंह के समय का कोई उपन्यास होता तो यह अवश्य जाना जाता कि उस दिन स्वरूपसिंह का मन्त्री होकर भी जगमन्तसिंह ने ऐसा दुष्कर्म क्यों किया।"

मैंने पूछा—"क्या दुष्कर्म किया था जगमन्तसिंह ने ?"

"…वही बात तो कह रहा हूं। लेकिन उसके पहले चमन की बात कह दूं। कैलाशपुरी के एक मुहल्ले में उस समय चमन चुपचाप बैठा था। सभी नटनियां उदयपुर चली गयी हैं। मुहल्ला प्राय खाली है। एक भी आदमी नहीं है जिसके साथ बातचीत करेगा चमन !"

फिर भी मन-ही-मन एक बार पुकारा—"रंगना…"

"…मैं तो यही हूँ ! एक तुम मेरी ओर देखो…"

"…मैं तो अन्धा हूं ! किस तरह देखूं ?"

"…बाहर की दो आंखें ही क्या बड़ी हैं ? मैं तो देख रही हूं, तुम मेरी ही ओर देख रहे हो—यदि तुम नहीं देख पाते तो क्या इतनी ऊँचाई में मैं उदयसागर पार कर पाती ? तुमने ही तो मुझे साहस दिया है चमन !"

"…लेकिन मुझे तो डर लगता है !"

"डर छोड दो। मेरे रहते तुम्हें डर किस बात का ? मैं तो तुम्हारे लिए उदयपुर से इनाम लेकर आ रही हूँ। मैं इनाम लेकर ही तुम्हारे पास चली आऊँगी। अधिक देर नहीं करूँगी।"

भाट तिलक चाँद ने अपने गीत में इस जगह करुणा का रस बहा दिया है।

नटनियाँ जब भाट तिलक चाँद का गीत गाकर सुनाती हैं, तो महफिल में बैठे लोगों की आँखों में आँसू आ जाते हैं।

"...मैं बहुत अकेला महसूस करता हूँ रंगना।

"थोड़ा अकेला लगना भी अच्छा है। मैं भी एकाकीपन महसूस करती हूँ।"

"...तुम्हारे दूर रहने से मुझे सब चीज खाली नजर आती है!"

"...मुझे भी तो खाली-खाली-सा लगता है।"

"इस बार शादी हो जाने के बाद तुम जहाँ भी जाओगी, मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा।"

"यदि तुम साथ नहीं रहोगे तो मैं कहीं भी नहीं जाऊँगी।"

"...तुम्हें छोड़कर मैं कहीं भी नहीं रह सकूँगा।"

"...जानते हो, पहले जब तुम मेरी ओर देखा करते, तो मुझे बड़ा अच्छा लगता था।"

"...तब तुम देखने से मना क्यों करती थी? मुझे भला-बुरा क्यों सुनाती थी?"

"वह तो तुम्हारी परीक्षा लेती थी।"

"...लेकिन मैं सोचता था, तुम मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं करती हो..."

"...इस बार तो समझ गये?"

"...खूब समझ चुका हूँ। समझ चुका हूँ, इसीलिए तो तुम्हारे लिए इतना छटपटा रहा हूँ। तुम्हें छोड़कर मैं एक पल भी नहीं रह पाता।"

बातचीत करते-करते हठात् चमन को मानो सब चीज दिखाई पड़ गयी। डर से थरथराने लगा। कहाँ? तुम कहाँ गयी? तुम कहाँ हो? तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ रंगना। मेरी आँखें क्या फिर खराब हो गयीं? मैं क्या फिर अन्धा हो गया? अन्धकार ही अन्धकार है! कहाँ गयीं तुम? रंगना—रंगना—रंगना!

ठाकुर मुहल्ला के पास-पड़ौस में जो लोग थे, उन्हें दुखहरन के घर

के भीतर से रोने की आवाज सुनाई पड़ी। सिर्फ रोना ही नहीं, मानो आर्तनाद ! सभी दौड़कर गये ! क्या हुआ चमन ? तुम्हें क्या हुआ है जी ?

चमन का वह आर्तनाद कैलाशपुरी से निकलकर एकदम उदयपुर के उदयसागर में आ हाजिर हुआ था।

चमन के आर्तनाद के साथ महेश्वर प्रसाद के आर्तनाद ने भी उस दिन समस्त उदयसागर को चौंका दिया था। चौंका हुआ उदयसागर का पानी भी उस दिन मानो एक सुर में आर्तनाद करने लगा था। उस दिन की उस शाम को सबों के आर्तनाद ने अशरीरी आत्मा का रूप धारण कर समूचे उदयपुर के आकाश, हवा पानी, जमीन और अन्तरिक्ष को भी एकदम आछन्न कर दिया था।

लेकिन उस दिन क्या स्वरूपसिंह उस समय भी यह जान सका था कि उसी की एक बात के चलते नटनियों की जाति में इतनी बड़ी एक घटना घट जायेगी ?

सचमुच उस दिन उस महफिल में जितने भी लोग बैठे थे, सभी उस अनहोनी को देखकर कुछ देर के लिए विह्वल हो उठे थे।

महेश्वर प्रसाद ने चिल्लाकर कहा—"यह दुश्मनी है—यह साफ दुश्मनी है—"

बहुत देर तक स्वरूपसिंह अपने आपको रोके बैठे रहे। उसके बाद जगमन्तसिंह की ओर देखा।

जगमन्तसिंह को नजदीक बुलाया—"जगमन्तसिंह···"

सामने ही उदयसागर की सतह पर क्रोध, अभिमान, क्षोभ और कष्ट की लहरें उफन रही थीं।

जिस जगह नाचकर आनी हुई नटनी पैर फिसल जाने के कारण पानी में गिर पड़ी थी, ठीक उसी जगह एक अन्धा वकारण ही किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर कुछ देर के लिए झूलने लगा। उसके बाद वह अनहोनी घटना पानी के लेसे की तरह पानी ही में घुलते-मिलते एकाकार होकर डूबते हुए सूर्य की लाल किरणों की लालिमा में ढँक गयी।

"···जगमन्तसिंह !"

"…जी हाँ, राणा साहब "

"उदयपुर का आधा भाग उस नटनी को देना होगा। मैंने वादा किया था। उसका दलील-दस्तावेज तैयार करो।"

"लेकिन नटनी तो उदयसागर पार नहीं हो सकी राणा साहब !"

"…वह पार नहीं हो सकी तो सिर्फ तुम्हारे ही चलते, जगमन्त-सिंह…"

"क्यों राणा साहब, मैंने क्या किया ?"

"…मैं देख चुका हूँ, जिस समय नटनी रस्सी पर नाचती हुई वृन्दावन प्रसाद की ओर आ रही थी, तुमने अपनी भुजाली से रस्सी के किनारे को काट दिया था। रस्सी नहीं कटने से नटनी ठीक इस पार चली आती। उन्हें आधा उदयपुर देना ही होगा। अभी दलील बनाओ।"

लेकिन उधर नटनियों का दल अभी भी रंगना को खोज रहा है।

उदयसागर की लम्बाई-चौड़ाई बहुत बड़ी है। कहाँ खोज पायेंगे उसे ? पानी की भीतरी धारा के साथ बहकर अब तक वह कहाँ-से-कहाँ चली गयी होगी।

उस दिन रात-भर खोज चलती रही। सवेरे भी खोज की गयी। उदयपुर के सरकारी तैराक स्वरूपसिंह की आज्ञा से पानी में घुसे। उन्होंने भी खोजा।

अन्त में बहुत दूर उदयसागर के उत्तर-पूरब कोने में देखा गया, रंगना का निर्जीव शरीर बड़ी-सी पत्थर की चट्टान पर टिककर पानी में झूल रहा है।

दल-बल को लेकर महेश्वर प्रसाद चले जाने की कोशिश कर रहा है। सब खत्म हो गया। आज उन लोगों का सब शेष हो गया। हमेशा-हमेशा के लिए अपने सर्वस्व को खोकर वे उदयपुर की अतिथिशाला से चले जा रहे हैं।

इसी बीच राजदरबार का हुक्म मिला। महाराणा ने महेश्वर प्रसाद को तलब किय, है।

"…क्यों ? इस बार क्यों बुलाया ?"

"…स्वरूपसिंह जी महेश्वर प्रसाद को एक दलील देंगे।"

"····कैसी दलील ?"

"··वह मैं नहीं जानता ! आप चलिए"

जिस समय महेश्वर प्रसाद दरबार पहुँचा, उस समय तक सब कुछ तैयार हो चुका था। दलील-दस्तावेज पर सील-मुहर लगा दिया गया था। महाराणा स्वरूपसिंह नें खुद अपने हाथ से दस्तखत कर दिया है।···मैंने आधा उदयपुर मरहूम नटनी रजना के उत्तराधिकारियों को वंशानुगत भोग और दखल करने का अधिकार दिया। आदि"

"····यह लो महेश्वर प्रसाद। तुम्हारी बेटी की मौत से मैं बहुत दुःखी हूँ। फिर भी मैंने अपना वादा रखा है। जगमत्तसिंह मेरा मन्त्री है, यदि वह रस्सी नहीं काट देता, तो तुम्हारी बेटी जरूर इस पार पहुँच जाती।"

क्रोध के कारण महेश्वर प्रसाद मन-ही-मन बड़बड़ाने लगा। फिर भी वह कुछ बोला नहीं।

स्वरूपसिंह ने फिर कहा—"लो, यह दलील ले लो···"

महेश्वर प्रसाद अपने को रोक नहीं सका।

बोला—"नहीं···"

स्वरूपसिंह ने पूछा—"क्यों ? आखिर लोगे क्यों नहीं ? मैं तो अपनी इच्छा से दे रहा हूँ···"

महेश्वर प्रसाद पत्थर की तरह सीधा खड़ा रहा।

बोला—"नहीं, हम बेईमान का दान नहीं लेते···"

"····बेईमान का दान ! कहते क्या हो तुम ? मैं बेईमान हूँ ?"

महेश्वर प्रसाद के साहस की भी बलिहारी है !

बोला—"बेईमान का सिर्फ दान ही नहीं, बेईमान का पानी भी नहीं पियेंगे हम लोग। जब तक एक भी नटनी जिन्दा रहेगी, तब तक उदयपुर की चौहद्दी के दस मील तक कोई भी नटनी नहीं आयेगी। उदयपुर का पानी उदयपुर की हवा नटनियों के लिए विषस्वरूप होगी।"

इतना कहकर महेश्वर प्रसाद वहाँ ठहरा नहीं। दल-बल लिए उसी दिन उदयपुर छोड़कर चला गया।

स्वरूपसिंह कान खोलकर उसकी बात सुनते रहे। इसके विरोध में उस दिन उनके मुँह से कोई बात ही नहीं निकल सकी।

भाट तिलक चाँद के गीत में कुछ ऐसा ही लिखा हुआ है।

मैंने पूछा—"उसके बाद ?"

डॉक्टर साहब ने कहा—"वही तीन सौ वर्ष पुरानी कहानी आज भी यहाँ की नटनियाँ लोगों को गीत गा-गाकर सुनाती हैं। उस दिन जो वे लोग उदयपुर तथा कैलाशपुरी छोड़कर गये हैं आज तक लौटकर नहीं आये। स्वरूपसिंह के बाद कितने ही राणा आये और गये, लेकिन कोई भी नटनियों को उस प्रतिज्ञा से डिगा नहीं सके। बड़े-बड़े सेठ-साहूकार इनको साथ लेकर बाहर जाते हैं। कोई दिल्ली, कोई बम्बई, कोई पैरिस तो कोई अमरीका। सभी जगह ये साथ जाती हैं, पर लाख रुपये के लोभ में भी ये उदयपुर नहीं जातीं। उस दिन जिस बेईमानी के साथ एक नटनी को मार दिया गया था, उस बेईमानी की कहानी को आज भी वे भूल नहीं सकी हैं।"

लेकिन उदयपुर अब वह उदयपुर नहीं रह गया। अब 'नेटिव स्टेट' के राजाओं का स्टेट छीन लिया गया है, 'प्रीवी पर्स' से उन राजाओं को कुछ दे दिया जाता है। आजकल उदयपुर के महाराणा ने वृन्दावन पैलेस को होटल बना दिया है। जो एक दिन के वास्ते एक कमरा का दो सौ से तीन सौ तक चार्ज दे सकते हैं, वे ही उस होटल में जा पाते हैं।

उस दिन ग्रीस की रानी तथा क्वीन एलिजाबेथ आयी थीं। सभी उस पैलेस में ठहरी थीं। वे लोग भारत सरकार के अतिथि थीं। लेकिन उन्होंने भी सुना, आधी रात को उदयसागर के सीने से हू-हू की तरह एक आर्तनाद की आवाज निकल रही है। कौन आर्तनाद करता है, कौन इस तरह रोता है, यह कोई नहीं जानता। कोई समझ नहीं सकता है।

लेकिन भाट तिलक चाँद लिख गया है—चमन की देहहीन आत्मा उदयसागर के चारों ओर सिर्फ चक्कर काटती रहती है। एक दिन बेसहारा वह घर से निकल पड़ा था। वह तो अन्धा था। लेकिन वह कहाँ गया, उसे क्या हुआ, किसी को भी उसकी खोज-खबर नहीं मिली। आधी रात को उदयसागर के सीने की उस आवाज को सुनकर बहुत से लोग यह सोच लेते हैं, वह चमन की ही अतृप्त आत्मा है। चमन की ही आत्मा उदयसागर के चारों ओर घूम-घूमकर रंगना को खोजती है।